CORE
Metadata, citation and similar papers at core.ac.uk
Provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Mehta, Uma D., 2011, "*वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में युग-चेतना*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/690

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में युग-चेतना

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. की उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

प्रस्तोता
मेहता उमा डी.
व्याख्याता
हिन्दी विभाग
श्री हरिबापा आर्ट्स एण्ड़ कॉमर्स कॉलेज,
जसदण ।

निर्देशक
डॉ. एस.डी.भाभोर
प्रिन्सीपाल (इनचार्ज)
श्री एम.पी.शाह आर्ट्स एण्ड़ सायन्स कॉलेज,
सुरेन्द्रनगर ।
(गुजरात)

वर्ष: २०११

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रा. मेहता उमा डी.** द्वारा सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट में पीएच.डी.उपाधि हेतु **''वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में युग-चेतना''** विषय पर प्रस्तुत शोध-प्रबंध मेरे निर्देशन में तैयार किया गया है। प्रा. मेहता उमा ने नितांत मौलिक ढंग से उक्त विषय का सांगोपांग विवेचन प्रतिपादन किया है ।

साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश न तो प्रकाशित हुआ है, और न ही इसका कोई अन्य उपयोग हुआ है ।

स्थल : राजकोट
दिनांक :

निर्देशक

(डॉ. एस.डी.भाभोर)

अनुक्रमणिका

क्रम		पृष्ठ संख्या
➢	**प्राक्कथन**	**१–१५**
➢	**अध्याय–१ : वीरेन्द्र जैन: जीवनयात्रा एवं कृतित्व**	**१६–५५**
	१.१ जीवन-यात्रा	१५
	१.२ कृतित्व	१६
	➢ उपन्यास-साहित्य	१८
	➢ कहानी-साहित्य	२१
	➢ व्यंग्य-साहित्य	२१
	➢ बालकथाएँ	२२
	➢ चित्रकथाएँ	२३
	१.३ कृतियों का वस्तुगत परिचय: उपन्यास-साहित्य	२३
	१.४ वीरेन्द्र जैन को प्राप्त पुरस्कार और सम्मान	५२
➢	**अध्याय–२ : साहित्य और युग–चेतना**	**५६–८०**
	२.१ साहित्य: अर्थ एवं स्वरुप	५८
	२.२ युग-चेतना: अर्थ एवं स्वरुप	६२
	२.३ साहित्य और युग-चेतना	६९
	२.४ साहित्य की जमीन और युग-चेतना के विभिन्न कोण	७१
	२.४.१ सामाजिक चेतना	७२
	२.४.२ राजनीतिक चेतना	७३
	२.४.३ सांस्कृतिक चेतना	७५
	२.४.४ आर्थिक चेतना	७७
	➢ **निष्कर्ष**	**७८**

➢ **अध्याय-३ : वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और सामाजिक चेतना** **८१-१५४**

३.१ शोषित नारी ८३

३.२ स्त्री उत्पीड़न और बलात्कार ८६

३.३ गलत परंपरा व रुढ़ियों का शिकार: नारी ८९

३.४ शोषण और अत्याचार की आग में डूबा कृषक-समाज ९२

३.५ विस्थापन की त्रासदी ९८

३.६ प्रेम और यौनवृति १०३

३.७ विवाहप्रथा एवं दहेजप्रथा १०७

३.८ सामाजिक चेतना: प्रतीक पात्र ११२

३.९ छल-कपट और षड़यंत्र १२०

३.१० समाज में असुरक्षा १२६

३.११ अनाथ बच्चों की दुर्दशा १३३

३.१२ अनाथाश्रम में भ्रष्टाचार १४०

➢ **निष्कर्ष** **१४४**

➢ **अध्याय-४ : वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और राजनीतिक चेतना** **१५५-२०९**

४.१ विकास बनाम विनाश १५७

४.२ सरकारी नसबंदी का घिनौना और क्रूर अभियान १६४

४.३ भ्रष्ट और अनैतिक पुलिसतंत्र १६९

४.४ सत्ता का नशीलापन १७८

४.५ पुलिसतंत्र: षड़यंत्रों का भंड़ार १८६

४.६	राजनीतिक अनैतिकता	१९३
४.७	गाँववालों का आदिवासियों पर बरसता कहर	२००
➢	**निष्कर्ष**	**२०४**
➢	**अध्याय–५ : वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और सांस्कृतिक चेतना**	**२१०–२५३**
५.१	सांप्रदायिकता	२१२
५.२	वर्णव्यवस्था और अस्पृश्यता	२१४
५.३	अंधश्रद्धा	२२१
५.४	तीज-त्योहार	२२६
५.५	पूजा-पाठ	२३०
५.६	शिक्षा	२३५
५.७	रीति-रिवाज	२३९
५.८	आदिवासी संस्कृति	२४३
➢	**निष्कर्ष**	**२४८**
➢	**अध्याय–६ : वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और आर्थिक चेतना**	**२५४–२८६**
६.१	प्रकाशन जगत: आर्थिक-शोषण	२५६
६.२	लेखकों का शोषण	२६३
६.३	भ्रष्टाचार	२६९
६.४	मुआवजा बनाम इंतजार	२७४
६.५	गरीबी-बेकारी अभिशापरुप	२८०
➢	**निष्कर्ष**	**२८४**

➢ **अध्याय–७ : वीरेन्द जैन के उपन्यासों में युग–चेतना: समग्र मूल्यांकन** **२८८–३३०**

➢ **उपसंहार** **३३१–३४१**

➢ **परिशिष्ट : ग्रंथानुक्रमणिका** **३४२–३४३**

१. आधार ग्रंथ

२. सहायक ग्रंथ एवं संदर्भ ग्रंथ

३. शब्द-कोश

४. वीरेन्द्र जैन से पत्राचार

प्राक्कथन

१. विषय प्रवेश :-

हिन्दी साहित्य के अंतर्गत उपन्यास साहित्य का और उपन्यास साहित्य में भी वर्तमान दशक के उपन्यासों का योगदान सराहनीय रहा है । वर्तमान दशक के उपन्यासकारों ने तो मानो साहित्य और समाज की शक्ल-सूरत बदलने का निश्चय ही कर लिया है । आधुनिक उपन्यासकार समाज को चैतन्ययुक्त बनाकर प्रगति के पथ पर अग्रसर कर रहे है ।

वीरेन्द्र जैन वर्तमान दशक के उभरते साहित्यकारों में से एक है । वीरेन्द्र जैन ने अपने पत्र में खुद स्विकार किया है कि- 'मेरे बादे में मुझे जो कुछ भी कहना है, वह मैं अपनी रचनाओं में बराबर कहता रहा हूँ ।' इस द्रष्टि से वीरेन्द्र जैन के उपन्यसों में उनकी स्वयं की संवेदनाएँ, भोगा हुआ और आँखों देखा यथार्थ चित्रित है ।

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों का प्रमुख लक्ष्य-जमींदारों और साहूकारों की किसानों के उपर जोंक-सी शोषणवृति को उभारना, सरकार द्वारा गाँव व आदिवासी समाज का विकास के नाम पर विनाश, विस्थापन की त्रासदी, स्त्री-उत्पीड़न और बलात्कार, समाज की स्वार्थवृति व दंभ, राजनैतिक अनैतिकता, सत्ता-लोलुपता, पद का नशीलापन, पुलिसतंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, गरीबी, बेकारी, अंधश्रद्धा, प्रकाशन जगत की सचाई, अनाथाश्रम में बचों की दुर्दशा, अस्पृश्यता, सांप्रदायिक हत्याकांड, गलत परंपरा व रीति-रिवाज इत्यादि का ठोंस और करुण वास्तविकताओं को बड़ी शिद्दत से निरुपित कर समाज में नवस्फूर्ति एवं चेतना का संचार करना रहा है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध में इसी युग-चेतना का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया गया है ।

२. शोध-विषय की प्रेरणा :-

किसी भी शोधकार्य को उत्कृष्ट बनाने में शोधार्थी की जिज्ञासावृति एवं परिश्रम उत्तरदायी होता है । बचपन से ही मुझे विविध पुस्तकें पढ़ने का शौक रहा है । मैंने अपने अध्ययन काल के दौरान वीरेन्द्र जैन के साहित्य की उत्कृष्टता को लेकर बहुत प्रसंशाएँ सुनी थी । और भाग्यवश मुझे उनके साहित्य के बारे में विविध लेख पढ़ने का अवसर भी मिल गया था । जिससे मैं जैनजी के साहित्य से अत्यधिक प्रभावित हुई। और जब भी उनकी रचनाओं को पढ़ने का मौका मिला, तो उसे हाथ से जाने नहीं दिया ।

एम.फिल. में जब लघुशोध प्रबन्ध के लिए विषय-चयन का सवाल आया तो तुरंत ही मेरे दिमाग में एक ही नाम आया- वीरेन्द्र जैन...। आखिरकार मेरे आदरणीय गुरु एवं निर्देशक डॉ. एस.पी.शर्मा (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय) से विचार-विमर्श करके विषय-चयन की प्रक्रिया संपन्न की । और 'वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में सामाजीक चेतना' ('डूब' और 'पार' के विशेष संदर्भ में) शीर्षक विषय पर अपना लघुशोध-प्रबंध प्रस्तुत किया ।

वास्तविकताओं का यथातथ्य निरुपण करने की वजह से जैनजी के उपन्यासों का स्थान कुछ विशिष्ट रहा है, और यही वजह हैं कि पीएच.डी. के विषय-चयन में भी उनके उपन्यासों को भूल पाना संभव नही हुआ । और तब जाकर मेरे आदरणीय गुरु और निर्देशक डॉ. एस.डी.भाभोर (इनचार्ज प्रिन्सीपाल, श्री एम.पी.शाह आर्टस एण्ड सायन्स कॉलेज, सुरेन्द्रनगर) से विचार-विमर्श एवं प्रेरणा पाकर पीएच.डी. का विषय शीर्षक-'वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में युग-चेतना' चुना गया । इस विषय में मेरी विशेष रुचि का कारण यह भी है, कि मेरे हृदय में समाज के शोषित व पीडित वर्ग

के प्रति भावनाएँ आरंभ से ही कोमल रही है । साथ-साथ मैने 'वीरेन्द्र जैन का साहित्य' मनोहरलाल द्वारा संपादित पुस्तक पढ़ी । जिसमें जैनजी के साहित्य के उपर लिखे गए लेखों का एवं पत्रों का संग्रह है, जिससे भी मैं बहुत ही प्रभावित हुई । और हिन्दी साहित्य में जैनजी के सराहनीय योगदान को जान पाई । इस तरह प्रस्तुत विषय का गहराई से अध्ययन कर बेहतर ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

३. सामग्री-संकलन के सूत्र :-

शोधकार्य को श्रेष्ठ व स्तरीय बनाने के लिए सामग्री पूर्ण और प्रामाणिक होनी चाहिए । अपने शोधकार्य को संपन्न करने के लिए मैने विविध प्रकाशनों की पुस्तक सूची का सहारा लिया । प्रकाशनों की पुस्तक सुची में से शोधकार्य से संबंधीत उचित पुस्तकों को मँगवाया । पुस्तको को मंगवाने में मेरे आदरणीय गुरु डॉ. एस.डी. भाभोर ने मेरी हृदयपूर्वक सहायता की ।

वाणी प्रकाशन- दिल्ली, राजकमल प्रकाशन- दिल्ली, एवं राधाकृष्ण प्रकाशन आदि प्रकाशनों ने अति शीघ्रता से पुस्तके उपलब्ध कराने में मेरी सहायता की । जिसकी वजह से मैं जैनजी के समग्र साहित्य से परिचित हो पाई और अध्ययन कर शोधकार्य को लक्ष्य तक पहुँचा पाई । मनोहरलाल द्वारा संपादित पुस्तक 'वीरेन्द्र जैन का साहित्य' मेरे शोधकार्य के लिए जड़ीबुट्टी साबित हुई । जिसमें जैनजी के परिचय से लेकर पुस्तकार तक की बातें संकलित है । इस पुस्तक में विविध विद्वानों के द्वारा जैनजी के साहित्य पर लिखे गए लेख एवं पत्रों का संग्रह है, जो मेरे इस शोधकार्य के लिए महत्वपूर्ण साबित हुआ ।

इसके अलावा आवश्यकता पड़ने पर मैने जैनजी से पत्राचार कर अपनी जिज्ञासा को शांत करने का प्रयास किया । साथ ही मेरी कॉलेज के पुस्तकालय में उपलब्ध

पुस्तकों एवं सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के पुस्तकालय के पुस्तकों से भी मेरे शोधकार्य को सहायता प्राप्त हुई है । विषय संबंधी उपर्युक्त सामग्री प्राप्त करके मैंने उसका अध्ययन प्रारंभ किया । अध्ययन के दौरान मेरे मन में कई कठिन सवाल उठे । अत: मेरे परम श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ. एस.डी. भाभोर और अन्य विद्वानों से साक्षात्कार करके गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया । इस प्रकार सक्रिय एवं सहृदयपूर्ण लोगों के सहयोग से मेरी सामग्री संकलन की कष्टप्रद यात्रा पूर्ण हुई और इसके परिणाम स्वरुप यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत हो सका ।

४. विषय-निरुपण की परिसीमा :-

ज्ञान का सागर गहन है । अत: शोध विषय का अध्ययन करते समये विषयांतर के दोष से बचने के लिए शोध विषय की सीमा तय करना बहुत ही आवश्यक है। और उसी परिसीमा को केन्द्र में रखकर अगर अध्ययन किया जाए तो बहुत ही जल्द शोध-विषय के लक्ष्य तक पहुँच सकते है ।

वीरेन्द्र जैन आम जनता के पक्षघर रहे है । जहाँ सच्चाई है, वहाँ स्पष्टवक्ता बनकर अपनी कलम उठा लेते है । और अन्याय करनेवाले एवं भ्रष्ट व्यक्ति के चेहरे से मुखौटा हटा लेते है । उन्होने अपने क्षेत्र का यथार्थ जो देखा वही लिखा । अपने नीजि अनुभवों का सूक्ष्मता से अध्ययन कर समाज को हानि पहुँचानेवाले तत्वों के खिलाफ जमकर आवाज उठाई है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में जैनजी के उपन्यासों में निहित यथार्थता एवं समसामायिक युग-चेतना को उजागर किया गया है । जैनजी ने स्वतंत्रता के पश्चात की समाज की दयनीय हालत को प्रतिबिंबित किया है । शोषण, भ्रष्टाचार, अन्याय, बलात्कार, छल-कपट, राजनैतिक हथकंडे इत्यादि के दलदल में देश की स्थिति दयनीय हो गई थी ।

आर्थिक और सांस्कृतिक द्रष्टि से भी समाज का विकास होने के स्थान पर विनाश हो रहा था । एसी हालत में जैनजी ने लोगों को अपनी स्थिति के प्रति सचेत कर प्रगती की दिशा दिखाई। जैनजी के उपन्यासों का शोध परक अनुशीलन करते हुए उसमें निरुपित युग-चेतना के विविध क्षेत्रों को उजागर करना मेरे शोध विषय की परिसीमा है ।

५. प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विशेषताएँ :-

- प्रस्तुत शोध-प्रबंध के माध्यम से वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में निहित 'युग-चेतना' को हिन्दी साहित्य के विशाल फलक पर प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।
- जैनजी के साहित्य को पढ़ने के लिए उत्सुक जिज्ञासु पाठक जैनजी के उपन्यासों में निहित करुण संवेदनाओं व दर्दनाक त्रासदी से युक्त युग-चेतना का आस्वाद इस शोध-प्रबंध के माध्यम से ले सकता है ।
- वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों की युग-चेतना के हर पहलू को छूकर उसके विभिन्न कोण-राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना को विश्लेषित करना इस शोध-प्रबंध की विशेषता रही है ।
- वर्गभेद से पीड़ित इस समाज में समाज सुधारकों के लिए यह शोध-प्रबंध किसी हद तक उपयोगी एवं रसप्रद सिद्ध होगा ।
- गरीबी, बेकारी, स्वार्थवृति, दंभ, पाखंड़, भ्रष्टाचार, स्त्री-उत्पीड़न के विरुद्ध क्रांति की चिनगारी भड़काकर अपने अधिकारों के लिए समाज को प्रेरित करने का कार्य किसी हद तक प्रस्तुत शोध-प्रबंध कर पाएगा।
- आधुनिक युगीन साहित्य में जैन के योगदान को स्पष्ट करना प्रस्तुत शोध-प्रबंध की महत्वपूर्ण विशेषता है ।

➢ वीरेन्द्र जैन के जीवन, व्यक्तित्व और साहित्य के विषय में समग्र जानकारी देने का प्रयास करना भी इसकी विशेषता है ।

कृतज्ञताज्ञापन

किसी भी व्यक्ति के सौहार्द पूर्ण व्यवहार एवं मदद करने की भावना को देखकर हम कृतज्ञता से नतमस्तक हो जाते है । उनके प्रति मान और आदर की भावना बढ जाती है । वैसे कृतज्ञता ज्ञापित करना अनुभूति का विषय है, फिर भी हम उसे अभिव्यक्त करके उसके मूल्य को अंकित करने का प्रयास करते है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विषयचयन के प्रारंभ से लेकर अंत तक श्रद्धेय डॉ. एस.डी.भाभोर और प्रा.डी.वी.निसरता ने मुझे हृदयपूर्वक मार्गदर्शन दिया । उनके स्नेह, सहानुभूति पूर्ण और सक्रिय सहयोग एवं निर्देशन में इस शोधकार्य को मैं तय की गई समयावधि में पूर्ण कर सकी हूँ, अतः उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। समय-समय पर डॉ. एस.डी.भाभोर ने मुझे प्रेरणा और दिशा-निर्देश देकर मेरी जिज्ञासाओं को पूर्ण किया । इसके अतिरिक्त उनके पुस्तकालय से भी मुझे शोध-प्रबंध में सहायता मिली है । उन्होने मुझे जो सहयोग दिया है, उसका ऋण में कभी भी चुका नही पाऊँगी ।

इसके अतिरिक्त डॉ. बी.के.कलासवा के प्रति भी मैं हृदयपूर्वक आभारी हूँ, जिन्होने प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से दिशा-निर्देश करके प्रस्तुत शोधकार्य को आगे बढाने में सहयोग दिया है ।

मेरे इस कठिन और समस्याओं से भरपूर सफर में मेरे परिवार और मित्रो ने भी मेरी भरपूर सहायता की है । यदि इनकी सहानुभूति पूर्ण सहायता न मिलती तो यह साधना शायद इतनी जल्द कभी पूर्ण न हो पाती । परम पूज्य मेरी माताजी, पिताजी

एवं दादाजी की सतत प्रेरणा से ही आज ज्ञान के सागर तक पहुँच पाई हूँ। इसके लिए मैं अपने परिवार की सदा ऋणी रहूँगी। श्री प्रणव रावल की जिन्होने शोध-प्रबंध के अध्ययन के दौरान हर कठिन समस्याओं का समाधान किया, अत: मैं उनके प्रति भी दिल से आभारी हूँ।

मेरे आराध्य और इष्टदेव शिवजी एवं गणेशजी तथा कुलदेवी माताजी खंभलायमाँ और ब्रह्माणी माँ की मुझ पर अपार कृपा द्रष्टि रही है।

मैं उन सभी मित्रों, विद्वानों, प्राध्यापकों, शुभेच्छकों एवं लखकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ, जिनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से शोधकार्य में मुझे सहायता प्राप्त हुई...।

दिनांक :

राजकोट

विनीता

मेहता उमा डी.

प्रबन्ध का सारांश

➢ प्रथम अध्याय: वीरेन्द्र जैन: जीवन-यात्रा एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय में वीरेन्द्र जैन की जीवन-यात्रा एवं कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला है । जैनजी का भोगा हुआ यथार्थ उनके साहित्य में आईने की तरह साफ नजर आता है । यह बात उनके जीवन को जानकर फिर उनके साहित्य को पढने पर महसूस होती है ।

जैनजी को बचपन में हुए कठिन अनुभव एवं संघर्ष को इस अध्याय में उभारा गया है । छोटी-सी उम्र में ही उन्होंने अलग-अलग व्यवसाय किए । परिवार और स्वयं की शिक्षा का भार वहन करनेवाले लेखक ने समाज का खोंखलापन महसूस किया । साथ ही अपने क्षेत्र के साथ जुड़ी समस्याओं ने उन्हें और भी अधिक विद्रोही एवं क्रांतिकारी बना दिया । जिसका परिचय उनकी जीवन-यात्रा में दिया गया है ।

जैनजी के कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उन्हें उपन्यासकार, कहानीकार और व्यंग्यकार के रुप में उभारने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है । बालकथा और चित्रकथा के क्षेत्र में भी उनके योगदान को स्पष्ट किया गया है ।

प्रस्तुत अध्यय में जैनजी के प्रमुख उपन्यासों का वस्तुगत परिचय भी संक्षेप में देने का प्रयास किया गया है । साथ-साथ उन्हे मिले विविध सम्मान और पुस्तकार पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

➢ द्वितीय अध्याय: साहित्य और युग-चेतना

द्वितीय अध्याय में साहित्य और समाज की एकरुपता स्पष्ट की गई है । 'हितेन सह साहित्य' की भावना साहीत्यकार में दायित्व बोध कराती है । साहित्य का अर्थ एवं स्वरुप, युग-चेतना का अर्थ एवं स्वरुप को विभिन्न परिभाषाओं एवं उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है ।

समाज की समस्याएँ साहित्य में अंकित होती है, और श्रेष्ठ साहित्य को पढकर समाज उसमें से प्रेरणा ग्रहण कर समस्या का समाधान पाता है । अत: साहित्यकार युगानुरुप जनता को दिशानिर्देश करता चलता है । इसके साथ-साथ साहित्य रुपी जमीन से फूटनेवाले युग-चेतना के विभिन्न कोण-सामाजीक चेतना, राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना और आर्थिक चेतना के स्वरुप को इस अध्याय में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

➢ तृतीय अध्याय: वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और सामाजीक चेतना

तृतीय अध्याय में जैनजी के उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजीक चेतना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । चारों ओर से पीड़ित और शोषित कृषकों एवं मजदूरों की समस्याओं को जैनजी ने अपने उपन्यासों में स्वर दिया है । जैनजी ने आदिवासी जीवन की अबोधता एवं समस्याओं को भी अपने कुछ उपन्यासों में उभारा है ।

समाज में स्त्री-उत्पीड़न, बलात्कार, शोषण और गलत परंपरा व रुढियों का शिकार बनी नारी को जैनजी ने विस्तृत फलक पर प्रस्तुत किया है । प्रेम और यौनवृति की आग में कई घर और परिवार तबाह हो गए । मनुष्य की अतृप्ति इतनी हद तक बढ जाती है, कि वह अतृप्ति की आग में सबको स्वाहा कर देता है । जिसे औरत मात्र देखती रहती है, बोलना मना है । अगर वह कुछ बोलती है, तो उसे मौत के हवाले कर दिया जाता है।

जैनजी ने भारतीय समाज की दहेजप्रथा, विवाहप्रथा, छल-कपट और स्वार्थवृति से परदा हटाया है । समाज में लोगों की सुरक्षा करनेवाले पुलिसतंत्र से ही जब लोग असुरक्षित हो तो जनता किसके पास जाकर अपनी सुरक्षा की माँग करे? इन लागों

को पुलिस और डाकू दोनों का समान भय लगा रहता है । लेखक ने स्वतंत्रता के पश्चात की सामाजिक स्थिति स्पष्ट की है ।

अनाथाश्रम में भ्रष्टाचार, अनाथ बच्चों की दुर्दशा, शोषण, अत्याचार इत्यादि को जैनजी ने सूक्ष्मतापूर्वक रखकर यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है । साथ-साथ विस्थापन की त्रासदी, अपनी ही जमीन से उखडने का दर्द और करुणता को भी उन्होने अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है ।

जैनजी के उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजीक चेतना के कारण उनके उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में प्रतिनिधित्व करते नजर आते है । इस अध्याय में जैनजी के उपन्यासों की सामाजीक चेतना को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

➢ चतुर्थ अध्याय: वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और राजनीतिक चेतना

चतुर्थ अध्याय में वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में निरुपित राजनीतिक चेतना को उजागर करने का प्रयास किया गया है । स्वतंत्रता के पश्चात राजनीति ने अपना रुख बदल दिया । ईमानदारी और नैतिकता के स्थान पर बेईमानी, घूसखोरी और भ्रष्टाचार ने स्थान ले लिया । सरकार और बडे-बडे अधिकारी जनता का कल्याण करने के नाम पर उन्हें लूटने लगे । विकास की विविध परियोजनाएँ आई तो वह आम जनता के लिए विनाश साबित हुई । बाँध योजना के तहत गरीबों की जमीन छील लि गई और अमीर वर्ग की जमीन वैसी की वैसी बनी रही । परिणामत: आम जनता में सरकार के प्रति उत्पन्न रोष और विद्रोह को जैनजी ने अपने उपन्यासों में वाणी दी है ।

सरकारी तंत्र का खोखलापन, दोहरापन, पदाधिकारी के भ्रष्ट आचरण एवं अनैतिकता के सामने आम आदमी की दुर्दशा को अपने उपन्यासों में रेखांकित करते

हुए जैनजी ने सरकारी तंत्र की बखिया उधेड़ कर रख दी है । सरकार की नसबंदी योजना में कई मासूम लोग मारे जाते है । इस धिनौने और क्रुर आचरण के सामने पुलिस भी मौन रहती है । इतना ही नही पुलिस अधिकारी सत्ता के नशे में जनता को मदद करने के बजाय गुंडागीरी पर उतर आते है । जिसमें किसी भी व्यक्ति को सुरक्षा नही मिलती । राजनैतिक चालबाजियाँ और सरकारी नेताओं के कुकृत्यों को जैनजी ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति देते हुए यथार्थ का निरुपण किया है, और विरोध का शंखनाद फूंक दिया है ।

इस अध्याय में जैनजी के उपन्यासों में रेखांकित राजनीति के विभिन्न परिद्रश्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

➢ पंचम अध्याय: वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और सांस्कृतिक चेतना

पंचम अध्याय में वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में निरुपित सांस्कृतिक चेतना को उजागर करने का प्रयास किया गया है । आजादी के बाद इस देश में सांप्रदायिक भेदभाव ने जोर पकडा । जिसके तहत कई मासूम लोग मारे गए । सांप्रदायिकता की आड में पल रहे निजी स्वार्थ को जैनजी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है ।

समाज में वर्णव्यवस्था के अनुसार प्रत्येक लोगों को रहना पडता था । समाज के उच्च वर्ग के लोग निम्न जाति के लोगों का स्पर्श करना पाप मानते थे । अत: अस्पृश्य लोगों को समाज में तिरस्कार और धृणा के अलावा कुछ भी नही मिलता था। अस्पृश्यता के साथ-साथ आम जनता में फैली अंधश्रद्धा पर भी प्रकाश डाला है। जैनजी ने भारतीय समाज के साल भर के तीज-त्योहार, विविध रीति-रिवाज, पुठा-पाठ, शिक्षा तथा आदिवासी संस्कृति का स्वरुप एवं उनकी परंपराओं को विस्तृत रुप में उभारने का प्रयास किया है।

इस अध्याय में जैनजी के उपन्यासों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना पर द्रष्टिपात किया गया है ।

➢ षष्ठ अध्याय: वीरेन्द जैन के उपन्यास और आर्थिक चेतना

षष्ठ अध्याय में वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में निरुपित आर्थिक चेतना को उजागर करने का प्रयास किया गया है ।

समाज के हर व्यवहार की नींव में अर्थ समाया हुआ है । बिना अर्थ के कोई भी काम नही होता । अर्थ के अभाव में आम जनता चक्की की तरह पीसती चली जाती है । बेरोजगारी और गरीबी के चक्रव्यूह में फँसे लोगों का उससे मुक्त होना कठिन है। आज चारों ओर आर्थिक शोषण और भ्रष्टाचार फैंले हुए है । शिक्षित लोग भी आर्थिक शोषण का भोग बनते है । वह जानते है कि उनका शोषण हो रहा है, मगर बेरोजगारी की वजह से सबकुछ जानकर भी अपना शोषण होने देते है ।

समाज का एक भी क्षेत्र एसा नही है, जहाँ आर्थिक शोषण न होता हो । प्रकाशन जगत जो समाज का मित्र माना जाता है, वह भी गरीब लेखकों की संवेदनशीलता का फायदा उठाकर उनका शोषण करते है । उन्हें समय पर रॉयल्टी भी नही दी जाती । इतना ही नही सरकार भी गरीबों का कल्याण करने के नाम पर उनके लिए मिले पैसों को हडप कर जाती है । अत: गरीब हंमेशा गरीब ही रहते है । विस्थापन में गरीब लोगों को मुआवजे में मिली रकम अधिकारी भ्रष्टाचार कर हडप लेते है । इस वजह से उत्पन्न आर्थिक संघर्ष को जैनजी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है ।

इस अध्याय में जैनजी के उपन्यासों में अभिव्यक्त आर्थिक चेतना पर द्रष्टिपात किया गया है ।

➢ सप्तम अध्याय: वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में युग-चेतना: समग्र मूल्यांकन

यहाँ, वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में युग-चेतना का सम्यक मूल्यांकन किया गया है । जिसमें जैनजी की युग-चेता द्रष्टि की आलोचना करने का प्रयास किया गया है।

➢ उपसंहार

अंत में इस शोधकार्य का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है । इसके अंतर्गत आवश्यक क्षेत्रों का जैसे कि- सामाजीक चेतना, राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, आर्थिक चेतना आदि के आधार पर जैनजी के उपन्यासों का मूल्यांकन करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

जैनजी के उपन्यासों में युग-चेतना की अभिव्यक्ति यथार्थ के धरातल पर हुई है । इनके उपन्यासों में वर्तमान की सामाजीक स्थिति को प्रदर्शित किया है । स्त्री-उत्पीड़न, बलात्कार, परंपरा और दुष्प्रथाएँ, दहेजप्रथा, विवाहप्रथा, शोषणचक्र, छल-कपट, अनाथाश्रम में भ्रष्टाचार, बच्चों का शोषण, असुरक्षा, इत्यादि हर पहलू का स्पर्श कर जैनजी ने देश की जनता में चेतना की लहर दौडाने का प्रयास किया है ।

राजनैतिक हथकंड़े, चालबाजियाँ, अनैतिकता, घूसखोरी, पदाधिकारियों का सत्ता का नशीलापन, स्वार्थवृति, पुलिसतंत्र के षड़यंत्र एवं गुंड़ागीरी, विविध परियोजनाओं के तहत स्वाहा होता जाता सर्वहारा वर्ग इत्यादि का चिठ्ठा जैनजी ने खोलकर रख दिया है । और इसके साथ प्रभावित होती सांस्कृतिक चेतना एवं आर्थिक चेतना का निरुपण भी जैनजी ने अपने उपन्यासों में किया है । इस प्रकार शोध-प्रबन्ध के निष्कर्ष पर विचार करने के बाद नि:संकोच रुप से कहा जा सकता है कि जैनजी प्रगतशील विचारधारा को अपनाकर युग-चेता उपन्यासकार के रुप में उभरकर सामने आते है ।

अध्याय–१
वीरेन्द्र जैन: जीवनयात्रा एवं कृतित्व

१.१ जीवन-यात्रा

१.२ कृतित्व

- ➢ उपन्यास-साहित्य
- ➢ कहानी-साहित्य
- ➢ व्यंग्य-साहित्य
- ➢ बालकथाएँ
- ➢ चित्रकथाएँ

१.३ कृतियों का वस्तुगत परिचय: उपन्यास-साहित्य

१.४ वीरेन्द्र जैन को प्राप्त पुरस्कार और सम्मान

अध्याय–१
वीरेन्द्र जैन: जीवनयात्रा एवं कृतित्व
१.१ जीवन–यात्रा :–

वीरेन्द्र जैन का जन्म शिक्षक दिवस पाँच सितम्बर, १९५५ को मध्यप्रदेश के गुना जिले के सिरसौद गाँव में एक जैन परिवार में हुआ । अपने माता-पिता की वह साँतवी संतान है । उनके बाद दो भाईयों और एक बहन का जन्म हुआ । इस तरह वे सात भाई और तीन बहने हैं । जिनमें एक भाई और एक बहन का निधन हो चुका है । उनके पिता खेती-किसानी और साहूकारी का काम करते थे । वीरेन्द्र जैन की माँ जमींदार परिवार से है । पिता का निधन १९८६ में अहमदाबाद में हुआ । वीरेन्द्र जैन के बड़े भाई राजस्थान में अध्यापक रहे । दो साल पहले उन्होने अवकाश ग्रहण किया है । उनके चार भाई अहमदाबाद में रहते है । १९६५ तक पाँचवी कक्षा तक की पढ़ाई गाँव की प्राथमिक शाला में हुई । १९६४ में वे पहली बार पढ़ने के लिए दिल्ली आए थे । प्रवेश नही मिला, सो लौट आए । १९६५ में फिर आए और तब से यहीं रह रहे है । इसी बीच कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय- से संस्कृत की प्रथमा, पूर्व मध्यमा और उत्तर मध्यमा परीक्षाएँ भी पास कर ली थी । सो फिर से दसवीं में पढ़ने के बजाय राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (शिक्षा मंत्रालय) के शास्त्रीय पाठ्यक्रम में प्रवेश ले लिया । महावीर विश्वविद्यालय और लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ में पढ़ते हुए शास्त्री, शिक्षा शास्त्री (बी.एड.) और साहित्य तथा जैन दर्शन से आचार्य की परीक्षाएँ पास की । फिर आचार्य अंतिम वर्ष से पढ़ाई का सिलसिला टूट गया ।

कक्षा दस तक आते न आते अपनी गुजर-बसर का भार स्वयं उठाना पड़ा। क्योंकि इनके पिता की सामर्थ्य उन्हें दिल्ली में रखकर उनका खर्च उठाने की नही थी। घर में इनके अलावा पढ़नेवाले चार भाई और जो थे। उनके सबसे बड़े भाई उन दिनो पीएच.ड़ी. कर रहे थे, उन्हीं दिनों उनका निधन हो गया था।

वीरेन्द्र जैन ने सबसे पहली नौकरी प्रज्ञाचक्षु डॉ. इन्द्रचंद्र शास्त्री को किताबें पढ़कर सुनाने और उनके बोले गए लेखन को कागज़ पर उतारने की की थी। जहाँ परिवार के लोगों ने उन्हें दिल्ली में भर्ती करवाया था। वहीं से तब निकाल दिए गए थे, जब उन्होंने नौवी कक्षा पास की थी। तब से उन्होने अपनी गुजर-बसर के लिए कई तरह के काम किए। प्लास्टिक का पाउडर भरने, डनलोपिनों के गद्दे बेचने, तार बनाने की फैक्टरी में हेल्परी करने, सब्जी मंड़ी में आढ़तियों की बोलियाँ लगाने, कैंटीन चलाने, सुई-धागा, बटन, कफ, कालर, दवाइयाँ सप्लाई करने, एक मंदिर में पुजारी का काम करने और भी कुछ छोये-मोटे काम करने के एवज में जो मिला उसी से गुजर-बसर की और पढ़ाई जारी रखी। कुछ छात्रवृतियाँ भी पाई।

सन् १९७३ में पहली ठीकठाक नौकरी भारतीय ज्ञानपीठ में मिली। फिर १९७५ में जैनेन्द्रकुमार के पूर्वोदय प्रकाशन में, १९७७ में राजकमल प्रकाशन में, १९७९ में दिल्ली प्रेस की सरिता मुक्ता पत्रिका में उप-संपादक हुए। १९८२ में टाईम्स ऑफ इन्डिया ग्रुप की सारिका में और १९९१ से आज तक टाईम्स ऑइ इन्डिया के सान्ध्य टाईम्स अखबार में संपादन-विभाग में उपसंपादक का काम करते हैं।

२३ जून, १९७९ को मणिकांता चौधरी के साथ विवाह हुआ । १९८१ में पहली संतान प्रतीक का जन्म हुआ । जो उसी वर्ष अकाल में ही काल-कवलित हो गया । १९८३ में पहली बिटिया भूमिका का जन्म हुआ और १९८५ में दूसरी बेटी इति का ।

१.२ कृतित्व :-

वीरेन्द्र जैन ने अनेक उपन्यास, कहानी-संग्रह, व्यंग्य संग्रह, चित्रकथाएँ, बाल-कथाएँ, लघु उपन्यास आदि लिखे हैं । उनकी रचनाओं में हमारे समाज की कठोर वास्तविकताओं के दर्शन होते है । उनके व्यंग्य संग्रह भी अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं । वीरेन्द्र जैन को जो कुछ कहना है अपने बारे में या अपनी अनुभूतियों के बारे में वे अपनी रचनाओं में बराबर कहते हैं । वीरेन्द्र जैन से हुए मेरे पत्राचार में उन्होंने स्वयं लिखा है कि- ''मेरे बारे में मुझे जो कुछ भी कहना है, वह मैं अपनी रचनाओं में बराबर कहता रहा हूँ ।'' 'डूब' और 'पार' की रचना-प्रक्रिया के बारे में उन्होंने एक आलेख लिखा था, जो कथादेश के अक्तूबर २००४ के अंक में छपा था ।

१९७७ में उन्होने व्यंग्य और 'अनातीत' उपन्यास लिखना शुरु किया था । 'अनातीत' उनका पहला उपन्यास है । यों कहानियाँ १९७३ से ही लिखने लगे थे । पुस्तक के रुप में उनका पहला उपन्यास 'सुरेखा-पर्व' १९७८ में छपकर आया । जो उसी वर्ष लिखा गया उनका दूसरा उपन्यास था । 'सुरेखा-पर्व' उपन्यास छपने पर उन्हें राजकमल प्रकाशन की नौकरी गँवानी पड़ी । चूँकी यह किसी और प्रकाशन से

छपा था । फिर भी उन्होने लिखना जारी रखा । शुरुआती चार पुस्तकें वीरेन्द्रकुमार जैन नाम से प्रकाशित है, फिर वीरेन्द्र जैन नाम से ।

प्राय: सभी पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ, लेख प्रकाशित होते रहे । कई रचनाओं का अनुवाद कन्नड, तेलुगु, मराठी, मलयालम, अंग्रेजी, पंजाबी और अन्योन्य भाषाओं में हो चुका हैं । रचनात्मक लेखन के साथ-साथ पत्रकारिता भी करते हैं । यही उनका पेशा है । विभिन्न प्रतिनिधि संकलनों में भी कई रचनाएँ संकलित हो चुकी हैं ।

दिल्ली, शिमला, आगरा, हैदराबाद, लखनऊ, त्रिवेन्द्रम, कुरुक्षेत्र और अन्योन्य के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में कतिपय शोधार्थी वीरेन्द्र जैन की रचनाओं पर शोध-कार्य कर रहे हैं ।

समाज, शासन, धर्म, संस्कृति, व्यवस्था के दोहरे आचरण को उजागर करना, विरोधाभासों को उघाड़ना, आतंक और आतताईयों की पहचान करवाना, शोषितों और भरमाए गए लोगों, समूहों के भयातुर मौन को शब्द देना वीरेन्द्र जैन अपने लेखन का उद्देश्य मानते हैं । परिवर्तन और समानता की आकांक्षा पाले हुए हैं । व्यक्तिगत नैतिकता और जोखिम उठाने की हद तक साहस उनका जीवनाधार हैं ।

वीरेन्द्र जैन के प्रमुख उपन्यास, कहानी-संग्रह, व्यंग्य-संग्रह, बालकथाएँ, चित्र-कथाएँ आदि निम्नानुसार हैं ।

१.२.१ उपन्यास-साहित्य :-

नये और उभरते हुए उपन्यासकारों में वीरेन्द्र जैन ने अपनी एक खास और

विशिष्ट पहचान बनाई है । एक सजग उपन्यासकार की भाँति अपनी रचनाओं के पूरे व्यवस्थातंत्र पर बड़ी पैनी और सूक्ष्म द्रष्टि रखते हैं । इस कदर पैनी चीजें उनकी दृष्टि से छूटती नहीं । वह चाहे 'डूब' हो, 'पार' हो या फिर 'शब्द-बध' ही क्यों न हो ! उनके उपन्यास यथार्थ से हमारा आविष्कार करवाते हैं । वीरेन्द्र जैन के प्रमुख उपन्यास निम्नानुसार है ।-

१) सुरेखा-पर्व १९७८

ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली

२) अनातीत- १९८३

प्रमोद प्रकाशन, नई दिल्ली

३) प्रतीक: एक जीवनी- १९८३

तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

४) शब्द-बध १९८७

सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली

(१९९३ से वाणी प्रकाशन से प्रकाशित)

५) उसके हिस्से का विश्वास- १९८८

(तीन लघु उपन्यास)

प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली

६) सबसे बड़ा सिपहिया- १९८८

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

७) रुका हुआ फैशला- १९८९ (दो लघु उपन्यास)

हिन्दी साहित्य संचार, दिल्ली

८) डूब- १९९१

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

९) तलाश- १९९२ (लघु उपन्यास)

आयाम प्रकाशन, नई दिल्ली

१) शुभस्य शीघ्रम- १९९२

('अनातीत' का परिवर्द्धित रुप)

दिनमान प्रकाशन, दिल्ली

११) प्रतिदान- १९९४- (तीन लघु उपन्यास)

जगतराम एण्ड़ सन्स, दिल्ली

१२) पार- १९९४

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

१३) पंचनामा- १९९६

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

१४) पहला सप्तक-

(सात लघु उपन्यास की एक किताब जिसमें 'सुरेखा-पर्व' और 'अनातीत' भी शामिल हैं ।)

१५) गैल और गान

१६) दे ताली

१.२.२ कहानी-साहित्य :-

वीरेन्द्र जैन की ज्यादातर कहानियाँ विषय वैविध्य को लेकर चलती हैं। इनमें सहजता, आकर्षकता, ताजगी और व्यंग्यात्मकता मिलती हैं। वीरेन्द्र जैन की प्रमुख कहानियाँ निम्नानुसार है।-

१) बायीं हथेली का दर्द- १९८९

राजभाषा प्रकाशन, दिल्ली

२) मैं वही हूँ- १९९०

जगतराम एण्ड़ सन्स, दिल्ली

३) बीच के बारह बरस-

४) तीन चित्रकथाएँ- १९९३

(प्रेमचंद, प्रसाद, जैनेन्द्र की कहानी का रुपांतरण)

विकास पेपर बैक्स, नई दिल्ली

१.२.३ व्यंग्य-साहित्य :-

वीरेन्द्र जैन के व्यंग्यो में पैनापन हैं, धार हैं, पर कहीं भी तीखापन नजर नहीं आता। उनके व्यंग्य सामाजिक, राजनीतिक हालतों को परखकर, विश्लेषित कर यथार्थ की दिशा में ले जाते हैं। वीरेन्द्र जैन अपने व्यंग्यों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके

प्रमुख व्यंग्य-संग्रह निम्नलिखित हैं ।-

१) रावण की राख- १९८२

प्रमोद प्रकाशन, नई दिल्ली

२) किस्सा मौसमी प्रेम का- १९८८

पंकज प्रकाशन, दिल्ली

३) पटकथा की कथा- १९९२

प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली

४) रचना की मार्केटींग

१.२.४ बालकथाएँ :-

वीरेन्द्र जैन ने अनेक बालकथाएँ भी लिखी हैं, जो निम्नानुसार हैं ।-

१) तुम भी हँसो- १९८७

सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली

२) बात में बात में बात- १९८९

अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली

३) मनोरंजक खेल कथाएँ- १९९१

चिल्ड्रन बुक सोसायटी, नई दिल्ली

४) खेल प्रेमी मामाश्री- १९९१

पंकज पब्लिकेशन, नई दिल्ली

५)	हास्य कथा बत्तीसी

१.२.५ चित्रकथाएँ :-

वीरेन्द्र जैन की चित्रकथाएँ निम्नलिखित हैं ।-

१)	पितृभक्त कृणाल- १९८४

विक्रम चित्रकथा, नई दिल्ली

२)	तिगड़मबाज और साधू दुःखभंजन- १९८५

विक्रम चित्रकथा, नई दिल्ली

इनके अतिरिक्त वीरेन्द्र जैन द्वारा संपादित किताबें निम्नलिखित हैं ।-

➢ ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता साहित्यकार

(संकलन-संपादन- १९८८)

प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली

➢ धूप की लपटें

(सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की अनुदित और असंकलित कविताओं का संग्रह)

○ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली

(नौ खंडों में)

१.३ कृतियों का वस्तुगत परिचय: उपन्यास-साहित्य

वीरेन्द्र जैन ने अपने उपन्यासों में सामाजिक शोषण और अत्याचार को उभारा

है, तो साथ-साथ राजनीतिक हथकंड़े, षड़यंत्र, एवं भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करने की भी कोशिश की हैं। समाज के स्वार्थ, दंभ, लालच, पुलिसतंत्र के अमानुषिय व्यवहार एवं पत्रकारिता के क्षेत्र की असंगतियों को भी शब्द के माध्यम से अपने उपन्यासों में वाचा देने का सराहनीय प्रयास किया है। वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय देखिए-

१.३.१ सुरेखा-पर्व :-

विद्या दस साल से अनाथाश्रम में रह रही हैं। विद्या से मिलने एक औरत हररोज अनाथाश्रम आती है। जो विद्या के साथ ढेरों बाते किया करती हैं। विद्या को बाद में पता चलता है, कि वह औरत जिससे वह बातें किया करती हैं, वही उसकी माँ है। बाद मे उस औरत ने विद्या को गोद ले लिया। और अपने घर ले आई। विद्या हायर सेकंडरी में पढ़ रही है। वह उस औरत को मम्मी कहकर पुकारने लगती हैं। विद्या की मम्मी विद्या को अपने घर रखने के बजाय उसकी शादी एक एसे लड़के के साथ कर देती है, जो शादी-ब्याह में भोपूँ (बाजा) बजाने का काम करता है। विद्या को विनय के बारे में बहुत सारी बातें झूठी और बेबुनियाद बताई जाती है। विनय के दोस्त यती को जब विनय की शादी के बारे में पता चलता है, तो वह सोचने लगते है कि- दिल्ली की रहनेवाली पढ़ी-लिखी लड़की विनय के साथ शादी करने के लिए किस तरह तैयार हुई होगी !

शादी के बाद विनय अनाज बेचने के लिए दिल्ली जाता है, मगर अनाज का

पैसा लेकर वह गायब हो जाता है । घर वापस नही आता । यती जब उसे गाँव जाने के लिए समझाता है, तो वह अपनी ऊँगली पर निकल आए फोड़े का बहाना बनाकर जाने से इनकार कर देता है । मगर थोड़े दिन बाद वह स्वयं गाँव चला जाता हैं । विनय के जाने के बाद विद्या ने राहत की साँस ली । क्योंकि विनय जब तक यहाँ था, तब तक विद्या की मम्मी अपने दामाद को खुश रखने के बहाने बीस बरस से अतृप्त-सुप्त अपनी इच्छाओं को जगा रही थी । विनय अक्सर मम्मी के साथ सटकर बैठता था । और विनय का हाथ मम्मी के शरीर के साथ अजीब-सी हरकते करने लगता । एक दिन विद्या ने मम्मी और विनय को कमरे में जिस हालत में देखा, उस द्रश्य को और देखने के लिए क्षण-भर वह वहाँ रुक न पाई ।

दिल्ली से विद्या ससुराल आई और एक बच्चे को जन्म दिया । ''वह (बच्चा) मासपिण्ड से ज्यादा कुछ नहीं था, जिसे लगता था किसी चीज ने जगह-जगह से नोंच खाया हो ।''[१] बच्चे के गर्भ में रहते विनय ने विद्या के साथ राक्षसों सा व्यवहार किया था । जिससे बच्चा गूँगा, बहरा और अपाहिज जन्मा था । विद्या यती के साथ दिल्ली अपनी मम्मी के यहाँ आती हैं । मगर वह अपनी मालकिन के साथ मसूरी गई थी । इसलिए विद्या को थोड़े दिन यती के घर रुकना पड़ा । विद्या को यती के घर बहुत सुख और शांति मिली । यती ने तो विद्या के बेटे अश्विनी को अस्पताल भर्ती भी करवा दिया, ताकि उसकी हालत दिन-पर-दिन सुधरने लगे । विद्या अक्सर यती की तुलना विनय से किया करती है । और यती के प्रति आकर्षित भी होने लगती हैं।

विद्या की मम्मी विद्या और यती के संबंध को लेकर बुरा-भला कहती है । गाँव में विनय एक लड़की के साथ अपनी इच्छातृप्ति करते हुए पकडा जाता है । जिससे गाँववाले मिलकर उसे पीट देते है । विद्या को गाँव आकर इस कांड़ का पता चलता है ।

एक दिन विनय अपनी बहन के लिए लड़का देखने दिल्ली आता है । मगर वह विद्या की मम्मी के साथ महिनाभर अपनी इच्छातृप्ति के लिए रचा-पचा रहता है । वह इतना कमजोर हो जाता है, कि सिलाई काम करने के लिए स्टूल पर बैठ भी नहीं पाता । यह देखकर विद्या विनय से कहती है कि- लगातार महीने भर औरत के साथ सोओगे तो यही होगा । तब विनय गुस्से से लाल होकर विद्या को पीटने लगता है । इतना ही नहीं, उसने एक दिन अश्विनी को जोर से जमीन पर पटक दिया । जिससे उसकी मौत हो जाती है । विद्या यह देखकर सन्न रह जाती है । और आँखो से आँसू बहने लगते है । विद्या को दूसरी बार गर्भ रहता है । मगर अब विनय जैसे ही विद्या के बिस्तर पर आता है, तो वह जोरो से चिल्लाने लगती है । क्यांकि उसे डर हैं, कि कहीं यह बच्चा भी गूँगा और बहरा न जन्मे । ''विद्या ने फिर एक लड़के को जन्म दिया। यह गोरा-चिट्टा और पूरी तरह स्वस्थ पैदा हुआ ।''[२] मगर विनय इस खुशी में शामिल न हो पाया । क्योंकि वह जिम्मेदारी से भागना चाहता था । विनय विद्या और गोपाल के संबंध पर भी शक करने लगता है । घर के गहने चुराये थे विनय ने, जिसका इल्जाम भी विद्या पर ही लगाया जाता हैं ।

विद्या का दूसरा बेटा क्षितिज एक दिन रो रहा था । तब विनय सिगरेट का जला ढूँढ उसके शरीर पर लगा देता हैं । यह देखकर विद्या जली लकड़ी चूल्हे में से उठाकर चार-पाँच बार विनय को चाँप देती है । फिर विनय जैसे ही संभलता है, तो वह उसी लकड़ी से विद्या को तब तक पीटता रहता है, जब तक की वह बेहोश होकर गीर नहीं जाती । एक दिन विनय के पिता की चिट्ठी यती के घर आती है- कि, विद्या बिमार है, और वह अपनी मम्मी के घर आना चाहती है । तुम आकर ले जाओ। यती यह चिट्ठी लेकर विद्या की मम्मी के घर पहुँचता है । तब विद्या वहाँ सशरीर मौजूद थी । तब सारी वास्तविकता यती के सामने स्पष्ट होती है। विद्या यती को सारी घटना कह सुनाती है कि- वह गाँव से दिल्ली किस तरह पहुँची । विद्या यह भी बताती है कि- ''एक दिन विनय क्षितिज के काफी देर तक रोने पर उसे दूध की जगह पानी पिलाने की कोशिश कर रहा था । विनय ने जोर से उसकी पसली पर घूँसा मारा । उधर उसका मुँह खुला और इधर विनय का हाथ डगमगा गया । पूरी चम्मच क्षितिज के मुँह में धँस गई । और उसके प्राण-पखेरु उड़ गए ।''[३] इस तरह विद्या बड़ा भारी मन लेकर दिल्ली आई।

विनय ने साधु श्री १०८ विनय कीर्तीजी महाराज के नाम से दीक्षा ले ली । यह बताने जब यती विद्या की मम्मी के घर पहुँचता है, तो वहाँ विद्या मौजूद नही थी। यती विद्या के बारे में पूछता है- तो उसकी मम्मी विद्या का पता यती को देती है । कागज में जो पता लिखा था । उस स्थान पर जाने की हिम्मत यती में नही थी ।

क्योंकि कागज पर लिखा हुआ पता उस अनाथाश्रम का था, जहाँ विद्या पहले रहती थी । विद्या जब यती के घर रहने आई थी, तब वह यती को अनाथाश्रम ले गई थी। उसने यती को सुरेखाजी से भी मिलवाया था । और सुरेखाजी की सारी कहानी-व्यथा-कथा कह सुनाई थी । और अंत में विद्या ने कहा था कि- ''सुरेखा-पर्व की पुनरावृति हो रही है, और इस सुरेखा-पर्व के तुम प्रत्यक्षदर्शी हो ।''[४] यती यही सोचकर अनाथाश्रम जाने की हिम्मत नही जुटा पाता कि- उस स्थान पर अब एक नहीं दो-दो सुरेखाजी का सामना वह कैसे कर पाएगा ?

समाज में एसी कई सुरेखा है, जो समाज द्वारा यातना, उपेक्षा और वितृष्णा का भोग बनती है । पीड़ा का गरल पीकर भी अमृत रुपी स्नेह देने का प्रयास वह तब तक करती है, जब तक उसकी सहनशक्ति की हद पूर्ण नहीं हो जाती, वह स्वयं समाप्त नहीं हो जाती !!!

१.३.२ उसके हिस्से का विश्वास :-

समग्र उपन्यास की कथा लेखक ने प्रथम पुरुष 'मैं' सर्वनाम को लेकर आत्मकथात्मक शैली में लिखी है । जिसमें कबीर के द्वारा छली गई भोली भाली और मासूम कविता की संवेदनाएँ, व्यथा और पीड़ा को उड़ेलने का भरसक प्रयास वीरेन्द्र जैन ने किया हैं ।

शास्त्रीजी ने दफ्तर से दो महीने की छुट्टी इसलिए लि थी, ताकि वह घर बैठकर उपन्यास की रचना करना चाहते थे । उन्होने अपनी पत्नी और बच्चों को भी

ननिहाल भेज दिया, और घर का सारा सामान भी लाकर रख दिया । ताकि एकाग्रता बनी रहे और घर से बाहर भी न निकलना पड़े । मगर परिस्थितिवश उन्हे अपने एक सहधर्मी के साथ दफ्तर जाना पड़ता है । वहाँ उन्हें कबीर बैठा हुआ मिलता है । नरेशजी ने पिछले सप्ताह ही शास्त्रीजी का परिचय कबीर से करवाया था कि- ''शास्त्रीजी ये है युवा नाटककार कबीर और कबीर ये है हमारे सहयोगी शास्त्रीजी ।''[५] कबीर हिन्दी के वरिष्ठ लेखक भटनागरजी का लेखकीय सहयोगी है । शास्त्रीजी और कबीर कैन्टीन में चाय पीने जाते है । शास्त्रीजी के सामने तब कबीर एक रहस्योदघाटन करता है- कि उसने कविता से कोर्ट मैरिज कर ली है । जिससे घरवाले नाराज है। इसलिए दोनों यहाँ चले आए है और 'ताजमहल' में ठहरे है । यह एसी होटेल है- जहाँ ''आए दिन मुमताजे उड़ाई और दफनाई जाती है ।''[६] यह बात कबीर नहीं जानता था। जब शास्त्रीजी और कबीर भागे-भागे 'ताजमहल' पहुँचे, तो एक बहुत बड़ी दुर्घटना से दो-चार होते हुए रह गए । कविता कबीर को लिपटकर जोरों से रोने लगी।

शास्त्रीजी उन दोनो को अपने घर तब तक के लिए ले गए जब तक कि कबीर कोई अच्छी-सी-नौकरी ढूँढ न ले । कबीर अब तो नौकरी ढूँढने के बजाय दिन भर घर में घूसा रहता है । शास्त्रीजी ने उसे समझाया और दो-चार जगहों के पते भी दिए, ताकि नौकरी ढूँढने में सहायता हो । पर कबीर हर बार कुछ न कुछ बहाना कर वापस लौट आता । और भाग्यवश उसे कहीं नौकरी भी नही मिली । नरेशजी से शास्त्रीजी को पता चलता है कि पहले कबीर संपादकजी के घर रहने गया था । पर उसके

व्यवहार से तंग आकर संपादकजी की पत्नी ने उन्हें घर से निकाल दिया था । तब कविता और कबीर 'ताजमहल' पहुँचे, और वहाँ से उनके घर । शास्त्रीजी अब कबीर की वास्तविकता से परिचित होते जा रहे थे । कविता के लखनऊवाले जीजाजी कविता से मिलने शास्त्रीजी के घर आ पहुँचते है । पर कबीर घर से बाहर चला जाता है । दूसरे दिन दोनों जीजाजी से मिलने होटेल जाते है, और तुरंत वापस भी लौट आते है । कविता आकर जोरो से रोने लगती है । और शास्त्रीजी से पूछती है कि- ''क्या 'चीफ-सब' के लिए इंटरव्यु हुआ था पिछले महीने ?''[७] तब शास्त्रीजी साफ मना करते है । तब कविता शास्त्रीजी को सारा ब्योरा बताती है कि- आज तक कबीर ने उसे यही बताया है कि वह 'चीफ सब' की पोस्ट पर नियुक्त है । और आप सब का बोस है । कबीर ने उससे यह बताकर शादी की है, कि उसे यह नौकरी मिल गई है । और अगर वह उससे जल्द से जल्स शादी नहीं करेगी तो उसकी शादी संपादकजी के दोस्त की लड़की के साथ तय हो जाएगी । तब उसमें कबीर के प्रति एकाधिकार की भावना जागृत हो जाती है । और वह भागकर कबीर के साथ शादी कर लेती है। कविता का विश्वास अब कबीर पर से उठता चला जाता है ।

शास्त्रीजी कबीर से पीछा छुड़ाने के लिए उसे एक स्थान पर नौकरी पर भी रख देते है । और एक किराए का मकान दिलवा देते है । शास्त्रीजी की पत्नी मायके से लौट आती है । वह कविता से मिलना चाहती है, पर अब हालात मिलने जैसे नही थे । क्योंकि एक दिन कबीरने आकर बताया था कि उनके घर से उसके दो हजार

रुपये गुम हुए है, यह झूठा इल्जाम सुनकर शास्त्रीजी कबीर को घर से बाहर निकाल देते है ।

कविता एक दिन रोते हुए शास्त्रीजी के घर आती है । और बताती है कि- कबीर को खाँसी के साथ-साथ खून भी निकलता है । शास्त्रीजी कविता और कबीर को लेकर डॉक्टर के पास जाते है । उस डॉक्टर ने दूसरे बड़े डॉक्टर के पास जाकर इलाज करवाने की सलाह दी । पर कबीर उनके पास जाने के लिए तैयार नही होता। दूसरे दिन फरुखाबाद से कविता के मौसा-मौसी आते है, और वह कबीर को उस डॉक्टर के पास ले जाते है । तब पता चलता है, कि- जनाब उस डॉक्टर के पास जाने से मना क्यों कर रहे थे ? वास्तव में कबीर उस डॉक्टर को तीन महीने पहले ही दिखा चुका था । डॉक्टर ने बताया था कि- उसे टी.बी. हो गई है । समय रहते इलाज करवाना ही उचित होगा । पर यह जनाब इलाज करवाने के बजाय शादी-ब्याह में पड़ गए ।

वास्तव में कबीर ने कविता के साथ षड़यंत्र रचा था । खुद की बिमारी का इलाज करवाने के लिए उसके पास तो इतने पैसे नही थे- कि वह अपना इलाज करवा पाए । तब कबीर ने अपने स्वार्थ के चंगुल में कविता को फँसाया । और प्रेम का स्वाँग रचा । जबकि कविता यही मानती रही कि- जनाब उससे प्रेम करते है । कबीर यह भली-भाँति जानता था कि कविता के परिवारवाले उन दोनो को दु:खी नही देख पाएँगे । और उसका इलाज अवश्य करवाएँगे । इसलिए उसने कविता के साथ

कोर्ट मैरिज कर ली । फरीदाबाद से आए कविता के मौसा-मौसी जब यह सारी बात शास्त्रीजी और उनकी पत्नी को बताते है, तो वह आश्चर्य से युक्त हो जाते है । कविता के मौसा-मौसी कविता और कबीर को अपने साथ ले जाते है और वहाँ जाकर वह कबीर का इलाज करवाएँगे । चाय पीने के बाद सब उठने लगते है । अंत में शास्त्रीजी उस चाय के कप को उठाकर फेंक देते है, जिसमें कबीर ने चाय पी थी । तब शास्त्रीजी की पत्नी कहती है कि- ''जूठा कप तो बाहर फेंक दिया तुमने, मगर उसे कहाँ फेंकोगे जो पल रहा है तुम्हारी मुँहबोली बहन के पेट में ।''[८]

१.३.३. प्रतिदान :-

नरेन को पाँच वर्ष के अनुबंध पर अपनी मनपसंद नौकरी मिल जाती है । पिताजी के अधिक आग्रह की वजह से नरेन विवाह से मना नहीं कर पाता । नरेन इस शर्त पर शादी करने के लिए तैयार हुआ कि वह दहेज में एक रुपया भी नही लेगा । नरेन के पिताजी नरेन की इस शर्त पर नाखुश होते है । पर नरेन न माना सो न ही माना । बिना दहेज के नरेन और प्रभा की शादी संपन्न होती है । परिवार की प्रथानुसार विवाह के अगले दिन वर-वधू को गाँव के साथ लगे पहाड़ पर बने मंदिर में जाना होता था । और जब तक दर्शन करके वापस आकर प्रभा सबको खिचड़ी बनाकर नही खिला देती, तब तक वह स्वयं कुछ नही खा सकती । मगर प्रभा की हालत खराब होने की वजह से नरेन ने यह बात कल पर टाल दी । दूसरे दिन प्रभा तलहटी तक तो बैलगाडी में आई । पर कड़ी धूप में पहाड़ की चोटी पर बमुश्किल से चढ़ पाई ।

भूख और कमजोरी की वजह से उतरते उक्त प्रभा को चक्कर आ जाते है । अधमरी-सी प्रभा घर पहुँचकर खिचड़ी बनाने चूल्हे के पास बैठती है, तो चूल्हे की गर्मी की वजह से वह फिर बेहोश हो जाती है । ''सभी ने एक मत से घोषणा कर दी कि- या तो प्रभा को असाध्य रोग है, या फिर उस पर किसी प्रेतात्मा का साया है ।''[९] शाम तक प्रेतात्मा को भगाने के प्रयास किए गए । जब नरेन को यह बात पता चलती है, तो वह कहता है कि- ''वह तीन दिन की भूखी प्यासी है । ऐसी हालत में उसे खाना-पानी चाहिए न कि झाडा-बुहारी या ओझाओं के लटके-झटके ।''[१०]

नरेन की नौकरी शुरु हो जाने की वजह से वह प्रभा को लेकर शहर चला जाता है । अम्मा पाँच महीने बाद नरेन के घर आती है । और पूरे घर की व्यवस्था बदल दी जाती है । अम्मा अपने रहने के लिए पहला कमरा पसंद करती है । जो आते जाते प्रवचन प्रसारण केन्द्र बन जाता है । एक दिन नरेन के घर उसके ऑफिसर दंपती मिलने आते है । अम्मा उनके सामने नरेन और प्रभा की शिकायत करने लग जाती है । प्रभा जब शर्बत देने जाती है, तभी अम्मा ने टोका- ''न सिर ठका, न हाथों में चूडियाँ पहनी है ।''[११] ''अब तो उतार लेती इस 'मक्सी' को ।''[१२] घर का वातावरण तंग होते देख ऑफिसर दंपती किसी काम का बहाना कर चले जाते है । नरेन और प्रभा एक-दूसरे को नाम लेकर पुकारते है, यह बात भी अम्मा को अच्छी नही लगती और दूसरे दिन सुबह गाँव वापस चली जाती है ।

प्रभा और नरेन के सर पर मनीष, शीतेष और पगल्भा को पढ़ाने का दायित्व भी आ जाता है । घर का खर्च बढ़ जाने की वजह से नरेन सुबह सात बजे से लेकर रात दस बजे तक काम में जुटा रहता है । नरेन की तनख्वाह में से एक मोटी रकम उधारी पाटने मे ही चली जाती थी । ''शेष बचे से इनकी फीस, जेब-खर्च, किताबें, कापियाँ, घर खर्च और नरेन का जेब-खर्च यह सब नहीं निकल पाता था ।''[१३] मनीष इन सब का दोषी नरेन को ही ठहराता है । अगर नरेन ने दहेज ले लिया होता, तो आज उनकी यह हालत नहीं होती । प्रभा दायित्व बोज से प्रेरित होकर गर्भ-निरोधक गोलियों का बोक्स नरेन के सामने घर देती है । और अपने आप को पाँच साल तक के लिए समेट लेती है । जब तक की इन सब की पढ़ाई खत्म नही हो जाती । शीतेष इस वर्ष मेडिकल कॉलेज में भर्ती हो जाता है । और मनीष पढ़ाई आधी छोड़कर नौकरी में लग जाता है । अब तो मनीष को अच्छे-भले खाने में भी कंकड मिले नजर आने लगते है ।

प्रभा और नरेन को अध्यापक की नौकरी के लिए भोपाल के केन्द्रीय विद्यालय में चुन लिए जाते है । पंद्रह जुलाई को हाजिर होना था । इसलिए दोनों ने सोचा कि जाने से पहले सबको बिदाई की पार्टी दे दी जाए । प्रभा ने सुबह से ही पार्टी की तैयारी शुरु कर दी थी । मनीष अब तो केवल स्नान व खाने के लिए ही घर आता था । आज भी वह हमेशा की तरह नौ बजे के बाद स्नान करने के लिए आया । और नहाते वक्त अधिक पानी की माँग की । प्रभा ऊपर की टंकी से पानी लेने जाती है।

और पैर फिसलने से गिर पड़ती है। मनीष प्रभा को एसी हालत में छोडकर भाग जाता है। प्रभा के पांव में प्लास्टर आता है। शाम को नरेन मनीष को एक चाटा जड़ देता है। ''नरेन का हाथ अभी अपनी जगह वापस भी न आया था कि मनीष ने चप्पल उतारकर नरेन पर बेतहाशा बरसानी शुरु कर दी।''[१४] प्रभा बीच में पड़ती है, तो मनीष ने दो-तीन लातें उसकी पीठ और पेट में दे मारी। इतने कांड़ के बावजूद मनीष ने बिलकुल विपरीत पत्र पिताजी को लिख भेजा कि- नरेन और प्रभा ने उसे मार डालने के प्रयास किए, पर वह भाग निकला।

नरेन और प्रभा भोपाल पहुँचकर नौकरी पर जुट जाते है। अचानक एक दिन प्रभा के पेट में दर्द शुरु हो जाता है। डॉक्टर ने चैकअप करके नरेन को बताया कि- ''आपकी पत्नी के कहीं गिरने, फिसलने, या भारी चोट लगने से पेट में मौजूद बच्चा हिल गया था काफी पहले।''[१५] अगर समय रहते इसे निकाला नहीं गया तो बच्चे के मर जाने से प्रभा के शरीर में जहर फैल सकता है, जिससे प्रभा की जान भी खतरे में पड़ सकती है। डॉक्टरने यह भी बताया कि- प्रभा अब कभी माँ नही बन सकती। जिस कमरे में प्रभा को लिटाया था, नरेन वहाँ गया तो प्रभा रोने लगी और कहने लगी कि- ''बताओ नरेन, मैं माँ बनूँगी न ?''[१६] नरेन क्या उत्तर देता। डॉक्टर ने भी गलत बात बताते हुए प्रभा को धैर्य बँधाया कि- तुम दो-तीन दिन में बच्चे को जन्म दोगी। नरेन की समझ में कुछ नही आ रहा था कि अब क्या किया जाए? शीतेष एक उपाय देता है। और दोनों दिल्ली जाकर 'पालने' से दो दिन के बच्चे को गोद लेते है।

उसी शाम डॉक्टर ने भी प्रभा का ऑपरेशन कर दिया । प्रभा जब आँखे खोलती है, तो नरेन बच्चा उसके सामने धर देता है । उलाहना-सा देती हुई प्रभा बोली- ''देखो, नरेन मेरा बच्चा । देखो, मैं माँ बन गई ।''[१७]

१.३.४ डूब :-

'डूब' वीरेन्द्र जैन की एक सशक्त कृति है । जिसमें लेखक ने यथार्थ का निरुपण कर समाज और राजनीति की अनैतिकता का पर्दा फाश किया है । उतरप्रदेश और मध्यप्रदेश की सीमारेखा पर बेतवा नदी पर राजघाट नामक बाँध बनाने की योजना रखी जाती है, कि वह क्षेत्र 'डूब' क्षेत्र में आ जाता है । डूब के प्रभाव क्षेत्र तले प्रमुखत: लड़ैई, सिरसौद, पानीपुरा, चंदेरी, और मुंगेर जैसे गाँव आए नहीं कि- उन्हें सारी सुविधाएँ देना बँध कर दिया जाता है । मदरसा और गाँव तक पहुँचनेवाले रास्ते भी बंद कर दिए जाते है । गाँव अन्य समाज से कटकर रह जाता है ।

गाँव के समग्र चढ़ाव और उतार को अपनी बूढी निगाहों से देख व समझ रहे है माते । माते इस उपन्यास का प्रमुख चरित्र व गाँव के मुखिया रहे है । गाँव के हर सही और गलत का फैसला तटस्थता एवं इमानदारीपूर्वक करते है माते ।

लड़ैई एक एसा गाँव है, जहाँ हर जाति के लोग रह रहे है । जिसमें साहूकारों की शोषण-वृत्ति का भोग बनते है- किसान और मजदूर । अस्पृश्यता और अंधविश्वास गाँव को खोंखला बना देते है । तो साथ-साथ सांप्रदायिक हत्याकांड़ की वजह से 'मुसलमानी पथरा' गड़ जाते है । मोतीसाव, ठाकुर, निर्मल साव, हलके साव सब

मिलकर गाँव के भोले-भाले किसानों को लूट रहे है । ठाकुर से मजदूरी माँगना भी गुनाह है । मजदूरी जब नकद कलदार में माँगी जाती है, तो ठाकुर के द्वारा मजदूरों को मारा-पीटा जाता है । और उनकी झोंपडियों में घूसकर उन्हे जिन्दा जला दिया जाता है । पर ''बिल्ली के गले में घंटी बाँधे कौन ?''[१८]

मास्साव, अरविंद पांडे, माते, अट्टूसाव, गोराबाई और रामदुलारे जैसे पात्र गाँव को सहारा देते है । सरकार की लापरवाही की वजह से नसबंदी योजना में कई नौजवानों की जानें चली जाती है । मुआवजा देने की लालच देकर छल से गाँव के आदमियों की नसबंदी करवा दी जाती है । सरकारी नसबंदी के इस धिनौने और क्रूर अभियान की वजह से चारों और हाहाकार मच जाता है । एक साथ कई लाशें गाँव से निकलती है ।

गाँव एक समस्या से उबरता नही कि दूसरी बड़ी समस्या उसके सामने आ जाती है । गाँव के लोगों को खुशी इस बात की है कि- बाँध बनेगा तो उन्हें मजदूरी मिलेगी । जिससे उनकी गरीबी और बेकारी दूर होगी । मगर उनकी यह खुशी जल्द ही गमगीनता में बदल गई । बाँध पर उन्हें मजदूरी पर तो नही रखा, उपर से उस समग्र क्षेत्र को विस्थापित घोषित कर गाँव के लोगों से उनके मकान, खेत, कुएँ आदि सब-कुछ छीन लिया जाता है । अपनी जमीन से उखड़ने का दर्द वे सहन नही कर पाते । सरकार द्वारा उनकी जमीन जबरदस्ती किश्तों में अधिग्रहीत की जाती है । और लोगों को विस्थापीत कर नि:सहाय बना दिया जाता है । सरकार द्वारा विस्थापितों के

रहने का भी कोई मुकम्मल इंतजाम नहीं किया जाता। मुआवजें के इंतजार में उनकी आँखे तरसती रहती है। पर मुआवजें के नाम पर उन्हें फूटी कौड़ी तक नहीं मिलती। उपर से सरकारी अफसरों द्वारा उन्हें तिरस्कृत कर अपमानीत किया जाता है। जिससे गाँव उजड़ता चला जाता है। टूटता-बिखरता जाता है।

साल पर साल बीतते चले जाते है, मगर तब भी बाँध योजना का कार्य आगे नहीं बढ़ाया जाता। विस्थापित लोग अनंत इंतजार में लगे रहते है। फिर अचानक एक दिन खबर मिलती है कि- अब 'डूब' क्षेत्र बदल दिया गया है। अब यहाँ बाँध नही बनेगा अभयारण्य बनाया जाएगा। जिससे पशु यहाँ बेखटके रह पाए। मनुष्य को उजाडकर सरकार पशुओं को संरक्षण प्रदान करना चाहती है। अचानक एक दिन सरकार द्वारा आधे बनाए गए बाँध में दरार पड़ने की वजह से बाँध टूट जाता है। आस-पास के समग्र क्षेत्र में पानी फैल जाता है। जिससे कई लोग और पशु मर-खप जाते है। उपर से सरकारी तंत्र रेड़ियो द्वारा झूठे समाचार दिए जाते है कि- इस क्षेत्र को कुछ वर्ष पूर्व ही मुआवजा देकर खाली करवा लिया गया था। यदि एसा न किया गया होता तो कई जाने चली जाती। जबकि वास्तविकता तो कुछ और ही थी। तब माते का गुस्से होना स्वाभाविक ही है। वे चिल्लाते है कि- ''लाबरी है जा सरकार महा लाबरी! महा झूठी, सरासरी झूठी !''[१९]

इस तरह सरकारी अनैतिकता, भ्रष्टाचार एवं साव की शोषणवृत्ति का वास्तविक चित्रण लेखकने इस उपन्यास में किया है।

१.३.५ पार :-

’डूब’ का उत्तरार्ध ‘पार’ है । ‘डूब’ में, ग्रामीण संस्कृति को उभारा है, तो ‘पार’ में उसी गाँव के पास पहाड़ पर बसती आदिवासी संस्कृति अर्थात ‘जीरोन खेरा’ को उभारने की कोशिश की गई है । ‘डूब’ जहाँ पूर्ण होता है, ‘पार’ वहीं से शुरु होता है ।

‘जीरोन खेरा’ में नियम बनाया जाता है कि- जिस स्त्री के बेटे को गुनिया (सरपंच) बनाया जाए, उस स्त्री को शारीरिक सुख से वंचित रहना है । इस नियम का पहला भोग बनती है- मुईया और बाद में फुलिया । मगर आखिरकार मुइया इस नियम को तोड़कर जीरोन खेरे से भाग जाती है । फुलिया की देह भी ताप माँगती है । पर वह इन बंधनो को तोड़ नही पाती ।

राऊत खेरे में निर्मल साव का आना जाना अधिक बढ़ गया है । वह इस खेरे में आता और इस खेरे की स्त्रियों को जंगल में सौगात् लेने के बहाने बुलाता और शहर भगा जाता । फिर खेरे में आकर स्त्रियों के भाग जाने की या डाकूओं द्वारा उठा कर ले जाने की बात करता । इन भगाई गई औरतों को शहर ले जाकर वह बेच देता । निर्मल साव औरतों के साथ-साथ बच्चियों को बेचने का धंधा भी करता था । चमार भी मरे हुए पशुओं की खाल बेचता है, जबकि निर्मल साव तो जिंदा औरतो के शरीर को बेचने का व्यवसाय करता है ।

लड़ैई गाँव में स्थान-स्थान पर गहरें गड्डे खुद जाने की वजह से वहाँ के पशु

अब जीरोन खेरे में चरने के लिए आने लगे । तब जीरोन का मुखिया चिंतित होने लगा, कि अगर गाँव के पशु यहाँ आकर चारा चरने लगेंगे तो हमारे पशु क्या खाएँगे ? ऊपर से यदि कोई पशु कहीं चला गया या खो गया तो हमे तो मार-मार कर ढेर ही कर देंगे ।

जिस तरह सरकारी नसबंदी के धिनौने और क्रूर अभियान का शिकार गाँव बनता है, उसी तरह जीरोन खेरा भी इस अभियान का शिकार बनता है । कई लोग मर-खप जाते है । चारों और हाहाकार मच जाता है । ऊपर से निर्मल साव भी जीरोन खेरा पर अपना झूठा अधिकार स्थापित कर राऊतों की जमीनें हड़पने की ताक में है । निर्मल साव का कहना है कि- जीरोन खेरा की सारी जमीन उनके पुरखों की है । उनके पुरखों की जमीन पर राऊतों ने अपना कब्जा जमा लिया है । इधर खेरे का मुखिया सोचता है, कि- अगर उन्हें उनकी जमीन से खदेड दिया जाएगा तो आखिरकार वे लोग जाएँगे कहाँ ? गाँव में तो लोग उन्हें आने भी नहीं देते । दूर से राऊतों को देखा नहीं कि उसे टरकाया नहीं।

गाँव की स्थिति भी बिलकुल वैसी है । बरसों हो गए पर न तो उन्हें जमीन के नाम पर मुआवजा ही दिया गया और न तो किसी मुकम्मल जगह पर बसाया गया । बाँध परियोजना को भी बदल दिया गया । अब वहाँ अभयारण्य बनेंगे । माते को इंतजार है- अरविंद पांड़े, और रामदुलारे का । माते को विश्वास है कि- रामदुलारे आएगा तो गाँव को जरुर उबार लेगा । रामदुलारे गाँव को मदद करने आता है । मगर

गाँववाले रामदुलारे की मदद नहीं करते । कैलास महाराज गाँववालों को रामदुलारे के खिलाफ उकसाते है । और गाँववाले रामदुलारे और यशस्विनी का विरोध करते है । माते से यह स्थिति देखी नही जाती । जब दु:ख को माते सह नही पाते तब अपने प्राणों का त्याग करते समय यशस्विनी से एक वचन माँगते है कि- ''तू मुझे वचन दे ठकुरानी कि तू मुझे नई देह देकर फिर इसी गाँव में जनमने का सौभाग्य बख्शेगी । वचन दे ठकुरानी ! वचन दे बिटिया !''[२०] और यशस्विनी मन ही मन वचनबद्ध हो गई ।

१.३.६ सबसे बड़ा सिपहिया :-

आनंद 'सारिका' पत्रिका में उपसंपादक है । पिछले सप्ताह ही आनंद ने आई.जी.साहब का इंटरव्यू लिया था । सप्ताह भर बाहर रहने के बाद जब वह अपने घर पहुँचता है, तब उसे पता चलता है कि उसके घर चोरी हो गई है । घर में उनकी पत्नी के बहुत सारे जेवर भी थे । आनंद को आशंका है कि- चार सौ रुपये के साथ चोर जेवर भी उठा ले गए है । आनंद रपट लिखवाने पुलिस-स्टेशन पहुँचता है । वहाँ वह सुबह से शाम तक बैठा रहा और अपनी रपट लिखवाने के लिए निवेदन करता रहा । मगर किसी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया । सिपहिया लोग राह देख रहे थे कि- यदि आनंद चाय-पानी का बंदोबस्त कर दे या घूस के नाम पर थोडा-बहुत रुपया निकाले तो रपट लिखें । मगर आनंद ने एसी कोई प्रतिक्रिया न दिखाई । सो दिनभर उसे अपमानीत किया गया । और जलिल कर अंत में लापरवाही बताते हुए

कह दिया गया कि- तुम अपने घर जाओ । हम बाद में तहकिकात के लिए आ जाएँगे। वास्तव में तीन साल पहले भी आनंद के घर चोरी हुई थी । और पुलिस ने यही कहा था कि- तुम जाओ हम पिछे आ रहे है । मगर आज तक पुलिस नही आई । और परसो फिर से उसके घर चोरी हो गई ।

सिपाहियों से मदद के बदले जब तिरस्कार और अपमान मिलता है, तब दूसरे दिन आनंद उस आई.जी.साहब के पास पहुँचता है- जिसका हाल ही में इंटरव्यू लिया था । आई.जी.साहब ने उस इंटरव्यू में आनंद के सामने अपने पुलिस कर्मचारियों की बहुत प्रशंसा की थी । मगर आनंद को जो अनुभव हुआ उसके मुताबित आई.जी. की एक भी बात सही न निकली । आनंद पूरा घटनाक्रम आई.जी.साहब को कह सुनाता है, जो कल उसके साथ हुआ था । सुनकर आई.जी. साहब ने शर्म महसूस की । और एस.पी., डी.एस.पी., डी.ओ., सभी को बुलाकर मीठापुर पुलिस थाने में हुई इस शर्मनाक घटना का वर्णन कर उन सभी पुलिस कर्मचारियों को पदावनत करने का दिखावटी निर्णय लिया, और आनंद से क्षमा माँगने की बात कही । क्योंकि आनंद पत्रकार है ।

जैसे ही सभी सिपाहियों को पता चलता है, कि आनंद पत्रकार है, वह सभी आनंद के प्रति दिखावटी सहानुभूति दिखाने लगे । वास्तव में सभी सिपाहियों की मिली भगत थी । सभी मिलकर एसा चक्रव्यूह रचते है, जिससे आनंद का बचकर निकलना कठिन हो जाता है । आनंद ने जो रपट लिखवाई थी वह बदल दी जाती है । और

आनंद को बातों में उलझाकर उर्दू में लिखी रपट पर उसके हस्ताक्षर करवा लिए जाते है। आनंद इस बात से बिलकुल अनभिज्ञ था।

एक दिन रात को आनंद जब अपने घर लौट रहा था, तब पुलिस के आदमियों के द्वारा आनंद को मारा-पीटा जाता है। जिससे वह बेहोश होकर गिर पड़ता है। अस्पताल में डॉक्टर के द्वारा गलत रिपोर्ट बनाई जाती है कि- ''आनंद रात को शराब के नशे में नदी के पथरीले पुश्ते पर लुढककर पचास फीट नीचे खड्डे में जा गिरा था।''[२१] जबकि यह सरासर झूठ था। और आनंद की समझ में यह आ नहीं रहा था कि- यह सब हो क्या रहा है ? आखिरकार आनंद की समझ में पुलिस का षडयंत्र आ जाता है।

पुलिस आनंद के पास आकर सूचना देती है कि- उन्होने चोर को पकड लिया है। और वह चोर है, उन्हीं के मित्र रमेशबाबू की पत्नी! यह सुनकर आनंद को धक्का लगता है। दरअसल में पुलिस आनंद को अपना वास्तविक स्वरुप दिखाकर उसका मुँह बँध करवाना चाहती थी। और पत्रिका में कुछ भी न छापने के लिए मजबूर करना चाहती थी। इतना षड़यंत्र कम था कि आई.जी.साहब ने प्रेस कोन्फरन्स में आनंद को खूब बदनाम किया। और आनंद द्वारा लिए गए इन्टरव्यू को भी गलत साबित कर दिया।

पुलिस के षड़यंत्र, झूठ और गुंड़इया बर्ताव का विरोध करने की आनंद ठान लेता है। तभी रमेशबाबू कहते है कि- ''कौन प्रकाशित करेगा आपके पत्र को ? सच

को ? सच तो वही माना जाएगा जो पुलिस की डायरी मे दर्ज है ।''[२२] तभी तो लोग कहते है कि- ''लोक बड़ा न रुपैया, सबसे बड़ा सिपहिया ।''[२३]

१.३.७ शब्दबध :-

इस उपन्यास में वीरेन्द्र जैन ने प्रकाशन जगत के भ्रष्टाचार और शोषण का पर्दाफाश किया है । किस तरह प्रकाशक लेखकों पर गीध-सी द्रष्टि गड़ाएँ उनको नोंचने पर तैयार रहते हैं ! इसका वास्तविक चित्रण कर पाने में वे समर्थ रहे है । आनंदवर्धन को हितकारी प्रकाशन में नौकरी मिल जाती है । आनंद का महीना-भर का खर्च है- १२० रुपए । मगर हितकारी कार्यालय ने ९६ रुपए माहवार खर्च देना तय किया । आनंद ने संचालकजी के सामने जाकर विरोध प्रकट किया तो संचालकजी ने आनंद की बात पर गौर कर उसकी तनख्वाह बढ़ा दी । पर साथ-साथ काम करने के घण्टे भी बढ़ गए ।

हितकारी कार्यालय से जो भी पत्र लिखे जाते थे, उन्हें संचालकजी के नाम से ही भेजे जाने का नियम था । मुलाजिमों को तनख्वाह कम और अन्य सुविधाएँ अधिक इसलिए दी जाती थी, कि- मुलाजिम दूसरों से वेतन बताते शर्माएँ । और इस कार्यालय से भागकर कहीं जा न पाए ।

हितकारी कार्यालय से तंग आकर आनंद सूर्योदय प्रकाशन में नौकरी करने के लिए तैयार हो जाता है । सूर्योदय प्रकाशन बहुत छोटा प्रकाशन है । दीपकजी सूर्योदय का सारा कार्यभार संभालते थे । सूर्योदय से एकमात्र दीपकजी के पिताजी अरिहंतजी

की पुस्तके ही विविध नामों से प्रकाशित होती रहती थी। अन्य किसी भी लेखक की कोई पुस्तक यहाँ से प्रकाशित नही होती थी। सूर्योदय की बिक्री बढाने के लिए आनंद ने अरिहंतजी को फिर से लिखने के लिए प्रेरित किया। और वे इस शर्त पर लिखने के लिए तैयार हुए कि- उनकी पुस्तक की कम से कम दस हजार प्रतियाँ अवश्य निकलनी चाहिए। आनंद ने प्रस्ताव स्विकार कर लिया। और अरिहंतजी लिखने भी लगे। मगर दीपकजी ने दो हजार से अधिक प्रतियाँ छापने से इनकार कर दिया। क्योंकि एसे बहुत से लेखक है जिनकी पुस्तक छापने के एवज में उनसे बहुत पैसे एँठे जा सकते है। दीपकजी केवल वे ही किताबें छापना चाहते है, जिनका खर्च स्वयं लेखक वहन कर पाए। आनंद यह सब जानकर आश्चर्य में गर्त हो जाता है। वह सोचता है कि- लेखक आखिरकार पैसे क्यों देगा ?

आनंद ने थोड़े-बहुत व्यंग्य और एक उपन्यास भी लिखा है। अपनी पांडुलिपि लेकर आनंद बलभद्रजी के यहाँ छपवाने के लिए जाता है। मगर बलभद्रजी अपनी असमर्थता बता देते है।

प्रकाशन जगत में एसे बहुत सारे प्रकाशन है- जो लेखक से बढ़-चढ़कर रुपया लेते है। और उनकी पुस्तक छापते नही। मगर पांडुलिपि खो जाने का, कागज उपलब्ध न होने का या प्रेस ने दगा दिया- एसे बहाने निकाले जाते है। और लेखक के पैसो से अपने मित्रो और परिचितों की किताबें छापी जाती है। तो कभी-कभी लेखक से उसकी पांडुलिपि लेकर रॉयल्टी पहले ही दे दी जाती है। और बाद में

छापने के लिए कहकर लंबे समय तक उनकी पुस्तक छापी नही जाती । और जब पुस्तक छपकर बाहर आती है, तो वह लेखक के नाम से नही, किसी दूसरे के नाम से प्रकाशित होती है । अपनी पुस्तक छप जाने के बावजूद लेखक को पता भी नही चलता और किसी दूसरे के नाम पर वही पुस्तक लाखों रुपए कमा जाती है । हुई न लेखक के साथ धोखाघडी! और बेचारा लेखक प्रकाशनों के चक्कर काटता रहता है ।

आनंद अब कांताजी के प्रतिबद्ध प्रकाशन में कार्य करने लगता है । कांताजी अपने मुलाजिमों को वेतन के अलावा ५० रुपए अपनी तरफ से इसलिए देती है- कि मुलाजिम कभी उनका विरोध न कर पाए । मगर आनंद ये ५० रुपए लेना मुनासिब नही समझता । आनंद के कार्य से कांताजी बहुत प्रभावित होती है । प्रतिबद्ध की ओर से आनंद विश्वविद्यालय पहुँचता है । विश्वविद्यालय में पुस्तकों की आढ़तियों की तरह बोलियाँ लगाई जा रही थी । विद्यार्थी इस साल क्या पढ़ेंगे ? ये विद्वान नहीं प्रकाशक तय कर रहे थे।- ''विद्यार्थीयों को क्या पढ़ना होगा यह प्रकाशक का प्रतिनिधि अपने बक्से में बन्द नोटो के बण्डल गिनकर तय कर रहा था ।''[२४] तब आनंद आश्चर्य में गर्त होकर सोचता है कि- क्या यही है प्रकाशन व्यवसाय ? यही प्रकाशकों की नैतिकता और प्रामाणिकता है ?

आनंद द्वारा लिखा गया उपन्यास प्रतिबद्ध से प्रकाशित न होकर किसी दूसरे प्रकाशन से प्रकाशित हुआ । इस अपराध के एवज में आनंद को प्रतिबद्ध की नौकरी गँवानी पड़ी । इस तरह आनंद को प्रकाशन जगत से अनुभव बहुलता प्राप्त हुई ।

१.३.८ तलाश :-

समग्र उपन्यास आत्मकथात्मक एवं पत्रात्मक शैली में लिखा गया है । कथा कहनेवाला पात्र है बीरन ।

गाँववाली तमाम जमीन जायदाद जब दादा ने पूजाबब्बा के नाम कर दी, तब मल्लू ने बीरन से विरोध प्रकट करते हुए पूछा कि- आखिरकार दादा ने एसा निर्णय क्यों लिया? उत्तर के रुप में बीरन मल्लू को सारा घटनाक्रम पत्र के माध्यम से बता रहा है ।

शाम के वक्त जब बड़े कक्का संध्या आरती के लिए गए थे, तभी बारह सिपाहियों का दल गाँव में आ पहुँचा । बीरन से पानी लाने के लिए कहा गया । और बड़े कक्का के आने की राह देखने लगे । बड़े कक्का ने आते ही सिपाहियों से आने का कारण पूछा, और उनके रहने तथा खाने-पीने की व्यवस्था के लिए बहुत सारे आदमियों को दौडाया गया । तभी अचानक एक सिपाही ने बीरन को घर के अंदर फेंक कर बड़े कक्का को घेर लिया । और सभी ने अपना-अपना मोरचा संभाल लिया । तब बड़े कक्का को यह जानते हुए देर न लगी कि ये सिपाही नही डाकू है । डाकूओं ने बड़े कक्का और हलके कक्का को रस्सी से उपर लटका दिया । और मार मारने लगे । बड़े कक्का से निरंतर पूछते रहे कि- घर में जो भी गहना या रुपया हो सब निकालो । नही तो मार दिए जाओगे । मगर बड़े कक्का ने बताया कि- अभी पिछले साल ही डाका पड़ा था । घर में कुछ भी नही है । तभी बड़ी काकी ने डर के मारे गहने और रुपयों की

जानकारी डाकूओं को दे दी। बुआ विरोध करने सामने आई तो डाकूओं ने उन्हें मार गिराया ।

जब मलखानसिंह अर्थात् पूजा बब्बा को पता चलता है, कि- बड़े कक्का के घर में डाकू घूस आए हैं, तो उसने अपनी धोती में बहुत सारे पत्थर भरे और घर के उपर चारों ओर से निरंतर पत्थर फेंकता रहा और गोल-गोल घूमता रहा । डाकू जान गए कि- गाँव में एका हो गया है । वह जल्दी ही सामान बटोरकर पहाड पर चले गए । वास्तव में सारा गाँव तो मंदिर में घुसा हुआ बैठा था ।

दूसरे दिन बड़े कक्का सारे गाँव को पूरा किस्सा रो-रो कर बता रहे थे । और कह रहे थे कि- वो तो आप लोगों ने पत्थर बरसाने शुरु किए इसलिए वे डरकर भाग गए । वरना आज इस घर से दो लाश की जगह तीन लाशें पड़ी हुई होती । बाद में कक्का को मालूम होता है, कि पत्थर गाँववालों ने नहीं मलखान ने बरसाये थे । और इसी वजह से उसके पैर सूजकर हाथी के पाँव जैसे हो गए थे । दादा मलखान को लेकर अस्पताल जाते है, और सोचते है, कि- मलखान का करजा माफ कर दिया जाए। मगर बड़े कक्का ने मना कर दिया ।

गाँव में बारी-बारी से डाका पड़ता रहता है । साहूकार सोचते है, कि एसा कौन-सा रास्ता अपनाया जाए कि- जिससे डाकूओं से बचा जा सके । साहूकारों ने शंकरसिंह नामक डाकू से संरक्षण माँगकर सौदा निपटाया । शंकरसिंह डाकू संरक्षण देने के लिए तैयार हो गया । अब गाँव को किसी से डर नही था । मगर चार साल

बाद शंकरसिंह ने पुलिस के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। गाँववालों के सामने फिर से सवाल खड़ा हो गया कि- अब क्या ?

गाँव में कभी-कभी सिपाही दल भी डाकू के वेश में लोगों को लूटने का पार्ट टाईम काम करते थे। एक दिन घर का दरवाजा किसी ने खटखटाया। जब देखा तो छः डाकू थे। मलखान, बड़े कक्का, हलकें कक्का और दादा ने जंग छेड़ दी। उस जंग में बड़े कक्का मारे गए। साथ में डाकू वेश-धारी एक सिपाही भी मारा गया। उस सिपाही की खोज में उसके बारे में जानने के लिए मलखानसिंह को पुलिस ने पकड लिया। और मार-मार कर एसा हाल कर दिया कि- जब मलखानसिंह चार दिन बाद वापस लौटा तो अपने बेटो के कंधो पर लदकर। मगर उसने अपना मुँह न खोला। सारे कामों से अब उसे छुट्टी मिल गई। पर सिद्ध बब्बा के थान पर ज्योत जलाने का काम अब भी उसने नही छोडा।

गाँव के साहूकारों में डाकूओं का डर बढ़ रहा था। उन्हें एक ऐसे युवक की आवश्यकता थी, जो अपने ही गाँव का हो और वहीं डाकू हो जाए। क्योंकि फिर वह डाकू अगर डाका डालेगा भी तो अपने गाँव को छोड़कर। जिससे खूद-ब-खूद गाँव सुरक्षित हो जाएगा। लाखन किसी अनजाने अत्याचार से तंग आकर डाकू बन जाता है। साहूकार जो सोचते थे वही हुआ। बाद में पूजा बब्बा का छोटा भाई और रुपा तथा अनेका भी डाकू बन गाँव से भाग जाते है। एक दिन पुलिस एक डाकू की लाश शिनाख्त के लिए गाँव में लाते है। जो लाश पूजा बब्बा के छोटे भाई की थी। यही

हालत लाखन, रुपा और अनेका की न हो इसलिए पूजा बब्बा अपने एक पैर के दम पर उन तीनों की तलाश में निकल पड़ते है। ता कि अपने छोटे भाई की तरह उनका शब भी शनाख्त के लिए न लाया जाए!

१.३.९ पंचनामा :-

दादा का पाँचवा बेटा उर्फ पंचम सुखी व समृद्ध नायक वंश का वंशज है। मगर परिस्थितियों के चलते घर में अभावों के उत्पन्न होते ही पंचम उर्फ अकलंक को मामा द्वारा पहुँचा दिया जाता है- अनाथाश्रम ! शुरुआत में सहमा-सहमा सा रहता अकलंक अब अनाथालय के बच्चों से धुलने-मिलने लगता है । धीरे-धीरे अनाथाश्रम की कठिनाईयों का सामना करना भी अकलंक को आ जाता है । तेल लगाना, खाना खाना, कपड़े धोना, नहाना- इन सब कामों के वक्त रचे जा रहे षडयंत्र का भोग बार-बार अकलंक को ही बनना पड़ता है। मगर बाद में अपनी कार्यदक्षता, धर्मपरायणता एवं सत्यनिष्ठता के चलते सबके ध्यान व आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। अनाथाश्रम के सभी बच्चों का प्रतिनिधि भी बन जाता है। जिससे वह प्रधानमंत्री और अध्यक्ष को फूटी आँखों भी नही सुहाता। अंतत: उसे एक दिन अनाथाश्रम से निकाल दिया जाता है ।

छात्रावास में मात्र उसके रहने और खाने की व्यवस्था थी। पढ़ाई का खर्च उसे स्वयं निकालना है, तब उसके लिए अब नौकरी करना अति आवश्यक बन जाता है।

अकलंक प्रज्ञाचक्षु डॉ. इन्द्रचंद्र शास्त्री के यहाँ उनके कहे गए को लिखने की तथा पढ़कर सुनाने की नौकरी करने लगा । वहाँ शास्त्रीजी की नौकरी कम और श्रीमती शास्त्री का कार्य अधिक करना पड़ता था । सो उसे आखिरी सलाम देकर चलते बने । बाद में आढ़तियों की बोली लगाने का, एक कारखाने में हेल्पर का कार्य करने, घड़ियाल की दुकान में कार्य करने का अनुभव प्राप्त किया । इसके अलावा अलग-अलग प्रकाशनों में भी छोटी-मोटी नौकरी कर अनुभव बहुलता प्राप्त की ।

संस्कृत महाविद्यालय मे प्रवेश पाते ही अकलंक आनंदवर्द्धत के रुप में हमारे सामने आता है । विद्यालय में प्रवेश पाते ही अब अकलंक दोपहर तक पढ़ता है । और दोपहर से रात के दस बजे तक कारखाने में नौकरी करता है । यहाँ अचानक उससे मिलने विनय और प्रदीप आते है । जिससे बहुत पहले आनंद उर्फ अकलंक जयपुर अनाथाश्रम में मिला था । और विनय के साथ तो आनंद की पक्की दोस्ती हो गई थी। प्रदीप को एक स्थान पर इन्टरव्यू देना था, इसलिए दोनो आए थे ।

कुछ साल बाद आनंद उस अनाथाश्रम में जाता है, जहाँ विनय और उसकी पत्नी मृणालिनी दोनों मिलकर अनाथ बच्चों की सेवा करते है । उन्हें प्रेम व प्रेरणा देते है । वहाँ सारी व्यवस्था और अपनत्व देखकर आनंद बहुत खुश होता है । और बालिका आश्रम की ही एक लड़की शालिनी को अपना जीवनसाथी बना लेता है । बाद में आनंद और शालिनी भी अपने आपको उस अनाथाश्रम को अपनी सेवा देने के लिए कृतनिश्चयी हो जाते है, जहाँ से आनंद उर्फ अकलंक उर्फ पंचम आया था ।

१.४ वीरेन्द्र जैन को प्राप्त पुरस्कार और सम्मान :-

वीरेन्द्र जैन की कृतियाँ अपनी अलग ही पहचान लेकर चलती है । उनके साहित्य की उत्कृष्टता को ध्यान में रखते हुए उन्हें सम्मानित कर बहुत सारी कृतियों पर पुरस्कार भी दिए गए है । जिनमें से कुछ इस प्रकार है।-

(१) वर्ष १९८७- में- प्रकाशित मध्य-प्रदेश के लेखकों के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'शब्द-बध' के लिए मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य संमेलन की ओर से- वागीश्वरी पुरस्कार । (१९८८)

(२) वर्ष १९८८- में- प्रकाशित उपन्यासों में श्रेष्ठ उपन्यास 'सबसे बड़ा सिपहिया' के लिए हिन्दी अकादमी, दिल्ली की ओर से साहित्यिक कृति पुरस्कार । (१९९०)

(३) वर्ष ८९-९० में- लिखी चालीस वर्ष तक की आयु के उपन्यासकारों की पांडुलिपियों में से सर्व श्री राजेन्द्र यादव, डॉ. निर्मला जैन और डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी द्वारा सर्वश्रेष्ठ घोषित 'डूब' के लिए वाणी प्रकाशन की ओर से प्रेमचन्द महेश सम्मान ।- १९९१

(४) वर्ष १९८९ में- प्रकाशित दिल्ली के लेखकों के बाल-साहित्य में श्रेष्ठ 'बात में बात में बात' के लिए हिन्दी साहित्य अकादमी, दिल्ली की ओर से- बाल साहित्य पुरस्कार ।- १९९२

(५) वर्ष १९८९, ९०, ९१- में प्रकाशित हिन्दी उपन्यासों में से सर्वश्रेष्ठ

उपन्यास 'डूब' के लिए मध्यप्रदेश साहित्य परिषद की ओर से- अखिल भारतीय वीरसिंह देव पुरस्कार- १९९३

(६) वर्ष १९९४ में- प्रकाशित कथा-साहित्य में सर्व श्री नामवर सिंह, कृष्णा सोबती, विष्णु खरे, मनोहरश्याम जोशी और विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा सर्वश्रेष्ठ घोषित उपन्यास 'पार' के लिए- श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार ।- १९९५

(७) वर्ष १९९३ में- प्रकाशित दिल्ली के लेखकों के बाल-साहित्य में श्रेष्ठ 'तीन चित्रकथाएँ' के लिए हिन्दी अकादमी, दिल्ली की ओर से- बाल साहित्य पुरस्कार ।- १९९६

(८) उपन्यास के क्षेत्र में निरन्तर, रचनात्मक और सक्रिय योगदान के लिए- अखिल भारतीय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस स्मृति सम्मान ।- १९८९

(९) मध्य-प्रदेश के लेखकों की वर्ष '९४' से '९६' के बीच प्रकाशित कृतियों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'पंचनामा' के लिए निर्मल पुरस्कार ।- १९९७

(बुरहानपुर मध्य-प्रदेश से)

संदर्भ–संकेत

१. सुरेखा-पर्व, वीरेन्द्र जैन, पृ.२८

२. सुरेखा-पर्व, वीरेन्द्र जैन, पृ.४७

३. वही, पृ.६४

४. वही, पृ.६७

५. उसके हिस्से का विश्वास, वीरेन्द्र जैन, पृ.१०९

६. वही, पृ.११३

७. वही, पृ.१२६

८. वही, पृ.१४४

९. प्रतिदान, वीरेन्द्र जैन, पृ.७७

१०. वही, पृ.७८

११. वही, पृ.८४

१२. वही, पृ.८५

१३. वही, पृ.९१

१४. वही, पृ.१०१

१५. वही, पृ.१०३

१६. वही, पृ.१०४

१७. प्रतिदान, वीरेन्द्र जैन, पृ.१०५

१८. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.७१

१९. वही, पृ.२८८

२०. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ.१६६

२१.	सबसे बड़ा सिपहिया, वीरेन्द्र जैन, पृ.११४

२२.	वही, पृ.१२४

२३.	वही, पृ.१२५

२४.	शब्दबध, वीरेन्द्र जैन, पृ.१३६

अध्याय–२
साहित्य और युग–चेतना

२.१ साहित्य: अर्थ एवं स्वरुप

२.२ युग-चेतना: अर्थ एवं स्वरुप

२.३ साहित्य और युग-चेतना

२.४ साहित्य की जमीन और युग-चेतना के विभिन्न कोण

२.४.१ सामाजिक चेतना

२.४.२ राजनीतिक चेतना

२.४.३ सांस्कृतिक चेतना

२.४.४ आर्थिक चेतना

➢ निष्कर्ष

अध्याय-२
साहित्य और युग-चेतना

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य और समाज एक सिक्के के दो पहलू के समान है। जिसे एक-दूसरे से कभी अलग नही किया जा सकता। दोनों अन्योन्याश्रित है। जिस तरह साहित्य की विशेषताएँ, विभिन्न प्रवृतियाँ एवं समस्याएँ समाज रुपी जमीन से उत्पन्न होती है, उसी तरह समाज की विचारधारा, हलचल, रुढ़ियाँ, एवं परंपरा से प्रेरणा ग्रहण कर साहित्यकार उत्कृष्ट साहित्य-सर्जन करता है। प्रत्येक देश, प्रदेश या समाज का प्रतिबिंब उसके साहित्य में अवश्य पड़ता है। इसलिए अगर किसी भी राष्ट्र की संस्कृति से अवगत होना है, तो उस राष्ट्र का एक पुस्तक ही काफी है। जैसे कि भारतीय संस्कृति की झलक- के लिए तुलसीकृत 'रामचरितमानस' पर्याप्त है। या फिर प्रेमचंद का- गोदान।

निरंतर परिवर्तन प्रकृति का नियम है। साहित्य भी युगानुरुप बदलता रहता है। साहित्यकार चाहे कितना ही यत्न क्यों न करे, वह अपने युग से पृथक कभी नही रह सकता। प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में युगीन विचारधारा व समस्याएँ साहित्यकार के साहित्य में अवश्य स्थान पा जाती है। प्रत्येक युग की अपनी नजर होती है, और उसी के अनुसार उस युग के साहित्य का निर्माण होता है। इसलिए तो हर एक युग का साहित्य दूसरे युग से अलगाव को लेकर चलता है। जैसे कि- आदिकालीन साहित्यिक

प्रवृतियाँ- भक्तिकालीन साहित्यिक प्रवृतियों से भिन्न है । उसी तरह रीतिकालीन विशेषताएँ- आधुनिककाल की साहित्यिक विशेषताओं से बिलकुल अलग है । यह बात समय की माँग पर आधारित रहती है । जैसा समय वैसा साहित्य, और जैसा साहित्य वैसा समाज । रीतिकालीन कवियों का विषय था- शृंगार और कला । जबकि आधुनिक युग में आकर विषय बदल गया । वर्तमान युग में साहित्यकार का लक्ष्य है- मनुष्य का मन । क्योंकि साहित्यकारों का मानना है कि- समस्या कहीं बाहर नही, बल्कि मनुष्य के मन में है । और इसलिए आधुनिक साहित्यकार मानव-मन में घुसकर उसकी कुंठा, घुटन, पीड़ा, निम्न मानसिकता और तनाव को खोजकर उसके समाधान के प्रयासों में प्रयत्नशील रहता है । इस तरह साहित्य के साथ युग जुड़कर साहित्य में परिवर्तन लाता है । ''क्षणे-क्षणे नवता'' का गुण साहित्य अपनाता है ।

२.१ साहित्य: अर्थ एवं स्वरुप :-

साहित्य को अंग्रेजी में 'लिट्रेचर'- कहा जाता है । साहित्य के व्यापकतम रुप को वाड़मय की संज्ञा दी गई है । संस्कृत में साहित्य के विषय में कहा गया है कि- ''सहितस्य भाव: साहित्यम् ।'' अर्थात्- जो हित के साथ होने का भाव व्यक्त करे वही साहित्य है। साहित्य में जनता का 'हित'- कल्याण छुपा हुआ रहता है । साहित्य ही मनुष्य को सही दिशा-निर्देश देकर प्रगती के पथ पर अग्रसर करने का कार्य करता है । किसी भी देश का विनाश करना या विकास करना, यह बात उस देश के साहित्य पर निर्भर करती है । साहित्य में वह शक्ति है- जो मात्र शब्द के माध्यम से बड़े-बड़े

युद्ध और क्रांति की चिनगारी भड़का सकता है । रुसी और फ्रांसीसी क्रांति की नींव में साहित्य ही तो है । किसी भी राष्ट्र में चेतना जागृत कर जन-जन के हृदय में विद्रोह और क्रांति का स्वर भड़काने में और स्वतंत्रता दिलाने में उस राष्ट्र के साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण रहता है । जैसे कि- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकरजी, प्रेमचंद और प्रसाद का साहित्य । प्रेमचंद की कृति- 'सोजवेतन' जो तीव्र देशभक्ति की भावना से युक्त थी, उसे खुद उन्हीं के हाथों जलाने पर मजबूर किया गया था । क्योंकि वह कृति देश को प्रेरणा प्रदान कर रही थी । उसमें देश का हित छुपा हुआ था । जैनेन्द्रकुमार कहते है कि- ''मानव जाति की इस उन्नत निधि में जितना कुछ अनुभूति भंड़ार लिपिबद्ध है वही 'साहित्य' है, और भी अक्षरबद्ध रुप में जो अनुभूति संचय विश्व को प्राप्त होता रहेगा 'साहित्य' है ।''[१]

साहित्यकार जब अपने समाज की दुर्दशा देखता है, तो उसका हृदय जलने लगता है । भावयुक्त होकर रोने छटपटाने लगता है । और उसके हृदय से स्वत: शब्द निकलकर कागज पर बिखरने लगते है । संवेदना साहित्य का मूल है । और यही संवेदना कठोर से कठोर हृदय को चिरने की क्षमता रखती है । जिस तरह कोमल बीज कठोर घरा को चीरकर बाहर आ जाता है, उसी तरह साहित्यकार की कोमल संवेदना समाज की समस्याओं को देखकर उसे समाधान की दिशा में ले जाती है । इसलिए डॉ. त्रिगुणायनने- ''जीवन और जगत के गत्यात्मक सौंदर्य की भावमयी झाँकी''[२] को साहित्य कहा है । साहित्य में भाव के साथ विचार जब जूड़ जाते है, तो वह साहित्य

उत्कृष्टता की श्रेणी में पहुँच जाता है । ''साहित्य संसार के प्रति मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है । और हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण संरक्षणीय हो जाता है ।''[३]

साहित्य में साहित्यकार का भोगा हुआ यथार्थ होता है । वह अपने आसपास जो देखता है, अनुभव करता है, उस सचाई को अपनी समग्रता में सूक्ष्म द्रष्टि से साहित्य में अंकित करने का प्रयास करता है । ''साहित्य में उन सारी बातों का जीवन्त विवरण होता है, जिसे मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है ।''[४] इसी प्रकार आ. रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है कि- ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है । हृदय की मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते है ।''[५] साहित्यकार की लेखनी हमेशा मुक्त-स्वतंत्र रहती है । नियम और बंधनों में जब वह बँधती है, तो अपनी रस-दशा वह खो बैठती है । तभी तो साहित्यकार अपने साहित्य रुपी फलक में स्वतंत्र बनकर विहरता रहता है । और एक मनुष्य की संवेदना से दूसरे मनुष्य की संवेदना मिलाने का कार्य करता है । ''साहित्य शब्द से साहित्य में मिलने का भाव पाया जाता है । वह केवल भाव-भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रंथ-ग्रंथ का ही मिलन नही, अपितु मानव के साथ मानव का अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ अत्यंत निकट का अन्तरंग मिलन भी है, जो साहित्य को छोड़कर अन्यत्र कहीं संभव नही है ।''[६]

मानव-जीवन का संपूर्ण चिट्ठा हमें साहित्य में मिल जाता है । वही साहित्य उत्कृष्ट है, जिसे पूर्ण करने पर मनुष्य कुछ सोचने पर मजबूर हो जाए और उसे सीख प्राप्त हो। साहित्य में मात्र कल्पना की उड़ान नही होनी चाहिए, परंतु वास्तविकता की कठोर भूमि होनी चाहिए । साहित्य में जितनी अधिक वास्तविकता होगी वह उतना ही मनुष्य के करीब पहुँच पाएगा । तभी तो प्रेमचन्द्रजी कहते है कि- ''साहित्य उस रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की हो, जिसकी भाषा प्रौढ़ और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो । साहित्य की बहुत सी परिभाषाएँ की गयी है, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोतम परिभाषा जीवन की आलोचना है । चाहे वह निबन्ध के रुप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के रुप में । उसे हमारे जीवन की व्याख्या करनी चाहिए ।''[७] साहित्य मनुष्य की आत्मा को दुर्गुणों को बदलने की क्षमता रखता है । और यह बदलाव सहज और समूल होता है । जिसमें क्षणिकता नहीं, बल्कि शाश्वतता होती है । जिस प्रकार देवताओं ने समुद्र-मंथन कर अमृत हासिल किया, उसी प्रकार साहित्य मनुष्य के हृदय और विचारों का मंथन करता है। और सार रुप में सदभावनाएँ प्राप्त होती है । आ. महावीर-प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि- ''साहित्य में जो शक्ति छिपी है, वह तोप, तलवार और बम के गोले में भी नही पायी जा सकती ।''[८] क्योंकि तोप और तलवार से मनुष्य का गला काटा जा सकता है, मगर उसका हृदय बदला नही जा सकता । यह क्षमता तो मात्र साहित्य ही रखता है । ''साहित्य शब्दों द्वारा चित्रों द्वारा मनुष्य को प्रभावित करता है । उसका प्रभाव

दर्शन और विज्ञान से ज्यादा व्यापक इसलिए होता है कि उसका सम्बन्ध इन्द्रिय बोध से है। उसका माध्यम भी रुपमय है, कल्पना के सहारे वह तरह-तरह के रुप पाठक या श्रोता के मन में जगाता है। उसकी विषय-वस्तु भी रुपमय है। वह चिंतन का निष्कर्ष ही नही देता, जीवन के चित्र भी देता है। दर्शन और विज्ञान से भिन्न उसकी निजी कलात्मक विशेषता जीवन के चित्र देने में है।''[१] इस तरह साहित्य में ''सत्यं शिवं सुन्दरम्'' की भावना निहीत रहती है। क्योंकि सत्य ही 'शिव' अर्थात् कल्याणकारी है। और जो सत्य कल्याणकारी है, वही सुन्दर है। हमारे शाश्वत मूल्य भी कल्याणकारी है, अत: वह सुन्दर है। और साहित्य में सौंदर्य जीवन के मूल्यों के निर्वाह से आता है। मूल्यों की अवहेलना असुन्दर तत्व है। जिसकी स्थापना कभी साहित्य में नही की जा सकती।

२.२ युग–चेतना: अर्थ एवं स्वरुप :–

'युग-चेतना' शब्द दो शब्दों के योग से बना है- 'युग' और 'चेतना'। अत: 'युग-चेतना' का शब्दार्थ जानने से पहले यह अति आवश्यक होगा कि- हम पहले 'युग' और 'चेतना' का अर्थ जान ले।

'युग' शब्द अंग्रेजी के 'एरा' का हिन्दी रुपांतर है। 'युग' एक कालवाची शब्द है। 'युग' का अर्थ है- काल या समय अथवा निश्चित समयखंड़। युग की अपनी कोई निश्चित अवधी नही है। जिस युग में जो विचारधारा, विशेष प्रवृति, अथवा परिस्थितियाँ अस्तित्व में रहती है, उसी के अनुसार उस युग का नामकरण भी किया जाता है।

कभी-कभी प्रसिद्ध साहित्यकार के नाम पर आधारित युग का नाम दिया जाता है। तो कभी-कभी किसी विशेष आंदोलन या क्रांति के अनुसार उस युग का नामकरण किया जाता है। इसी तरह जिस कालखंड में जो साहित्यकार, विशेष प्रवृतियाँ, परिस्थितियाँ अथवा आंदोलन महत्व पा जाता है, उसी के अनुसार युग भी बदल जाता है। और नामकरण भी धारण कर लेता है। जैसे कि- विशेष साहित्यकारों के नाम पर आधारित युग का नाम-भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रेमचंद युग, प्रसाद युग इत्यादि। साहित्य की विभिन्न विचारधारा और वाद के अनुसार- छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, इत्यादि। आंदोलन के आधार पर गांधीयुग...। इस तरह एक युग की समाप्ति पर और दूसरे युग की शुरुआत पर कोई निश्चित सिमारेखा नही होती। संस्कृत में धार्मिक मान्यताओं के अनुसार हम सब चार युगों से परिचित है- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। कभी-कभी बारह वर्ष के समय को भी युग की संज्ञा दी जाती है। इस तरह युग का कोई निश्चित समय या अवधी नही होती। मगर फिर भी हम अपनी सुविधानुसार यहाँ से यहाँ तक यह युग रहा है, एसा कहते है। प्रत्येक युग की अपनी अलग पहचान और चेतना होती है। युग का प्रभाव साहित्य में पूर्ण रुपेण दिखाई देता है।

'युग' का एक अर्थ- ''गाडी का जुआ''[१०] भी होता है। जिस प्रकार गाडी का जुआ निरंतर बदलता रहता है, उसी प्रकार युग भी सतत बदलता रहता है। 'युग' शब्द अपनी व्यापकता में संपूर्ण मानव-संस्कृति का काल सापेक्ष अर्थ होता है।

इसलिए जब हम हिन्दी साहित्य के इतिहास के संदर्भ में किसी विशिष्ट युग (अथवा काल) की चर्चा करते है तो उससे उस युग की सामान्य प्रवृत्तियाँ, परिस्थितियाँ एवं उपलब्धियों का अर्थ बोध होता है ।''[११] प्रत्येक युग का अपना महत्व होता है । परंपरा के रुप में एक कालखंड़ दूसरे कालखंड़ को अच्छे या बुरे रीति-रिवाज, मान्यताएँ, विचारधाराएँ और मूल्य प्रदान करता है । जिस तरह नदी का प्रवाह निरन्तर चलता रहता है, एक बूँद के साथ दूसरी बूँद जूड़ी हुई रहती है, उसी प्रकार समय का प्रवाह गतिशील होता है । एक कालखंड़ के साथ दूसरा कालखंड़ जूड़कर मिल जाता है । साथ-साथ ''प्रत्येक युग दूसरे युग को कुछ देकर जाता है, अन्यथा इतनी बड़ी सृष्टि अस्तित्वहीन होकर कभी भी शून्य में समा जाती ।''[१२] सृष्टि के संपूर्ण समय को भी तीन कालो में विभाजित किया जाता है ।- भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल।

'चेतना' शब्द का संबंध मनोविज्ञान से है । अंग्रेजी में- 'चेतना' का समानार्थी शब्द 'कांशसनेस' है । हिन्दी में 'चेतना' शब्द को व्यापक अर्थ में लिया गया है । बृहद हिन्दी कोश में 'चेतना' का अर्थ- 'चैतन्य, रमन, होश, याद, बुद्धि, चेत, जीवन-शक्ति, जीवन, बुद्धि-विवेक से काम लेना, सोचना, विचारना आदि दिया गया है ।'[१३] संस्कृत के मनीपियों ने- 'चेतना' शब्द को 'प्रज्ञा' कहकर संबोधित किया है । 'चेतना' मनुष्य के मस्तिष्क की आत्मिक जाग्रतावस्था, किसी वस्तु के विषय में ज्ञान, जानकारी अथवा विचारों को द्योतित करता है ।

मनुष्य का एक स्वाभाविक गुण है- संवेदनशीलता । मनुष्य के आस-पास के वातावरण में अनेक घटनाएँ और परिस्थितियाँ घटित होती रहती है । उन घटनाओं के द्रश्य और अनुभव का मनुष्य के कोमल हृदय पर तुरंत ही प्रभाव पड़ता है । जिसके परिणाम स्वरुप भावविभोर होने के कारण उसके मन में अनेक विचारों का उद्वेलन होता है, यही चेतना है । चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है । अर्थात् वस्तुओं, विषयों तथा व्यवहारों का ज्ञान ।

'चेतना' मनुष्य की जागरुकता और सजगता है । किसी भी मनुष्य की चेतना उसकी व्यक्तिगत संपति न होकर एक सामाजिक उपक्रम का ही परिणाम होती है । मनुष्य के अचेतन मन में अनेक सुषुप्त भावनाएँ, विचार और सपने पड़े हुए होते है । जो उचित अवसर पर खाद-पानी मिलने पर बीज में से अंकुरित होने लगते है । मनुष्य के ये विचार और भावनाएँ अज्ञानता-वश अचेतन मन में रहते है । लेकिन जब उसके उपर से अज्ञानता का आवरण हटता है, और ज्ञान रुपी रोशनी का प्रकाश फैलता है, तब तुरंत ही मनुष्य सचेत हो जाता है, और अपने अधिकारों के प्रति वह जागृत हो जाता है । और उसके सारे भाव अचेतन मन से चेतन मन तक पहुँचते है। और उसीके अनुसार वह अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । जिसे हम चेतना कह सकते है। मनोविज्ञान के अनुसार- ''चेतना मानव में उपस्थित वह तत्व है जिसके कारण ही हम देखते, सुनते, समझते और अनेक विषयों पर चिन्तन करते है । इसी कारण हमें सुख-दु:ख की अनुभूति भी होती है और हम इसी कारण अनेक प्रकार के निश्चय करते है

तथा अनेक पदार्थों की प्राप्ति के लिए चेष्टा करते है ।''[१४]

'युग-चेतना' शब्द संकीर्णता को छोड़कर व्यापकता लेकर चलता है । अत: 'युग-चेतना' की कोई निश्चित या बँधी-बंधाई वैज्ञानिक परिभाषा देना मुश्किल है । मगर फिर भी 'युग-चेतना' को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है- ''काल या युग विशेष में किसी व्यक्ति विशेष अथवा जन सामान्य के चित्त की अनुभूति ही युग-चेतना है ।''[१५] भाषा-शब्दकोश में- ''युग- विशेष की प्रबुद्धता का स्तर याने युग-चेतना''[१६] माना है । वास्तव में युग-चेतना एक एसी द्रष्टि है, जो अपने युग का निरीक्षण कर वास्तविकता का पर्दाफाश करती है । 'युग-चेतना' अपने युग का आईना है- जो- ''युग के शुभाशुभ, सत्यासत्य तथा तद्‌युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को पहचानने की शक्ति है । जो शीघ्र ही बता देती है कि वांछनिय एवं उचित क्या है और क्या नहीं । आम आदमी परिस्थिति से केवल प्रभावित होता है वह उस प्रभाव को ग्रहण नहीं कर पाता । जबकि कलाकार युगीन परिस्थितियों से अभिभूत होकर अपनी कलात्मक चेतना के माध्यम से युग-विशेष को अपने साहित्य में मूर्त रुप प्रदान करता है । इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक स्वरुप जिस युग में जैसा रहा हो उसे ठीक उसी रुप में ग्रहण कर अपनी कृति में जीवन्त अभिव्यक्ति देना ही युग-चेतना कहलाती है।''[१७]

एक व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व से बिलकुल अलग होता है ।

क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की सोचने की, समझने की क्षमताएँ अलग-अलग होती है । साथ-साथ विचारधाराएँ भी अलग होती है । इस तरह अपने मंतव्य के अनुसार अपने युग को देखकर युग की समस्या एवं परिस्थिति के प्रति समाधान का नजरीया भी साहजिक भिन्न होता है । क्योंकि- ''वास्तविकता यह है कि युग-चेतना का कोई सुनिर्दिष्ट प्रतिमान नहीं होता, क्योंकि एक ही युग विशेष में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की चेतना अलग-अलग हो सकती है और होती है ।''[१८] साथ ही प्रत्येक साहित्यकार की अपनी निजी शैली एवं अनुभव बहुलता होती है । ''एक ही युग, देश और वातावरण में रहते हुए भी हर एक साहित्यकार के कृतित्व की अपनी अलग विशेषताएँ होती है और निजीपन होता है । उसकी प्रेरणा-भूमि, अनुभव और चिंतन-प्रणाली बिलकुल किसी दूसरे की तरह नहीं होती ।''[१९] कबीर अपने समय के युग-चेता कवि रहे है, तो भारतेन्दु अपने युग के जागृत नाट्यकार रहे है। साथ-साथ प्रेमचंद और प्रसाद तो एक ही युग के कवि रहे है । मगर फिर भी प्रेमचंद और प्रसाद के साहित्य में बहुत हद तक अलगाव मिलता है । हाँलाकि दोनों भारतीय संस्कृति के चित्तेरे रहे है, मगर फिर भी अभिव्यक्ति शैली एवं समस्या उठाने का ढंग अलग है । क्योंकि युग-चेतना का स्वरुप हंमेशा एक-सा नही रहता । ''काल या समय के परिवर्तन के साथ-साथ युग-चेतना बदलती रहती है । समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, अध्यात्म, नैतिकता तथा विज्ञान आदि का स्वरुप जिस युग में जैसा रहता है, उसे ठीक उसी स्वरुप में ग्रहण कर अभिव्यक्त करना कवि, कथाकार एवं नाट्यकार के साहित्य की युग-चेतना कही जाती है ।''[२०]

'युग-चेतना' से प्रेरित होकर ही स्वामि विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, गांधीजी एवं राजा राममोहन राय जैसे महापुरुषों ने समाज को एक नई द्रष्टि एवं दिशा दी । जिससे प्रेरित समाज प्रेरणाग्रहण कर अपने हक और अधिकार के प्रति जाग्रत बना । गलत परंपरा एवं रुढ़ियों की खाई से बाहर आने के लिए छटपटाने लगा । युग-चेतना प्रकाश की भाँति है । जो मनुष्य को अंधकार से उजाले की तरफ ले जाती है। ''युग-चेतना एसे आलोकमय नेत्र के समान है, जिससे विश्व के संपूर्ण रहस्यो का उद्‌घाटन होता है । युग-चेतना का महत्व समाज की त्रुटियों के निराकरण मे सन्निहित है । समाज में रहनेवाला मानव सद्‌गुणों एवं दुर्गुणों का पूंजीभूत स्वरुप है । सदगुण देवत्व का और दुर्गुण पाशविकता का प्रतीक है। इसलिए मानव न देवता है, और न पशु, वह मानव है । युग-चेतना उसकी मानवीय भावनाओं को उजागर करती है । और उसे युग को पहचानने-परखने की क्षमता प्रदान करती है । उसके अनुरुप ही वह उसे क्रियाशील होने की प्रेरणा प्रदान करती है । इस क्रियाशीलता के परिणाम के प्रति मानव जागरुक रहता है । यही जागरुकता उसकी चेतना है । जागरुकता विहिन मानव समाज का तथा स्वयं का किसी प्रकार का हित नहीं कर सकता । इसलिए समय-समय पर अनेक युग-चेतना संपन्न सन्त, महात्मा, सुधारक आदि का उदभव होता रहता है । ये सभी युग को देखते-परखते है, और दोष-परिपूर्ण विगलित तथा प्रपीडक मान्यताओं को समाज से बहिष्कृत करने के उदेश्य से क्रान्ति का नाद फूँकते है ।''[२१] इस प्रकार अंग्रेजीमें 'युग-चेतना' को 'Spirit of the Age' कहते है । अर्थात्- किसी

समय विशेष में अभिव्यंजित चेतना को युग-चेतना कहते है । निष्कर्षत: युग-चेतना अपने युग को देखने का विशेष नजरीया है, जो सही और गलत का फैसला कर अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ परिवर्तन की आँधी फूँक देता है ।

२.३ साहित्य और युग-चेतना :-

साहित्य ही वह माध्यम है- जिसके द्वारा साहित्यकार अपने विचारों को जनता तक पहुँचाता है । और जनता का दिशानिर्देश करता है । प्रत्येक युग में कोई-न कोई परिस्थिति, मूल्य, रुढ़ियाँ, परंपरा तथा अच्छे या बुरे विचार महत्व पा जाते है । रचनाकार समाज में फैले इन अच्छे या बुरे विचार अथवा समस्या को ढूँढ निकालने का कार्य करता है । और उस समस्या का समाधान अपने साहित्य में प्रस्तुत कर जनता को जागृत करने का और अपने युग को प्रभावित करने का स्तुत्य कार्य करता है । जैसे कि- भक्तिकाल में कबीर ने समाज में बाह्याडंबर, दंभ, पाखंड़, धर्म के नाम पर दंगे और फसाद, छुआछूत का भेदभाव, सामाजिक असमानता इन सभी को देख-परखकर इसके विरोध में उग्र क्रांति और विद्रोह के स्वर शुरु किए । और अपने समाज को किचड से बाहर निकालने का सराहनीय व स्तुत्य कार्य किया । जो युग-चेतना ही है ।

उसी तरह आधुनिक काल में अंग्रेजो के शासन की वजह से भारत परतंत्र था। उसे स्वतंत्रता दिलाने के लिए जन-जन के हृदय में देशभक्ति की भावना जागृत करने का श्रेय आधुनिक काल के साहित्यकार को ही दिया जाएगा । उन्होने समय की माँग

को पहचाना । और जाना कि- यह वक्त शृंगार-भावना को व्यक्त करने का नही, बल्कि वीररस जगाने का है । भारतेन्दु, दिनकर, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त और प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों ने अपने युग को बखूबी प्रभावित किया । और युग से प्रभावित हुए साहित्यकार ।

स्वतंत्रता के बाद का युग अपनी एक अलग ही तस्वीर और तासीर लेकर आया। जिसमें आम जनता जो निरक्षर है, उन्हें जमीदारों और साहूकारों के शोषण और अत्याचार का भोग बनना पड़ता है । कर्ज के तले डूबा किसान अगर मरता भी है, तो परंपरा के रुप में अपने बेटे को कर्ज देकर जाता है । किसान जीवन-भर हाड़-तोड़ महेनत करे, मगर फिर भी पैसो के नाम पर ठक-ठन गोपाल । समाज में गरीबी, बेकारी, शोषण, अन्याय, दहेजप्रथा, अनमेल विवाह जैसी सांप्रत समस्याओ ने जोर पकडा । एसे समय में युग-सापेक्ष रहकर साहित्यकारों की रचना का एक मात्र लक्ष्य रहता था- जनता को अपने शोषण के प्रति जागृत बनाना । 'गोदान' जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है ।

जबकि साठवें दसक के बाद के साहित्य में मानव-मन की कुंठा, घुटन, छटपटाहट, तनाव भरी जिंदगी, असंतोष, यौन-वृति, इन सभी को चित्रित कर मनुष्य के आंतरजगत तक पहुँचने का प्रयास किया गया । इस तरह साहित्य प्रत्येक काल में युग सापेक्ष ही रहता है ।

२.४ साहित्य की जमीन और युग-चेतना के विभिन्न कोण :-

साहित्य और युग-चेतना परस्पर जुडे हुए है । दोनो के बीच का अंत:संबंध बहुत गहरा है । युग-चेतना साहित्य की कोख से जन्म धारण करती है । साहित्य का क्षेत्र व्यापक व वैविध्यपूर्ण है । साहित्य की जमीन से विविध विद्याओं का जन्म होता है। जैसे कि- उपन्यास, नाटक, निबन्ध, कहानी, आलोचना, रेखाचित्र, संस्मरण इत्यादि। और साहित्य की किसी न किसी विधा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में अपने युग की गतिविधियाँ, प्रवृतियाँ, एवं समस्याएँ जुड़कर साहित्य को धड़कन प्रदान करती है ।

साहित्य की इन प्रत्येक विधाओं में से युग-चेतना को अपने समग्र एवं व्यापक रुप में प्रस्तुत करने की क्षमता एक मात्र उपन्यास ही रखता है । क्योंकि उपन्यास का कद विशाल होता है । उसमें मानवजीवन का सूक्ष्मता से आलेखन कर समग्र समस्याओं का समाधान पाया जा सकता है । अत: इस द्रष्टि से युग-चेतना को अभिव्यक्त करने का सशक्त साहित्यिक रुप उपन्यास ही है । डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय के शब्दों में- ''प्राचीनकाल में जो स्थान महाकाव्यों का था, वही स्थान आज उपन्यास का है । उसका महत्व अन्य साहित्यिक रुपों की अपेक्षा कहीं अधिक है, क्योंकि वह जीवन को अधिक निकटता से देखता और उसका विश्लेषण करता है ।... साहित्य के अन्य रुपों की अपेक्षा उपन्यास में जीवन की यथार्थता, सत्यता, आवश्यकताएँ, संभावनाएँ और स्वतंत्र व्यक्तित्व और मूल्यों का निरुपण अधिक होता है ।''[२२] डॉ. गणेशन ने भी कहा है- ''जैसे महाकाव्य जीवन के सभी अंगों का स्पर्श कर सकता है, उसी प्रकार या

उससे भी बढकर उपन्यास जीवन का सर्वांगीण निरीक्षण कर सकता है ।''[२३]

साहित्य की जमीन से पैदा होनेवाली 'युग-चेतना' के विभिन्न कोण विभिन्न दिशाओं में अग्रसर होते है । युग-चेतना सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक चेतना के आयामों में विभाजित होती है, और अपने समय की प्रत्येक क्षेत्र की गतिविधियाँ युग-चेतना कहलाती है ।

२.४.१ सामाजिक चेतना :-

साहित्य, समाज और सामाजिक चेतना तीनों का एक-दूसरे के साथ बहुत गहरा संबंध है । साहित्यकार जिस समाज में साँस लेता है, उस युग तथा समाज की समस्याओं, विविध परिस्थितियाँ, घटनाएँ और आंदोलनों का उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । और साहित्यकार अपने हृदय की अनुभूतियों को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । तथा आवश्यकतानुसार समय-समय पर हमारे समाज को जाग्रत करने तथा उसे नयी दिशा दिखाकर उत्साहित और प्रेरित करने का काम भी साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से करता है । इस तरह साहित्य समाज को टटोलता है, जागृत करता है और अपने अस्तित्व के प्रति सचेत बनाता है । संसार में अभी तक हुए संपूर्ण परिवर्तनो का तथा विप्लवों के मूल में कोई-न-कोई विचारधारा कार्यरत रहती आई है । इस विचारधारा का चित्रण साहित्य द्वारा होता है । साहित्य हमारे ज्ञान को विस्तृत कर, हमारे वर्तमान जीवन की विषमता का चित्रण कर हमें वर्तमान के प्रति असंतुष्ट बनाता है । उसके द्वारा जब हम दूसरों से अपनी अवस्था की

तुलना कर अपने को हीन महसूस करते है, तब हमारे हृदय में असंतोष की अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में भी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से युवको को देश-प्रेम, राष्ट्रीयता और आत्मगौरव का निरुपण कर देश पर मर मिटने के लिए उत्साहित और प्रेरित किया था। उस समय का सारा साहित्य राष्ट्रीयता से भरपूर था। उन्होने क्रांति का स्पष्ट आह्वान कर दिया था। जो सामाजिक चेतना है। ''संसार में सदैव एसे ही साहित्य की रचना अधिक होती आई है, जो मानव-जीवन में सुख और शांति की भावना भरता आया है। कबीर और तुलसी का साहित्य इसका प्रमाण है। 'मानस' ने कितने हताश और भीरु हृदयों को सात्वना देकर कार्यक्षेत्र में अवतरित होने के लिए सन्नध्य किया था। समर्थ गुरु रामदास और महाराष्ट्रीय सन्तो के उपदेश तथा भूषण आदि कवियों की उत्साह प्रदायिनी रचनाओं ने महाराष्ट्र के उत्थान में कितनी सहायता प्रदान की थी। प्रेमचंद के साहित्य ने हमारी सामाजिक और राजनीतिक चेतना को कितना प्रभावित किया था।''[२४]

२.४.२ राजनीतिक चेतना :-

साहित्य से राजनीति कभी जुड़ती है, तो कभी राजनीति, साहित्य से अलगाव को लेकर भी चलती है। साहित्य के माध्यम से राजनीति के प्रत्येक पहलू को प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में प्रस्तुत किया जाता है। ''स्वार्थवश सत्तान्ध होकर शासक-वर्ग कभी-कभी मानवीय मूल्यों का अपहरण करता है। मानव की अस्मिता जब शासक

वर्ग की पदलोलुपता और निरंकुशता का शिकार बनती है, साहित्य उसका विरोध करता है । शासक की गलत नीतियों की आलोचना करते हुए स्वस्थ राष्ट्र की परिकल्पना करना साहित्यकार का मूल धर्म है ।''[२५] जब भी राजनीति षड़्यंत्र कर मानव समाज पर हावी हो जाती है, तब राजनीति के चंगुल से जनता को बहार निकालने का कार्य करता है साहित्य । वह जनता को राजनीति की गतिविधियों से सचेत बनाता है । मगर जब राजनीति को एसा लगता है कि साहित्य उसका पर्दाफाश कर उसे पदावनत कर देगा, तब- ''अपने अस्तित्व को खतरे से बचाये रखने के लिए शासक-वर्ग साहित्यकार की लेखनी को नजरबंद करता है, ''सोजेवतन जलायी जाती है और धनपतराय 'प्रेमचंद' बनने को मजबूर होते है ।''[२६] उसी तरह अंग्रेजो के शासन-काल में भारतेन्दु युग में भारतेन्दु ने अंग्रेजो की कूट-नीति जनता के सामने खोलकर रख दी थी । गुप्तजी और प्रसादजी जैसे साहित्यकारों ने विद्रोह और क्रांति का स्वर जगाकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में आग में घी डालने का कार्य किया ।

मगर कभी-कभी राजनीति साहित्य को राह भी देती है । ''राजनीति साहित्य को संरक्षण देकर उसकी उपलब्धियों को सुरक्षित रखती है और उसके विकास का मार्ग प्रशस्त करती है ।''[२७] राजनीति हंमेशा बुरी नही होती । क्योंकि हिन्दी में गांधीवाद और मार्क्सवाद से हमारा साहित्य संपन्न है । समय-समय पर राजनीति में बदलाव भी आता है । स्वतंत्रता से पहले हमने स्वस्थ भारतीय राजनीति की जो कल्पना की थी, स्वतंत्रता के बाद वह स्वप्न टूटते हुए नजर आने लगे । भारतीय

राजनीति भी अन्य राजनीति की भाँति स्वार्थ, षड़यंत्र, भ्रष्टाचार, अनैतिकता और सत्तालोलुपता को लेकर आई। जिसने हमारे सामाजिक और आर्थिक ढाँचे को बदल कर रख दिया। नयी-नयी परियोजनाएँ आई और चली भी गई। मगर ग्रामीण जनता विकास के नाम पर वैसी की वैसी ! परिणाम स्वरुप ''स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में प्रजातांत्रिक व्यवस्था की स्थापना हो जाने के बावजूद देश का प्राय: हर प्रबुद्ध और संवेदनशील व्यक्ति बड़ी बेचैनी के साथ यह अनुभव करता है कि देश का प्रजातंत्र अवसरवादिता, भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थो से खुलकर खोलने का अखाडा बनकर रह गया है। विरोधाभास यह है कि देश का कोई भी नेता इस स्थिति के लिए अपने आपको उत्तरदायी नहीं मानता।''[२८]

२.४.३ सांस्कृतिक चेतना :-

'संस्कृति' को किसी निश्चित परिभाषा में बाँधना कठिन है। कुछ लोग 'सभ्यता' के साथ 'संस्कृति' को जोड देते है। वास्तविक रुप में 'सभ्यता' और 'संस्कृति' अलग है। 'सभ्यता' एवं 'संस्कृति' के अलगाव को स्पष्ट करते हुए दिनकरजी लिखते है कि- ''अंग्रेजी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह है जो हममें व्याप्त है। मोटर, महल, सड़क, हवाई जहाज, पोशाक और अच्छा भोजन ये तथा इनके समान सारी अन्य स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नही, सभ्यता के समान है। मगर पोशाक पहनने और भोजन करने में जो कला है वह संस्कृति की चीज है। इसी प्रकार मोटर बनाने और उसका उपयोग करने महलों के

निर्माण में रुचि का परिचय देने और सड़कों तथा हवाई जहाजों की रचना में जो ज्ञान लगता है उसे अर्जित करने में संस्कृति अपने को व्यक्त करती है । हर सुसभ्य आदमी सुसंस्कृत ही होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अच्छी पोशाक पहननेवाला आदमी भी तबियत से नंगा हो सकता है और तबियत से नंगा होना संस्कृति के खिलाफ है ।''[२९] संस्कृति के अंतर्गत परंपरागत आचार-विचार, श्रद्धा-अंधश्रद्धा, पहनावा, खान-पान, कला, नृत्य, एवं भौगोलिक वातावरण अपना अस्तित्व जमाए रहते है । संस्कृति निरंतर युगानुकूल परिवर्तित होती रहती है । संस्कृति का प्रभाव युगीन साहित्य में पड़े बिना नही रहता । ''मानव की रक्षा और उत्कर्ष के लिए जो वैचारिक और भावात्मक प्रयत्न होते रहे है उनका सामुहिक रुप संस्कृति है । इसके अंतर्गत धर्म, दर्शन, साहित्य, कलाएँ सभी समाहित हो जाते है । इन भावात्मक और वैचारिक प्रयत्नो का प्रतिफलन बाहरी जगत में होता रहता है, जिनके फलस्वरुप विशेष प्रकार से रीति-रिवाज, वेश-भूषा आदि बनते है और पर्वो, त्योहारों, उत्सवों आदि की योजना होती रहती है । इस प्रकार संस्कृति के भीतरी और बाहरी पक्ष में रीति-रिवाज, वेशभूषा, पर्व-त्योहार आदि आते है ।''[३०]

संस्कृति मनुष्य में व्याप्त उदात्त गुण व विचारधारा है । जो मनुष्य का परिष्कार करती है । वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- ''... संस्कृति का अर्थ संस्कार संपन्न जीवन ही ठहरता है ।''[३१] ए.आर.देसाई- ''संस्कृति को सामाजिक अर्थ-व्यवस्था की सुगंध''[३२] मानते है । आ.नरेन्द्र देव इसे- ''चित्तभूमि की खेती''[३३] मानते है । संस्कृति

का व्यापकतम निरुपण साहित्य में होता है । साहित्य ही वह चीज है, जो संस्कृति को अति सूक्ष्म और उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत करता है । साहित्य की हर एक विधाओं में से उपन्यास एक एसी विधा है, जो संस्कृति के समग्र पहलुओं का स्पर्श कर उसकी चेतना समाज के सामने रखता है । संस्कृति मनुष्य के भीतरी तत्वों को बाहर निकाल ने का प्रयास करती है । अत: संस्कृति के बिना साहित्य की रचना संभव नहीं है ।

२.४.४ आर्थिक चेतना :-

अंग्रेजो के शासनकाल के दौरान देश आर्थिक द्रष्टि से बहुत ही पिछड गया । समाज के हर क्षेत्र में अर्थ की भूमिका महत्वपूर्ण होती है । बिना अर्थ के राष्ट्र का विकास कभी नही होता । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के उत्थान के लिए सबसे पहली शर्त थी- अर्थ । अत: सरकार ने आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए विविध विकास योजनाएँ चलाई । बेरोजगारों को व्यवसाय दिलाने के प्रयास किए गए, और गरीब जनता को विकास योजना का लाभ दिया गया । मगर कुछ स्वार्थी नेताओं की वजह से सारी विकास योजनाएँ धरी की धरी रह गई । सरकारी कर्मचारियों की भ्रष्ट और अनैतिक नीति के तहत गरीब जनता के हक और अधिकारों को कुचला गया । गरीब जनता की सहायता के लिए मिले पैसो को नेताओ ने हड़प लिया । अत: गरीब वर्ग हमेशा गरीब ही बना रहा । और भ्रष्टाचार करनेवाले लोग आर्थिक द्रष्टि से उपर उठने लगे । समाज की आर्थिक स्थिति सुधरने के बजाय और भी बिगड़ने लगी । चारों ओर

शोषण और अप्रमाणिकता का साम्राज्य छा गया । अत: साहित्यकार को आवश्यकता पड़ी कि वह जनता में आर्थिक जागृति फैलाकर उन्हें अपनी स्थिति के प्रति सचेत बनाए ।

➢ निष्कर्ष :-

साहित्य और युग-चेतना की उपर्युक्त चर्चा के अनुसंधान में कहा जा सकता है कि- साहित्य के साथ युग-चेतना का संबंध गहरा और अटूट है । प्रत्येक युग की हलचल उस युग के साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में देखी जा सकती है । युग-चेतना को अपने व्यापकतम रुप में उभारने के लिए एक मात्र सक्षम विधा उपन्यास है। साहित्य की जमीन पर ही युग-चेतना के विभिन्न कोण-सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना और आर्थिक चेतना प्रस्तुत हो पाते है । अत: युग-चेतना ही साहित्य की साँसे है...।

संदर्भ-संकेत

१. साहित्य का श्रेय और प्रेय- जैनेन्द्रकुमार- पृ.२०

२. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत- (प्र.भाग)- डॉ. त्रिगुणायन- पृ.६

३. साहित्य और समीक्षा- बाबु गुलाबराय, पृ.१३

४. साहित्य सहचर- आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी- पृ.३

५. चिन्तामणी भाग-१- आ. रामचन्द्र शुक्ल- पृ.११३

६. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत- डॉ. सुरेश अग्रवाल, पृ.२७

७. प्रेमचन्द कुछ विचार- प्रेमचंदजी, पृ.७

८. उपन्यास का समाजशास्त्र- डॉ. बी.डी.गुप्ता, पृ.१८

९. साहित्य मूल्य और मूल्यांकन- डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.१२

१०. बृहद हिन्दी कोश- सं. कालिकाप्रसाद, पृ.१३०

११. विविध बोध नये हस्ताक्षर- डॉ. हुकुमचन्द्र राजपाल, पृ.१०

१२. युग और साहित्य- शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ.२०

१३. बृहद हिन्दी कोश- संपा.- कालिकाप्रसाद, पृ.४३९

१४. हिन्दी विश्वकोश- खंड-४, डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी, पृ.२८२

१५. दिनकर के काव्यों में युग-चेतना- डॉ. पुष्पा ठक्कर, पृ.३

१६. भाषा शब्द कोश- संपा.- डॉ. रमाशंकर शुक्ल ‘रसाल’, पृ.१२९६

१७. नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में युग-चेतना- डॉ. अजय पटेल, पृ.४४

१८. हिन्दी उपन्यास: युग चेतना और पाठकीय संवेदना- डॉ. मुकुन्द त्रिवेदी, पृ.१

१९. मोहन राकेश का साहित्य: समग्र मूल्यांकन, डॉ. सुरेशचंद्र चुलकीमठ, पृ.११

२०. भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास में युग-चेतना- डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, पृ.७

२१. प्रसाद साहित्य में युग-चेतना- लीलावंती देवी गुप्ता, पृ.२६

२२. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ, डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय, पृ.११

२३. हिन्दी उपन्यास का अध्ययन- डॉ. गणेशन, पृ.३०

२४. साहित्यिक निबंध- राजनाथ शर्मा, पृ.३७४

२५. नागार्जुन का काव्य और युग: अंत:संबंधों का अनुशीलन, जगन्नाथ पंडित, पृ.२३

२६. वही, पृ.२३

२७. वही, पृ.२३

२८. नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में युग-चेतना, डॉ. अजय पटेल, पृ.४८

२९. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह 'दिनकर', पृ.६५१

३०. समकालीन साहित्य चिंतन, रामदरश मिश्र के लेख- 'लोकसंस्कृति और साहित्य' से- पृ.३७

३१. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना- जगदीशचन्द्र, पृ.१३

३२. भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र- ए.आर.देसाई, पृ.२०२

३३. साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति, आ. नरेन्द्र देव, पृ.१३३

अध्याय-३

वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और सामाजिक चेतना

३.१ शोषित नारी

३.२ स्त्री उत्पीड़न और बलात्कार

३.३ गलत परंपरा व रुढ़ियों का शिकार: नारी

३.४ शोषण और अत्याचार की आग में डूबा कृषक-समाज

३.५ विस्थापन की त्रासदी

३.६ प्रेम और यौनवृति

३.७ विवाहप्रथा एवं दहेजप्रथा

३.८ सामाजिक चेतना: प्रतीक पात्र

३.९ छल-कपट और षड़यंत्र

३.१० समाज में असुरक्षा

३.११ अनाथ बच्चों की दुर्दशा

३.१२ अनाथाश्रम में भ्रष्टाचार

➢ निष्कर्ष

अध्याय–३
वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और सामाजिक चेतना

समाज में निरंतर परिवर्तन का चक्र चलता ही रहता है । विकास के चरण में सड़ी-गली परंपराओं का त्याग कर नई विचारधारा अपनाने का सार्थक प्रयास किया जाता है । स्वतंत्रता के बाद भारत में हर-एक क्षेत्र में विकास के प्रयास किए गए । समाज को नई शक्ल-सूरत देने के प्रयत्न शुरु हुए । मगर राजनैतिक भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता की वजह से समाज में चारों ओर अत्याचार, शोषण, दंभ-पाखंड़, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अन्याय जैसी विसंगतियाँ पैदा हुई । समाज और अधिक रुढियों में बँधता चला गया । दहेजप्रथा एवं स्त्री-शोषण कम होने के बजाय गति पकडता चला गया । सरकारी भ्रष्ट तंत्र में नई-नई परियोजनाएँ अस्तित्व में आई । मगर जिन लोगों के लिए ये योजनाएँ अस्तित्व में आई उन्हें इनका लाभ नहीं दिया गया । सहज है स्वप्नभंग की इस स्थिति को संवेदनशील साहित्यकार कैसे सह पाता ! अत: साहित्यकारोने भ्रष्ट समाज और राजनीति की कलई खोलने का कार्य कर समाज में जागृति पैदा करने की कोशिश की । सचेत एवं प्रतिभासंपन्न साहित्यकार वीरेन्द्र जैन ने अपने समय में हो रहे धार्मिक आड़ंबर, सामाजिक कुप्रथाएँ, राजनीतिक चाल बाजियाँ एवं आर्थिक अभावों को करीब से देखा-भोगा और उनका यथार्थ चित्रण कर वास्तविकता से पाठकों का परिचय करवाया है । उन्होने अपने कथ्य एवं पात्रों के माध्यम से विद्रूपताओं का पर्दा-फाश कर समाज की कुरुपता एवं सुरुपता के दर्शन करवाए है ।

३.१ शोषित नारी :-

संस्कृत में एक उक्ति है- ''यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:'' अर्थांत- जहाँ स्त्रियों की पूजा की जाती है, वहाँ देवता वास करते है । मगर बाद में दिन-ब-दिन स्त्रियों की दसा दयनीय बनती चली गई । उसे 'पतिता', 'भोग्या' जैसे उपनाम देकर मात्र उपभोग की चीज ही माना गया । उसके अपने न कोई स्वतंत्र विचार है, न कोई आकांक्षा । उसे मात्र पराधीन बनकर ही जीना पड़ रहा है । आज भी पढ़े-लिखे पुरुष-प्रधान समाज में भी स्त्रियों का शारीरिक एवं मानसिक शोषण किया जाता है । निर्मल साव औरत-बिक्री का व्यवसाय करता है । वह डांग में आकर आदिवासी स्त्रियों के साथ प्रेम का स्वाँग भरता है । ''चीजें देने के बहाने राउतनों को छूता । इस्तेमाल करने का ढंग बताने के बहाने उनके अंगो को सहलाता । भरमाता । हँसी-ठिठोली करता ।''[१] उन्हें दूर जंगल में मिलने का वादा करता और शहर ले जाकर बेच देता । और फिर डांग में आकर उनके खो जाने पर स्वयं अफसोस व्यक्त करता। ऐसी औरते एक आदमी से दूसरे आदमी के पास तब तक फिरती रहती, जब तक कि उनका मन नही भरता । ''इस इलाके में ऐसे ढेरों जमींदार, रईस, ताल्लुकेदार, असरदार अफ्सर और अन्य बड़े कारोबारी लोग हैं, जो औरतें खरीदते है ।''[२] ऐसी औरतों के प्रतिज्ञा-पत्र तैयार करवाए जाते है । ''मैं पूर्ण बालिग हूँ । अपना भला-बुरा सोचने में समर्थ/ मैने फलाँ व्यक्ति से विवाह किया था/ पर वह मेरी परवाह नहीं करता / मुझे मारता-पीटता हैं / मेरी सौतन ला बिठाई है घर में/ चरित्रहीन है/

नामर्द है/ खाने को नही देता/ धंधा करवाना चाहता है/ इसलिए मैं इसे छोड़ रही हूँ।''[३] इस तरह औरतों का उपयोग दिल बहलाने के लिए किया जाता है। तो कभी-कभी अफसरों को खुश करने के लिए औरतें उपहार के रुप में दी जाती है। ''औरतें ही नहीं बच्चियाँ भी खरीदी जाती है।... उन बच्चियों को कुछ खास गाँवों में रखा जाता है। वहाँ मार-पीट कर उन्हें पतुरिया के लक्षण सिखाये जाते है। नचनिया बनाया जाता है। फिर बाजार में बिठाया जाता है।''[४] निर्मल साव का एक ही काम है ''कीस्म-किस्म के जिस्मों के कारोबारियों की, जिस्मों के दाम और बिक्री की संभावनाओं की राई-रत्ती जानकारी''[५] जुटाते रहना। औरतों को मात्र हाड़-मास की वस्तु ही माना जाता है। एसी सताई गई औरतों के बयान भी पुलिसवाले दर्ज नहीं करते। उपर से तहकीकात के नाम पर उनसे बेबुनियाद सवाल किए जाते है। और उनके अंगों को सहलाया जाता है। डी.ओ. ''कभी युवती के उरोजों को मसलकर कभी गाल पर कभी कमर पर हाथ रगड़कर, कभी गर्दन में हाथ फँसाकर तो कभी उसके गाल से, होठों से होठ सटाकर पूछता रहा, ऐसे भी किया था उसने ?''[६] सुरक्षित स्थान पर भी स्त्रियों के जिस्म पर गीध-सी कामुक द्रष्टि गड़ाई जाती है। युवती इस छूअन से अंदर तक सिहर उठती है, मगर कुछ कह नही पाती। डी.ओ.ने ''हर कोण, हर पहलू से उसके शरीर का स्पर्श पा लिया मगर उनका मन अभी पूरी तरह भरा नही था।''[७] उनकी समझ में नही आ रहा था कि अब वे क्या करे? युवती को छोड़ दे, या जब तक मन तृप्त न हो तब तक उसके शरीर का स्पर्श इसी तरह

पाते रहे। लाचार-बेबस औरतों का फायदा उठाकर उनके सुगठित शरीर और उभारों को उपर से नीचे तक देखकर उन्हें नापा-तौला जाता है।

जब तक औरत ही औरत की दुश्मन है, तक तक समाज में औरतों की स्थिति नही सुधरेगी। आवश्यकता है स्त्री स्वयं को एवं दूसरी स्त्रियों को मान की दृष्टि से देखे। बुढ़िया डी.ओ. एवं अन्य पुलिसवालों को खुश करने के लिए हररोज एक नई युवती को छल से उनके सामने पेश करती है। और उनसे बदले में ढेरों पैसे हासिल करती है। ''औरतों से पेशा ये कराती है... जहाँ कही खूबसूरत, मजबूर औरत दिखी, उसे बहलाकर, फूसलाकर, डराकर, धमकाकर उससे धंधा करवाने लगती है।''[८] कभी-कभी स्त्री की सुंदरता ही उनकी दुश्मन बन जाती है। बुढ़िया जिस युवती को लेकर पुलिस-थाने में रपट लिखवाने आई थी, उसे देखकर डी.ओ. कहता है कि ''कैसा-कैसा गहराया माल लावारिस पड़ा है यहाँ।... जी चाहता है कि साली को अभी से बिस्तर में ले के पड़ जाऊँ...।''[९] छल से बुढ़िया खुद युवती के घर शराबी को भेजती है। और फिर झूठी हमदर्द बनकर उनके साथ पुलिसथाने में रपट लिखवाने आती है। और दाम लगाती है।

'प्रतिदान' की प्रभा अपने पति से मिले प्रेम के बदले में प्रतिदान कर अपने आप को परिवार के लिए समर्पित कर देती है। परिवार के सुख में ही उसका सुख है। अपने छोटे देवरों की परवरिश के लिए गर्भ-निरोधक सामग्री लेकर ''चार-पाँच वर्ष के लिए प्रभा ने स्वयं को समेट लिया। अपनी तमाम इच्छाएँ, कामनाएँ मन में सँजोकर

रख ली आगामी अतीत के लिए ।''[१०] जिनके लिए प्रभा ने इतना बड़ा समर्पण किया उसी देवर मनीष ने गर्भवती प्रभा के पेट में लातें मारी जिससे गर्भ में ही बच्चा मर गया और प्रभा बच्चे के लिए तडपने लगी । डॉ. ने साफ बता दिया की अब प्रभा कभी माँ नही बन सकती । प्रभा रोते हुए नरेन से कहती है कि ''नरेश क्या में माँ नहीं बन सकती ? बताओ नरेन, मैं माँ बनूँगी न ?''[११] सब-कुछ समर्पित करने पर भी स्त्री को बदले में मिलती है मात्र पीडा और न खत्म होनेवाला दर्द ! उसके लिए न घर में सुरक्षा है, न घर के बाहर की दुनिया में । कबीर कविता को 'ताजमहल' होटेल में छोड़कर बाहर जाता है । यह एक ऐसी होटेल है जहाँ ''आए दिन मुमताजें उड़ाई और दफनाई जाती है ।''[१२] भाग्यवश वहाँ शास्त्रीजी और कबीर जल्दी से पहुँच गए, जिससे ''एक अनहोनी से दो-चार होते-होते रह गए ।''[१३] डरी-सहमी हुई सी कविता कबीर को लिपटकर रोने लगती है । इस तरह औरतों को चारों ओर से शोषण के सिकंजे कसने के लिए हंमेशा तैयार ही रहते है । इस चक्रव्यूह से पूर्णत: निकल पाना उसके लिए कठिन है ।

३.२ स्त्री उत्पीड़न और बलात्कार :-

पुरुष की पाशविकता का शिकार बनी स्त्री को समाज तिरस्कृत करता है । उसके प्रति सहानुभूति जताने के बजाय उलटे उनके प्रति दोषारोपण किया जाता है । अनाथाश्रम में पली-बढ़ी लड़कियों के कमरे में एक दिन अनाथाश्रम के अध्यक्ष का लड़का घूस आता है । सुरेखा जब इसका विरोध करती है, तभी वह बोलता है कि-

''बड़ी शरीफ बनती है। अपनी माँ का भी पता है तुझे।''[१४] एसी लड़कियों को अपनी हेसियत बार-बार याद दिलाकर सभ्य समाज के लोग उस पर हावी होने के प्रयास करते है। इतना ही नही सहानुभूति जताने के नाम पर उनसे शादी करते है। और जब जिम्मेदारी का सवाल आता है, तब उनका पति उन्हें छोड़ देता है। ऐसे ढेरों किस्से थे जिसमें सुना था कि ''उनका पति उन्हें छोड गया- कि उनके पति ने सिर्फ ऐयाशी के लिए उनसे शादी की- कि वह उनका शोषण करता है। या उनसे नाजायज काम कराता है।''[१५] अनाथाश्रम की लड़की सुरेखा को भी उसके पति ने छोड़ दिया क्योंकि ''उनका पति जिम्मेदारी से बचना चाहता था, इसलिए वह पलायन कर गया।''[१६] विद्या के साथ भी कुछ एसा ही होता है। जैसे ही विद्या गर्भवती होती है, तो विनय के तेवर बदलने लगते है। वह नही चाहता कि बच्चा जन्म ले। विद्या कहती है कि ''विनय ने बच्चे के पेट में रहते मेरे साथ कई बार राक्षसों की तरह संभोग किया, इसी से यह गूँगा, बहरा, अपंग बच्चा मेरे पेट से मुझे इतनी तकलीफ देने के बाद निकला है।''[१७] सात महीने बाद जन्मा यह बच्चा मासपिण्ड़ से अधिक कुछ नही था। जिसे देखकर लगता था कि ''किसी चीज ने जगह-जगह से नोंच खाया हो।''[१८] इसके अलावा विनय विद्या के उपर इल्जाम लगाता है, कि जिस बच्चे को तुमने जन्म दिया है वह मेरा नही है। व्यथित विद्या विनय को क्या सबूत देती ? विद्या जब दूसरी बार गर्भवती होती है, तब विनय उसी तरीके से विद्या का गर्भ गिराने का प्रयास करता है। मगर इस बार विनय ''जब भी उसके बिस्तर पर आता वह जोर से चीखने

लगती।... उसे डर था कि फिर से एसा ही मास का लोथड़ा न जनमे ।''[१९] विनय जब-तब विद्या को बेइंतहा पीट देता था । विद्या कहती है कि ''वह तब तक मुझे पीटता रहा जब तक मैं बेहोश होकर जमीन पर न गिर पड़ी । होश आया तो मैं अस्पताल में थीं और मेरे बदन पर छींट की तरह पट्टियों के गुच्छे के गुच्छे बँधे हुए थे ।''[२०] और विद्या निश्चय कर लेती है कि ''इस नरपशु के साथ में नही रहूँगी, चाहे मेरी जो भी गति क्यों न हो ।''[२१] विनय विद्या और गोपाल का नाजायज संबंध है, यह झूठी बात गाँव में फैलाकर विद्या को बदनाम करने की कोशिश करता है । प्रेम के बजाय व्यथा और पीड़ा को आँचल में समेटकर विद्या उसी अनाथाश्रम में वापस लौट जाती है, जहाँ से वह आई थी ।

कई निर्दोष स्त्रियाँ समाज के अत्याचार, शोषण एवं पाशविकता की वजह से सगर्व सिर ऊँचा रखकर जी नही पाती । कमरे की चार दिवारों के बीच उसे शारीरिक व मानसिक यातनाएँ दी जाती है । वह स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ है । उसके बारे में हितोपदेश में कहा गया है कि-

''पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने ।

पुत्रश्व स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति ॥''[२२]

स्त्री की रक्षा का भार पिता, पति या पुत्र पर होता है । अत: उसे हंमेशा पराधीनता की बेड़ियों में जकडा जाता है । सवर्ण जाति की काम-वासना का भोग निचली जाति की मासूम स्त्रियाँ बनती है । बामन महाराज के बेटे कैलास महाराज की

कामुक द्रष्टि चन्द्रभान अहीर की लड़की अक्कल पर पड़ती है । भरी दुपहरिया में वो मंदिर में भोग चढ़ाने आती है । तभी कैलास महाराज उस पर बलात्कार करते है । चन्द्रभान दु:खी होकर बामन महाराज से कहते है कि ''कैलास महाराज का बच्चा पल रहा है हमरी बिटिया के कुँवारे पेट में ।''[२३] अहीर की लड़की को समाज के सामने अपनाने में कैलास महाराज को शर्म आती है । लेखक बताना चाहते है कि समाज की दुहरीनीति और खोखलेपन मे स्त्री-वर्ग चक्की की तरह पीसता चला जाता है । अक्कल के बाद कैलास की द्रष्टि अब गोराबाई पर गडी है । कैलास ने दो आदमी लगा दिए गोराबाई के पीछे । ''मन में यह कि पहले ये जंगल में घेर धारकर भोग ले, फिर आँखो देखा साक्षी होने के बत्तल जब चाहूँगा तब पाऊँगा, गोराबाई की गोरी काया। बड़ी सती-सावितरी बनती है न ! हरदम एक ही रट कि हाथ न लगाना महाराज !''[२४] उन आदमियों के द्वारा गोराबाई को मजबूर किया जाता है और ''गोराबाई की उतारी धोती जमीन पर बिछाकर उसी पर पसर गए दोनों शोहदे । ललचाई आँखे उसकी सुडौल जाँधों के इर्द-गिर्द टिकाए । अपनी-अपनी छुरी अपने सामने धुतिया ऊपर से जमीन में गड़ाकर अधलेटे हो आए शोहदे ।''[२५] मगर मौका मिलते ही गोराबाई संभल जाती है । और उन दोनों के ऊपर वार कर अपने आप को बचाकर स्त्री-शक्ति का प्रमाण पेश करती है । स्वयं अपनी शील रक्षा करती है ।

३.३ गलत परंपरा व रुढ़ियों का शिकार: नारी :-

समाज की हर परंपरा व रीति-रिवाज मात्र स्त्री को लेकर ही है । पुरुष परंपरा

से मुक्त होता है । ''समाज की बेहतरी या अभीष्ट को पाने के सारे तरीके स्त्री को प्रतिबंधित करके ही साधे जाते है ।''[२६] जीरोन खेरा का मुखिया एक बेहतर सरपंच चाहता है । इसलिए बच्चे के जन्म के साथ ही उसे गुनिया (अगला सरपंच) घोषित कर दिया जाता है । और गुनिया माई को दैहिक सुख से आजीवन वंचित कर दिया जाता है ! पर मुइया से विरह-ताप सहन नही होता । ''कब का, किस कूसूर का बदला चुकाया मुखिया ने ! मोरी मंशा, मोई उमर, मोरी मति, मोई गति पर काहे विचार न किया मुखिया ने ।''[२७] और मुइया खेरे से भागने के लिए मजबूर हो जाती है। मुइया के बाद फुलिया को गुनिया माई बनाकर देह-सुख से वंचित किया जाता है । ''तभी से देह दु:ख रही है फुलिया की। पीर ऐसी कि सही न जाए । टीस ऐसी की कही न जाए ।''[२८] फुलिया मुखिया से जानना चाहती है कि ''मोए आगे लगी बाड़ कब हटेगी मुखिया । कब !''[२९] फुलिया के हर कार्य का निर्णय खेरें का मुखिया ही लेता है । क्योंकि अगर फुलिया अपने रास्ते से भटक गई, तो पूरा खेरा राह से भटक जाएगा। खेरे की बरसों की परंपरा टूट जाएगी । दीपू और सावितरी दोनो एक-दूसरे से प्रेम करते है, और शादी करना चाहते है । मगर सावितरी की शादी किसी और से कर दी जाती है । जब सावितरी का गौना था, तब दीपू सावितरी को उठाकर अपनी बाखर में ले जाता है। और बाहर खड़ा होकर जंग का एलान छेड देता है । तब भी सारा दोष सावितरी पर ही लगाया जाता है । और उसके भाई उसे मार डालने के लिए उतारु हो जाते है । तब सावितरी खुले आम रुढ़ियों का त्याग कर समाज की चिंता किए बगैर

दीपू के प्रति अपनी प्रेम-भावना व्यक्त करती है और कहती है कि ''अब इस देहरी से उसकी लाश ही बाहर निकाली जा सकती है ।''[३०]

प्रभा और नरेन शादी होने के बाद ''परिवार और गाँव की प्रथा के अनुसार विवाह के अगले दिन वर-वधू को गाँव के साथ लगे पहाड के ऊपर बने मंदिर में जाना होता है ।''[३१] मगर प्रभा ने तीन दिन से कुछ नही खाया था । इसलिए उसे चक्कर आ जाते है, और वह बेहोश होकर गिर पड़ती है । उसे अन्न की आवश्यकता थी, फिर भी उसे खाने के लिए कुछ भी नही दिया जाता । क्योंकि नियम के अनुसार मंदिर से लौटकर ''प्रभा पूरे परिवार को अपने हाथों से बनी खिचड़ी नही खिला देगी, उसे इस घर में अन्न का दाना भी खाने को नही मिलेगा ।''[३२] कड़ी धूप की वजह से उसकी सेहत काफी हद तक बिगड़ जाती है । और ''अधमरी सी प्रभा को बैलगाड़ी में डालकर सब लोग वापस गाँव आ गए ।''[३३] नरेन और प्रभा की शादी होने के बाद नरेन की बहनें प्रभा से नाराज रहने लगी । उससे ठीक ढंग से बात करना भी उचित नही मानती थी । क्योंकि भाई का विवाह होने पर भी ''उन्हें नेगचार नही मिले थे। न द्वाराचारा, न द्वार छिकाई, न मंड़प-गढाई, न गाँठ छुड़ाई, न न्योछावर ।''[३४] वास्तव में नरेन इन रस्मों को नही मानता था । जिसकी वजह से प्रभा को घरवाले परेशान किया करते थे, और ताने मारा करते थे । नरेन के घर जब ऑफिसर दंपती आते है, तब प्रभा को उसकी सास टोकती है ''न सिर ढ़का, न हाथों में चूडियाँ पहनी है । अरी, हाँ देखती क्या है । दो-दो चूडियाँ तो मुझे भी दीख रही है । पर यह क्या

पहरावा है ।... और देख तो सही, तेरा पूरा बदन दिख रहा है इस झब्बर झोले में ।... अब तो उतार लेती इस मक्सी को ।''[३५] प्रभा को सब के सामने शर्मिंदा कर उसे गलत साबित करना चाहती है उसकी सास । स्त्रियों के लिए एक ही पहनावा परंपरा से चल रहा है साडी । वह कामकाज में अपनी सहूलियत के लिए अगर दूसरे कपड़े पहनती भी है, तो उसे धृणा व तिरस्कार का पात्र बनना पड़ता है । शादी होने के बाद अपनी सास जो पहनावा उसके लिए तय करे, वही उसे पहनना है । उसकी खुद की पसंद-नापसंद कोई मायने नही रखती । शादी के बाद उसे परंपरा के बंधनों में इतना बाँध दिया जाता है, कि उसका वजूद ही मिट जाता है ॥

३.४ शोषण और अत्याचार की आग में डूबा कृषक-समाज :-

ग्रामीण कृषक-वर्ग अशिक्षा और अन्याय के तले ऐसा दब चुका है, कि वह अपने हक और अधिकारों के लिए लड़ना तक नहीं जानता । जिसका सबसे अधिक फायदा उठाते है साहूकार और सरकार । साहूकारों के शोषण-चक्र में आम किसान-वर्ग और मजदूर ऐसे फँस चुके है कि वह पीढ़ी-दर-पीढी अपने संतानों को भी परंपरा के रुप में कर्ज देकर जाते है । लड़ैई के किसान और मजदूरों के उपर साव के अत्याचार घटने के बजाय दिन-ब-दिन बढ़ते ही चले जा रहे है । दिन-भर खेत में हाड़तोड़ महेनत करने के बावजूद मजदूर को मजदूरी के नाम पर ''एक सेर अनाज और चारा काटने के बाद साँझ को घर जाता मजदूर जितना चारा सिर पर ढोकर ले जा सके उतना चारा ले जाने की छूट ।''[३६] और अनाज के नाम पर भी मिलता है

कूड़ा-करकट । मजदूर साव या ठाकुर के घर में घूस नहीं सकता । अत: मजदूर ''देहरी के बाहर अपना कपड़ा बिछा देता है । देहरी के दूसरी तरफ से साव या साउन, ठाकुर या ठकुराइन महाराज या महाराजिन सेर का बर्तन भर-भर के अनाज फेंकते रहते है ।... अनाज ज्यादा से ज्यादा उन्हीं के (साव के) पाले में गिरता रहता है ।''[३७] इस तरह मजदूरों के साथ बेईमानी और छल-कपट किया जाता है । और परिस्थिति यह आ पड़ती है, कि कभी-कभी तो उन्हें भूखा ही सो जाना पड़ता है । अट्टूसाव घूमा और सारे चमरौटे को समझाते है, कि तुम अपनी परवाह किए बगैर इतनी महेनत करते हो तो अपनी मजदूरी रोज की रोज और नकद कलदार में माँगो। ''उनका काम होना जरुरी है तो क्या तुम्हारा पेट भरना उससे ज्यादा जरुरी नही है ?''[३८] लेकिन इस क्षेत्र के लोग इतने भोले-भाले और सीधे-सादे है, कि उन्हें अट्टूसाव की बातों पर यकीन ही नही होता कि- ऐसा भी कभी हो सकता है कि हम 'ना' कहे और साहूकार मान जाए ! ''महेनताना देने को तैयार हो जाए ?''[३९] आखिरकार घूमा और सारे चमरौटे ने यह तय कर लिया कि- ''इस बार हम मजूरी नगद कलदार मे लेंगे ठाकुरजू !''[४०] आपका चारा और अनाज तो जाने कब मिलेगा ! कलदार होंगे हाथ में तो हम बनिया से नाज खरीद पाएँगे न ।''[४१] घूमा की यह बात सुनकर ठाकुर देवीसिंह का चेहरा गुस्से से लाल हो गया और पूरा बदन थर-थर काँपने लगा । वे तो एसी बात सपने में भी नहीं सोच सकते थे, कि ये अदने से मजदूर उनके सामने सर उठायेंगे, उनके सामने अपनी जुबान लडाएँगे । उनका अहं इस बात

की गवाही देने को मंजूर नही कि ये मजदूर अपनी स्थिति से ऊपर उठने की कोशिश करे। शोषण और अत्याचार का विरोध कर के अपने हक की गुहार लगाए। और तब इन मजदूरों को सबक सिखाने के लिए ठाकुर लठैतो को याद करने लगते है। ''आज ये मजूरी के लिए मुँह खोल रहे है, कल को वोट की कीमत माँगेंगे। परसो कोई इन्ही में से एक हमारे सामने मुकाबले में खडा होना चाहेगा।''[४२] ठाकुर इस उठती हुई चिनगारी को बुजाने के लिए हाथ में तलवार और लुहाँगी मढ़ी लाठी लेकर निकल पड़ते है। अपनी हवेली से निकलकर थोडी ही दूरी पर आया पहले चमार का टपरा। ''ठाकुर टपरा में घुसे और सकुशल निकल भी आए। इस बीच टपरा के बाहर तक आई मांसहीन हाड़ों पर तड़ातड़ बजती ठाकुर की लाठी की आवाजें और टपरा में मौजूद कृशकाया के चीखने-चिल्लाने, रोने-गिड़गिड़ाने की आवाजें, जिन्हें सुननेवाला वहाँ एकमात्र व्यक्ति था खुद ठाकुर देवीसिंह या फिर थे पेडों पर बैठे चीलपरेवा।''[४३] इस तरह देवीसिंह ने हर एक टपरा में घुसकर मजदूरों के ऊपर कहर बरसाया। घूमा के भाई बसोरे को भी ठाकुर ने मार डाला। ''ठाकुर ने यकायक तलवार खींची और बसोरे के माथे पर खचाक ! खचाक! दो-तीन वार कर डाले।''[४४] फिर भी ठाकुर को सजा देनेवाला गाँव में कोई नही है, क्योंकि ''बिल्ली के गले में घंटी बाँधे कौन ?''[४५] वीरेन्द्र जैन ने कृषक-जीवन की त्रासदी और पीड़ा से हमारा परिचय करवाया है। नि:सहाय मजदूरों पर बरस रहे तलवारों के प्रहारों से चारों और हाहाकार और करुणा-भरे क्रंदनों को सुनकर धरती भी विचलीन सी होने लगी। हाड़-चाम से बने

मजदूरों को घायल कर ठाकुर गर्वित हो रहे है । मजदूरों का दोष केवल इतना था कि उन्होने अपनी मजदूरी माँगी थी । काम के बदले में मजदूरी माँगना क्या इतना बड़ा गुनाह है कि उन्हें अपनी जान से भी हाथ धोना पड़े ? इस क्षेत्र का कृषक-समाज अत्याचार और शोषण के दलदल में इस कदर फँस गया है, कि वह जितना बाहर निकलने की कोशिश करता है, उतना ही अंदर धँसता चला जाता है । लेखक बताना चाहते है, कि इस क्षेत्र के किसान और मजदूर मनुष्य की तरह जीवन-यापन तो नहीं कर सकते, लेकिन इनकी मौत भी मनुष्य की तरह नहीं होती । लेखक स्पष्ट करते चलते है, कि जो अत्याचार का विरोध करते है, उन्हें ठाकुर जैसे दरिंदे समूल नष्ट करने पर उतारू हो जाते है । वे निहत्ये मार सहने के अलावा और कर भी क्या सकते है? आधुनिक समाज में भी किसानों की यही दशा है । पर आवश्यकता है- एक-जूट होकर विद्रोह और क्रांति करने की ।

मोती साव, ठाकुर देवीसिंह, हीरासाव, निर्मलसाव, सेठ करोड़ीमल जैसे जमींदार और साहूकार मिलकर किसानों को किस तरह लूटा जाए इसीकी योजनाएँ बनाते रहते है । मोतीसाव जैसे चालाक साहूकार तो दो कहावतों पर ही चलते है, एक तो यह कि- ''बानिया सब कुछ आसानी से छोड़ सकता है, पैसे के सिवा । वह भी सूद का पैसा ।''[४६] और दूसरी यह कि ''थैली फेंकने पर ही थैला मिलता है ।''[४७] मोती साव ने कई पुराने कर्ज में डूबे किसानों को इतनी रकम उधार दी, जिससे वे अपने पुराने साहूकार का हिसाब साफ कर सके । यह सब इसलिए किया कि पहले किसानों को

मदद कर फिर बाद में उन्हे लूट सके । ब्याज दर कम और ब्याज अवधि ज्यादा । जिससे किसान सूद देने से मुक्त ही नही हो पाते थे । साव के साथ सरकार भी मिली हुई है । विकास योजना में जमीनें मात्र किसानों की ही चली जाती है, साव की नही! आखिर ऐसा क्यों ? इतना कम था कि उपर से उनकी सिंचित भूमि को भी असिंचित साबित कर मुआवजा कम दिया जाता है । और बिना साव को साथ लाए मुआवजा भी नही दिया जाता ।

'तलाश' के ''मलखान सिंह को बड़े कक्का किसी कर्ज के बदले में लाए थे।''[४८] मलखानसिंह उर्फ पूजा बब्बा के दद्दा का कर्ज काफी बढ़ गया था । अत: बड़े कक्का के ''खेतों के पास टपरा डालकर रहता था और हाड़-तोड़ श्रम करके पैतृक ऋण से उऋज होने के सपने देखा करता था ।''[४९] मगर बाद में पूजा बब्बा ने इन परिवारवालों को इतनी मदद की कि दद्दा उसके बदले में उसका सारा कर्ज माफ कर देना चाहते थे । पर फिर भी बड़े कक्का अपने साहूकारी स्वभाव को न छोड़ पाए । और उन्होंने पूजा बब्बा को कर्ज से मुक्त नही किया सो नही ही किया । पंचनामा की शुरुआत में वीरेन्द्र जैन ने बिरादरीयों को दो भागों में विभाजित करके साहुकारी प्रथा पर करारा व्यंग्य किया है । जो साहूकारी का कार्य करते है उन्हे पुण्यात्मा और जो खेती-किसानी व पशुपालन का कार्य करते है, उन्हें पापात्मा माना जाता है । ''जहाँ पापात्माएँ अहीर, सलैया, नाई, धोबी, बढ़ई, लुहार, गड़रिया, बरेदी, मजूर, किसान जैसे अनंत नामों से पहचानी जाती है, पुण्यात्माएँ 'सेठ' और महापापात्माएँ 'डाकू'

नाम से ख्यात है।''[५०] रात-दिन एक करनेवाला जब कोई किसान कई बरसों तक कर्ज चुकाकर खाताबही यह सोचकर देखने आता है, कि अब तो उसका कर्ज पूर्ण होने को है। ''लेकिन यहाँ आकर पाता है तो अभी तो उस पर इतना कर्ज बकाया है, कि अपने जीवन में वह तो दूर, उसकी औलाद भी न चुका पाएगी।''[५१] किसानों की निरक्षरता का लाभ उठाकर साव उसके साथ छलकपट करता है। खाताबही किसानों के सामने पसार कर उलटे किसान को ही धमकाया जाता है। ताकि वह दूसरी-बार हिसाब करने या देखने न आए। ''अब कर्ज उठानेवाला अनपढ़ किसान क्या जाने कि सामने खुली बही में उसका भविष्य बंधक है।''[५२] इसी तरह 'डूब' क्षेत्र के किसानों की भी जमीनें चली गई है, विकास योजना में। अब वे क्या करे ? कहाँ जाए? अपना पेट कैसे भरे ? किसानों की इस स्थिति का सबसे बड़ा फायदा उठाया ललितपुर के साहुकारोंने। ''रुपया सूद पर लो ! जब आ जाए तब चुका देना ! न सूद पर लेना हो तो बेच दो जमीन। साव सब वसूल लेंगे सरकार से।''[५३] सरकार की इस योजना में साव अधिक से अधिक पैसेवाले बनते गए। और किसान व मजदूर गरीब से और गरीब बनते चले गए। दीन-हीन, निःसहाय जो कुछ हो रहा है, उसे भरी निगाहों से देखने के अलावा और कुछ कर भी तो नहीं सकते! जीरोन खेरा के आदिवासियों की स्थिति भी कुछ एसी ही है। धूरेसाव आदिवासियों की जमीन पर कब्जा जमाना चाहते है, और उन्हें अपनी ही जमीन छोड़ने पर मजबूर किया जाता है। ''तुमने खेरा न छोड़ा तो हम लाठी-बल्लम लाएँगे, पुलिस-पलटन लाएँगे, सिपाही-

दरोगा लाएँगे । तब जान-माल का जो टोटा होगा उसकी जवाबदेही तुमरी होगी ।''[५४]

३.५ विस्थापन की त्रासदी :-

स्वतंत्रता के बाद कई पंचवर्षीय योजनाएँ, विकास योजनाएँ बनाई गई । जिसका सबसे अधिक भोग बनना पड़ा किसान और मजदूरों को । उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश की सीमारेखा पर बेतवा नदी पर राजघाट नामक बाँध बनने की योजना अमल में आई। और वह क्षेत्र 'डूब' क्षेत्र घोषित हो गया । समय बितता चला जाता है, पर बाँध शुरु नही होता । ''फिर यकायक बाँध का काम शुरु होता है । लोगों की जमीन, मकान, कुएँ, पेड़ वगैरह सरकार द्वारा किश्तों में अधिग्रहीत किए जाने लगते है ।''[५५] अपनी भूमि के प्रति होनेवाले लगाव की वजह से लोग गाँव छोड़ नही पाते । मगर फिर भी गाँव के किसान और मजदूरों को अपनी ही जमीन से उखाडा जा रहा है । गाँव का हर आदमी जिस जमीन के साथ जुड़ा है, उसे वे किसी भी कीमत पर छोड़ना नही चाहते । क्योंकि उस जमीन के साथ उनकी संवेदनाएँ, सुख-दु:ख, स्मृतियाँ आदि गहरे रुप से जूड़े हुए होते है । गाँववालों को जबरदस्ती कानून का भय दिखाकर जमीन से बेदखल कर दिया जाता है । तब माते आक्रोश में आकर पूछते है कि- ''कोई बताता क्यों नही हमें कि कब खाली करना होगा गाँव ? इतनी बड़ी-बड़ी बातें कर गई सरकारजू ! तनिक यह भी बता देती कि हमें ले कहाँ जाओगी यहाँ से उखाड़कर ?''[५६] किसानों से अपनी जमीन छिनकर उनके पुनर्वास का कोई मुकम्मल इंतजाम नही किया जाता । मुआवजें के लिए इनकी आँखे राह देख रही है । मगर फिर

भी इन्हें कुछ नही दिया जाता। जैसे ही यह क्षेत्र 'डूब' क्षेत्र घोषित होता है, इन्हें सारी सुविधाएँ देना बंध हो जाता है। इनसे इनके मदरसा और व्यवसाय भी छिन लिए जाते है। माते कहते है- ''हमसे तो बस लेने ही लेने का रिश्ता है न तुम्हारा। हमें तो यहीं छेंककर मारना है न तुम्हे ! यही डूबोना है न।''[५७] और गाँव छोडकर ये भोले-भाले किसान जाए भी तो कहाँ ? ''हम अभागे की दुनिया देखी ही नहीं, फिर जाएँ तो जाएँ कहाँ ? खाली हाथ, सपाट दिमाग लेकर जा भी कहाँ सकते है हम!''[५८]

विस्थापन की वजह से किसानों की हालत और भी दयनीय हो जाती है। क्योंकि आय का मुख्य साधन खेत योजना में चला जाता है। तेंदु पत्ते का व्यवसाय छीन लिया जाता है। उपर से बाँध निर्माण का जो कार्य चल रहा है वहाँ पर इन्हें मजदूरों के रुप में भी नही रखा जाता। क्योंकि सरकार का मानना है, कि काम के लिए ये मजदूर अपने तीज-त्योहार मनाना नही छोड़ेंगे। अगर दूर क्षेत्र के मजदूर होंगे तो तीज-त्योहार के लिए घर जाने की नौबत ही नही आएगी। और तब अनाज उगानेवाला किसान अनाज के दाने-दाने के लिए तरसने लगा। ''कैसा फरेब है ये ? कितना बड़ा झूठ है ये ? कैसी खुशहाली है ये ? कैसा बाँध है ये ? जो हमें लीलेगा वह औरों को भी लीलेगा।''[५९]

विस्थापित किए गए क्षेत्र के अंतर्गत ''बारी, टोढे, शंकरपुर, पंचमनगर, सिरसौदिया, सिद्धपुर, केशोपुर''[६०] इत्यादि गाँव आते है। नदी के पार के सारे गाँव उजाड़कर वहाँ ''इंजीनियर, ओवरसियर, बाबू मजदूर बसेंगे।''[६१] एक को उजाड़कर

दूसरे को बसाने का इंतजाम किया जाता है। ''किसान का एक गुण यह भी है कि वह छोटी-सी खुशी के आगमन पर लंबे-लंबे दुःखों को भूलाकर भविष्य की आशा में डूब जाता है।''[६२] गाँव के किसानों को इस बात की खुशी है, कि खेत और मकान के बदले में सरकार से थोड़ा बहुत मुआवजा तो मिलेगा, जिससे हम अपना गुजारा कर लेंगे। मगर अफसरों के द्वारा उनकी सिंचित भूमि को असिंचित साबीत कर बताया जाता है कि ''यहाँ कई बरस तक जो बाढ़ आती रही उसमें सैंकडों खेत स्वाहा हों गए। अब उन खेतों का मुआवजा बाढ़-विभाग दे तो दे हम किस सूरत में दे सकते है ?''[६३] सहज है अब गाँववाले चारों ओर से निराश होते चले जाते है। उन्हें किसी का भी सहारा नही मिलता। सरकार तो विस्थापितों को लूटने का ही काम करती है। ''यह सरकार। यह गरीबों को सताएगी ! उन्हे सताएगी जिन्हे भाग्य, भगवान, धनवान सभी पहले ही सताने पर आमादा है ?''[६४] बरसों तक बाँध का काम चलेगा। तब तक इनके भटकाव का कोई अंत नही। गाँव में स्थान-स्थान पर गहरे गडढे खुदवा दिए गए है। जिससे गाँव का कोई व्यक्ति गाँव से बाहर नही जा सकता। और बाहर का कोई व्यक्ति गाँव में नही आ पाता। बाहरी समाज से गाँव को काट दिया जाता है।

विस्थापितों का सफर अंतहीत है। अब बाँध योजना को बदलकर वहाँ अभ्यारण्य बनाने का सुझाव अधिकारियों के द्वारा दिया जाता है। ताकि वहाँ जंगली जानवर बेखटके रह सके। माते यकाचक तैस में आकर बोलते है कि- ''तो अभी जो

रह रहे है, यहाँ, उन्हें क्या आदमियों में लेखती हैं सरकार ? सरकार की निगाह में भी यहाँ जानवर ही रह रहे है। जानवर भी ऐसे जिनके न दाँत है, न पंजा, फिर हमें कहाँ खदेड़ेगी यह सरकार ? कब लगाने आ रही है हाँका ?''[६५] माते अरविंद पांड़े से कहते है, कि कोई इस सरकार को क्यों नही समझाता कि ''आदमियों की कीमत पर जानवरों की रक्षा करना चाहती है यह?''[६६] कोई इनका हाथ पकड़कर रोकनेवाला भी तो नही है कि- भई ऐसा अनर्थ किसलिए? क्या गरीबों के जीवन का कोई मूल्य नही ? गाँव को उजाड़कर पशुओं के लिए अभ्यारण्य क्यों ? गाँव को विस्थापित कर, मनुष्य को मारकर विकास योजनाएँ बनाई जाती है।

'डूब' की विस्थापन की पीड़ा और दर्द ''पार'' में आकर और भी गहरी हो जाती है। विस्थापित होते गाँव की असर आदिवासियों के समाज पर भी पड़ती है। लालची और स्वार्थी जमींदारों की निगाह अब आदिवासियों की जमीन पर टिकी हुई है। एक दिन धूरेसाव ने जीरोन खेरा के मुखिया पर गाज गिरा दी ''कि पाँच पीढ़ी पहले हमरे पुरखों ने बसाया था जीरोना हमरे पास सुबूत है इसका। हम मालिक है जीरोन के। तुम जबरन उस पर काबिज हो।... अब ये गाँव गाँव से उखडे हमरे किसान बसेंगे वहाँ।''[६७] इन आदिवासियों को डरा-धमकाकर खेरा छोड़ने पर मजबूर किया जाता है। खेरे का मुखिया इसलिए चिंतीत है, कि खेरे से बाहर की दुनिया उसने कभी देखी नही थी। और गाँव के लोग तो उन्हें गाँव में घूसने भी नही देते। अब अगर निर्मल साव उन्हे इस जंगल से खदेड देगा, तो वह जाएँगे कहा ? जंगलों

की अवैध कटाई से अब जंगलों में बहुत घूमने पर भी अपनी जरुरतों की चीजें नही मिल पाती । मुखिया कहते है ''हम कंद-मूल, फल-फूल, जड़ी-बूटी, जलावन-छाजन कहाँ से पाएँगे ? हमरी तो डांग ही आसरा है ।''[६८] गाँव का बरेदी मवेशी चराने के लिए जंगल में आने लगता है । तब खेरेवाले सोचते है, कि अगर गाँव के मवेशी सारा चारा चर गए तो हमरे मवेशी क्या खाएँगे ? ''गाँववाले हमरी डाँग, हमरा खेरा रिता डालेंगे, तब हम कहाँ जाएँगे ? आखिर हमने इनका क्या बिगाड़ा है ?''[६९] विस्थापन का दुष्प्रभाव पशुओं को भी नही छोडता ।

मास्साव, बरेदी, साहूकार, जमींदार आदि सब गाँव छोडकर जाने लगते है । और माते जैसे कई गाँववाले एसे है, जो अपने गाँव को छोड़कर नही जाना चाहते । वे अंत तक गाँव की दशा और दिशा के साक्षात् गर्वाह रहे है । सबसे बड़ी त्रासदी तो यह है कि ''गाँव को विकास का सहयात्री नही बनाया गया, उसे साधन-भर समझा गया । सत्ता और शहर की इस साजिश में वे सामंतवादी शक्तियाँ भी सहयोगी हुई जो गाँव को अपनी जागिर बनाए रखना चाहती थी ।''[७०] विस्थापित होते समाज की पीड़ा और त्रासदी को वीरेन्द्र जैन ने बखूबी प्रस्तुत किया है । उनकी दीन-हीन स्थिति को लेखक बड़ी शिद्त के साथ उभार पाए है । इसका प्रमुख कारण यही है कि- इस डूब क्षेत्र के साथ लेखक की गहरी संवेदनाएँ जुड़ी हुई है । इसी क्षेत्र का सिरसौद गाँव लेखक की जन्मभूमि है, जो इस बाँध-योजना के तहत स्वाहा हो गया । उन्होने इस यथार्थ को दिल की गहराई से महसूस किया, जो 'डूब' और 'पार' के रुप में फूट पड़ा !

३.६ प्रेम और यौनवृति :-

प्रेम का प्रकाश अत्यंत उज्ज्वल व पवित्र होता है । निर्मल प्रेम शरीर से परे होकर सीधा हृदय से जुड़ता है । परंतु कभी-कभी प्रेम की आड़ में बरसों से अतृप्त काम-वासना सक्रिय हो जाती है । अतृप्त यौनवृति एक एसी चीज है, जो मनुष्य को पाशविकता की ओर ले जाती है । उसे सही और गलत का ध्यान भी नही रहेता । वासना के प्रवाह में वह अपनों को भी विनाश की खाई में धकेल देता है । विद्या जानती है की उसके पति की मुख्य कमजोरी है हवस । विद्या के पिता बरसो पहले पागलखाने चले गए । तभी से विद्या भी मम्मी अतृप्त रह आई है । इसलिए विद्या की ''मम्मी अपने दामाद (विनय) को खुश रखने के बहाने बीस साल से अतृप्त, सुप्त अपनी इच्छाओं को जगा रही है ।''[७१] वह अक्सर अपने दामाद के पास इस तरह चिपककर बैठती कि उनका पूरा शरीर विनय के शरीर के विभिन्न अंगो का स्पर्श पाता। विनय भी मम्मी की चारपाई पर हमेशा बैठा रहता और ''मम्मी के शरीर पर उसके हाथ हरकते करने लगते ।''[७२] विद्या इस बात को सहन नही कर पाती । विद्या की मम्मी और विनय के संबंध यहाँ तक पहुँच चुके है, कि अब विद्या की मम्मी ने विद्या का स्थान छिन लिया है । एक दिन विद्या विनय और मम्मी को कमरे में देख लेती है, और वह कहती है कि ''मैने उन्हें जिस हालत में देखा था उसे बयान नहीं कर सकती । मैं वह दृश्य देखने के लिए वहाँ न रुक सकी ।''[७३] विद्या की मम्मी वासना में इतनी अन्धी हो चुकी है, कि अपनी बेटी का अधिकार छीन रही है । अगर

उसे अपने आपको तृप्त ही करना था तो कोई और रास्ता भी तो अपना सकती थी। विद्या को ''संदेह होता है कि यह अतृप्ति है या आदत है ?''[७४] जो अपनी बेटी का घर बर्बाद करने पर तुली हुई है । विनय को इच्छातृप्ति के लिए अपनी सास से संपूर्ण सहकार मिलता है। विनय ने जब गर्भ रह जाने का संदेह अपनी सास के सामने प्रगट किया तो उन्होने साफ बता दिया कि ''उन्होने ओपरेशन कराया हुआ है और इसके बाद भी यदि कुछ हो जाए तो दस-बीस बार यही प्रक्रिया करने से गर्भ अपने आप गिर जाता है ।''[७५]

विनय से आवश्यक प्रेम न मिलने की वजह से विद्या यती के प्रति आकर्षित हो जाती है । विद्या यती के आलिंगन में बँधी हुई थी । वह कहती है, कि ''मैं चार पाई पर बैठी हुई न जाने कब पूरी तरह उस पर आ गई ।... मुझे न जाने कैसा तो आवेग-सा उठा और मैने उनके सीने पर चुम्बनों की बौछार लगा दी । मुझे तृप्ति नही मिल रही थी ।''[७६] विनय ने विद्या और उसकी मम्मी के साथ कई बार संभोग किया था, मगर फिर भी उसका मन तृप्त नही होता । शरीर की भूख इतनी तीव्र हो चुकी है कि वह हमेशा एक नये शिकार की तलाश में रहता है । विनय एक दिन गाँव में सिलाई का काम करने के लिए जाता है, वहाँ ब्लाउज का नाप लेने के लिए वह किसी के घर जाता है । घर में एकेली लड़की को देखकर वह रोमांचित हो उठता है। वासना का सोया हुआ कीड़ा जाग उठता है । वह उस लड़की कों पटाने के तरीके ढूँढ़ने लगा। विनय का मन जो चाह रहा था उस स्थिति में लाने के लिए उसने

लड़की का कई तरह से नाप लिया। काफी देर लगी उस लड़की को राजी करने में। तभी अचानक घर में कोई आ जाता है। विनय कहता है, कि ''मैं झट संभलना चाह रहा था पर इच्छातृप्ति हम दोनो की ही नही हुई थी, और इस तरह हम पकडे गए।''[७७] विनय की बुरी तरह पिटाई हुई और उसका पूरा शरीर सुझ गया। विद्या के पूछने पर वह बताता है कि मैं कुएँ में गिर गया था। मगर विद्या को वास्तविकता का पता चल ही जाता है। फिर भी विद्या विनय को माफ कर देती है। विनय को विद्या के प्रति जरा-सा भी प्रेम नही है। फिर भी अपनी कामुकता की वजह से वह उसके प्रति शारीरिक संपर्क तो बनाए ही रखता है। विद्या उसके प्रति स्नेह रखती, मगर वह ''केवल अपने शरीर की भूख मिटाने-भर के लिए उसके निकट रहता।''[७८]

विद्या की माँ जब भी अतृप्ति-सी महसूस करती, वह अपने दामाद को झट से दिल्ली बुला लेती। और उसे महीना-भर वहीं रोके रखती। इस बार भी उन्होने विनय को दिल्ली बुलाया है। विनय अपनी सास के गर्भ रह जाने की वजह से चिंतित हो जाता है। तभी विनय की चिंता दूर करते हुए उसकी सास ने बताया कि ''अरे लाला, मैं तो बताना ही भूल गई वह तो आज ही सवेरे बह गया।''[७९] लगातार संभोग करने की वजह से विनय इतना कमजोर हो जाता है, कि उससे स्टूल पर बैठा नही जाता। ''कूल्हों में दर्द होता है।''[८०] मगर विद्या सारा माँझरा समझ जाती है और क्रोध से कहती है ''लगातार महीने-भर औरत के साथ सोओगे तो यही होगा।''[८१] यह सुनकर विनय विद्या को पीट देता है। विद्या के गर्भवती होने के बावजूद विनय विद्या के साथ

राक्षसों की तरह संभोग करता रहता है । जिसकी वजह से जो बच्चा जन्मा वह मास के लोथडे के अलावा और कुछ नही था । वास्तव में विनय इस तरीके से विद्या का गर्भ गिराना चाहता था । और जिम्मेदारी से बचना चाहता था । विनय ने इसी तरीके से विद्या की माँ का गर्भ भी बार-बार गिरा दिया था । और यही तरीका उसने विद्या के लिए भी अपनाया, पर वह कामयाब न हुआ ।

अनाथाश्रम के अध्यक्ष का लड़का रात को लड़कियों के कमरे में घूस आता है। सुरेखा जीजी ''दहाडती हुई दरवाजे के पीछे झपटीं और कपड़े पकड़कर वहाँ से किसी को खींच लाई ।''[८२] और उन्होने उस लड़के को बेइंतहा पीट दिया । मगर फिर भी सारे समाज में थू-थू तो सुरेखा की ही होती है । तब समाज-सुधारक इन लड़कीयों के प्रति सहानुभूति जताने के नाते अनाथाश्रम में आने लगे । ''वे जिस स्नेह से लड़कियों के अंग-प्रत्यंग को सहलाने की कोशिश करते उससे लड़कियों के तन-बदन में आग लग जाती, पर चुप रह जाना पड़ता ।''[८३] ऐसे समाज-सुधारक सहानुभूति जताने के नाम पर लड़कियों के शरीर का स्पर्श कर आंतरिक संतुष्टि पाने मे लगे रहते । तब ये लड़कियाँ तय नही कर पाती कि यह वास्तव में स्नेह है या वासना का कीचड़ ?!!! डी.ओ. भी रपट लिखवाने आई गभराई हुई-सी युवती का फायदा उठाता है । युवती के घर कल रात एक शराबी ने आकर उसे डराया धमकाया । इसलिए युवती मदद की अपेक्षा से पुलिस थाने रपट लिखवाने आती है । मगर सुंदर और सुगठित युवती को देखकर डी.ओ. के ''मँह में पानी आ गया । उसने ललचाई नजरों

से उस अपढ़ डरी हुई मगर जवान और खूबसूरत युवती को देखा ।''[८४] डी.ओ. ने युवती को बेंच पर लेट जाने के लिए कहा । और उस शराबी ने क्या-क्या हरकतें, किस-किस तरह से की, यह जानने की कोशिश करते हुए उसके शरीर का स्पर्श पाने लगे । डी.ओ. युवती के एकदम करीब आ गया । ''अपने करीब सोए जवान जिस्म को देखकर उसकी आँखों में अतिरिक्त चमक आ गई । अर्से से उसके भीतर सोया शैतान जाग उठा ।''[८५] वासना से भरे डी.ओ. को युवती की शिकायत से नही शरीर से लेना-देना है । उसे देखकर डी.ओ. के मुँह से लार टपकने लगती है । और उसे पाने के लिए तत्पर हो उठता है । ''साली चीज भी तो एकदम कातिल है, अंग-अंग से जवानी फूट रही है और... खैर, अपनी तो कई शामें आबाद हो गई समझो ।''[८६] डी.ओ. और सभी पुलिस कर्मी अपनी सत्ता का दुरुपयोग करते है । समाज की सुरक्षा करनेवाले पुलिस कर्मचारी ही समाज में असुरक्षा का चक्र फैलाते है । तो आखिरकार सुरक्षा की उम्मिद रखी किससे जाए ?

३.७ विवाहप्रथा एवं दहेजप्रथा :-

हमारे भारतीय समाज में विवाह संबंध के बारे में लड़कियों से उनकी इच्छा-अनिच्छा कभी पूछी नही जाती । लड़के की पसंदगी के संबंध में लड़कियों की कोई राय मायने नही रखती । अधिकतर लड़कियों की शादी का निर्णय उसके माता-पिता ही लेते है । विद्या का विवाह भी उसकी मम्मी ने अच्छा-सा लड़का देखकर तय कर दिया । विद्या हायर सेकंडरी तक पढ़ी है । जिस लड़के के साथ विद्या का विवाह तय

हुआ, वह न तो अधिक पढ़ा-लिखा था और न ही संस्कारी । विनय ने विद्या की मम्मी को अपने बारे में बहुत-सी बातें गलत बताई थी । स्वयं विनय यह बात स्विकारते हुए कहता है कि ''मेरी पत्नी को यह मालूम नहीं है कि मैं कहाँ तक पढ़ा हूँ। उसे हमने इंटर पास बताया है।''[८७] इतना ही नही ''और भी बहुत-सी बातें उस नवागन्तुक को झूठी और बेबुनियाद बतलाई गई थी।''[८८] जिसकी वजह से विद्या की जिंदगी बर्बाद होकर रह जाती है। छल और कपट से भरे इस संबंध में विद्या घुटन-सी महसूस करती है ।

सुंदर और सुशील प्रभा को जब भी कोई लड़का देखने आता है, तो उसे पकवान सजी थाली की तरह पेश किया जाता है। मगर हर रिश्ता नाकाम रहता है। ''इस तरह हर बार अपनी ही लड़की को एक आघात देते गए कि शायद उसमें कुछ कमी है।''[८९] या फिर उसे एसा मेहसूस होता है, कि वह अपने पिता पर बोझ बन गई है । जिसे पिताजी उतार नही पा रहे है । ''यह सारा नाटक सिवाय कटुता के और क्या दे जाएगा ? कब तक आप अपनी लड़की को यूँ ही तमाशा बनाते रहेंगे ?''[९०] लड़की को सजा-धजा कर काँच की गुड़िया की तरह पेश करना उसके नारीत्व का अपमान है। उसे हर कोण से देखा-परखा जाता है। और अगर लड़की अच्छी लगी तो लड़केवाले 'हाँ' कहेंगे और अगर नापसंद आई तो उठकर चल देंगे । जिससे लड़की के स्वाभिमान का हनन होता है। यह सारा व्यवहार एसा है, जैसे कि वह कोई जीव नही, पर बेचने के लिए रखी गई कोई चीज हो । प्रभा के पिता अपनी लाचारी

व्यक्त करते हुए कहते है, कि ''यह तो हर लड़की के माँ-बाप की विवशता है । वह अपने दिल पर पत्थर रखकर अपने जिगर के टुकडे को तमाशा बनाने को लाचार हो जाता है । अगर आप की ओर से भी ऐसा ही हुआ तो न जाने कब तक आगे भी यही सिलसिला चलेगा ।''[११]

आदिवासियों के जीरोन खेरा की विवाहप्रथा कुछ अलग ही ढंग की है । जब लड़का-लड़की विवाह योग्य हो जाते है, तब गौंड़ बब्बा के स्थान पर मढ़वा गढ़वा दिया जाता है । पूरे चाँद की रात डोर बँधाई की रस्म तय की जाती है । ''जब तक वह दिन नही आया, खेरे में खूब रास रंग रहा । ढोल और गीतों के स्वर आकाश गुंजाते रहे ।''[१२] विवाह में तीन लड़के और चार लड़कियाँ आमने-सामने बैठाए जाते है । लड़कियों की संख्या अधिक इसलिए रखी जाती है, ताकि उन्हें एसा न लगे कि उनके साथ विवाह में जबरदस्ती की गई है । लड़की अपनी पसंदगी का लड़का स्वयं चुनती है । मढ़वा के नीचे लड़का आकर ढोल बजाने लगता है । और जिस लड़की को वह ढोल बजानेवाला लड़का पसंद होता है, वह लड़की अपने स्थान से उठकर उस लड़के के पास जाकर खडी रहती है । इसी प्रथा के अनुसार मुखिया ने गुरया को मढ़वा के नीचे ढोल बजाने का संकेत दिया । तब ''गुरया अपनी जगह से उठा । गौंड बब्बा के पथरा पर माथा टेका । मुखिया को प्रणाम किया । गुनिया को प्रणाम किया। ढोल को प्रणाम किया । ढोल उठाया । मौंढों (लड़कों) के गोल के आगे बैठा । ढोल को पाँवों के बीच चाँपा । दोनों हाथों में डंडियाँ थामीं । डंड़ियों को तौल कर देखा।

तय किया कि किस डंडी को किस हाथ में थामूँ । और ता-तिड, ता-तिड, ता-तिड़...।''[१३] सबको उत्सुकता थी कि कौन-सी मौढी गुरया की जनी (पत्नी) बनेगी । ''तभी पंछिया गोल में से उठी । ढोल की थाप पर थिरकती हुई मढ़वा तक आई । गौंड बब्बा को माथा टेका । मुखिया को प्रणाम किया । गुनिया को प्रणाम किया । और अंत में गुरया के ऐन सामने आ खडी हुई ।''[१४] आदिवासी समाज में लड़के-लड़की को एक-दूसरे की पसंदगी का अवसर मिलता है । उनके साथ कोई जबरदस्ती नही कि जाती । जबकि पढ़े-लिखे सभ्य समाज में लड़के-लड़की को इतनी स्वतंत्रता नही मिलती कि वह अपनी पसंदगी का जीवनसाथी चुन सके । जिसकी वजह से विवाह संबंध टूटते-बिखरते नजर आते है ।

नरेन प्रभा के साथ इस शर्त पर शादी करने के लिए तैयार होता है, कि वह दान-दहेज में कुछ भी नही लेगा । तब पिताजी नरेन के एसे व्यवहार से नाखुश तो हुए ही, पर साथ-साथ ''वह इस रिश्ते को स्वीकार न करने पर उतारु हो गए...।''[१५] पिताजी नरेन को दहेज लेने के लिए समझाने लगे । तब नरेन कहता है, कि ''दान-दहेज हमारे समाज के नाम के साथ जूडा सबसे धृणित कलंक है । इसे मिटाना ही होगा । इसे मिटाने के लिए किसी-न-किसी की ओर से पहल करनी ही होगी । लड़कीवाले तो नहीं कर सकते पर हम तो कर सकते हैं ।''[१६] पिताजी ने नरेन के विवाह में मिलनेवाले दान-दहेज से कई मँसूबे बाँधे थे । ''पिताजी को आशा थी कि नरेन के विवाह में काफी मोटी रकम दहेज में मिलेगी । उसमें से कुछ रकम खर्च कर

मनीष को कोई छोटी-मोटी दुकान डलवा देंगे । नरेन के पास रहकर शीतेष आगे पढ़ सकेगा । प्रगल्भा का विवाह धूमधाम से हो जाएगा ।''[१७] पर नरेन के दहेज न लेने से इन सब बातों पर पानी फिर गया ।

प्रभा को हर लड़के के द्वारा नापसंद इसलिए किया गया, क्योंकि लड़केवालों के द्वारा दान-दहेज की माँग प्रभा के पिताजी की हैसियत से बहुत ज्यादा रही । नरेन ने दहेज लेने से मना कर दिया, जिसकी वजह से नरेन का छोटा भाई मनीष और उसकी चचेरी बड़ी बहन उससे काफी नाखुश थे । नरेन की चचेरी बड़ी बहन के ''पति इस विवाह के शुरु से सूत्रधार रहे, पर नरेन द्वारा दहेज के प्रसंग में एक अलग रवैया अपनाने की वजह से विवाह में सम्मिलित तक नही हुए ।''[१८] नरेन के पिताजी ने भी नरेन की शादी का खर्च उठाने से साफ इन्कार कर दिया । जिसकी वजह से नरेन को अपनी शादी का खर्च स्वयं उठाना पड़ा । शादी के बाद परिवार का कोई भी सदस्य प्रभा के साथ ठीक ढंग से बात नही करता । क्योंकि प्रभा दहेज में कुछ भी नही लाई थी । प्रभा ने अपने आप को परिवार के लिए समर्पित कर दिया । मगर फिर भी उसे अंत तक नफरत के अलावा कुछ भी नही मिलता । 'सुरेखा-पर्व' की विद्या भी ''दस हजार रुपया नकद के अलावा रेड़ियो, पंखा, सिलाई मशीन और भी बहुत-सी चीजें..''[१९] दहेज में लाई है । जिसकी वजह से उसका पति विनय काफी खुश है। और गर्व से दहेज की चीजों के बारे में वह लोगों से बातें करता है । दहेज-प्रथा समाज का खतरनाक शत्रु है । दहेज लेकर आनेवाली लड़की सर्वगुन संपन्न बन जाती है ।

और बिना दहेज के सुंदर एवं सुशील लड़की में भी कई कमियाँ निकालकर उसे परेशान किया जाता है । और उसे आजीवन उपेक्षा का भोग बनना पड़ता है । दहेज-प्रथा की आग में न जाने कितनी ही लड़कियाँ जल कर राख हो गई । मगर फिर भी उसमे आज भी सुधार के कोई लक्षण नजर नही आ रहे ।

३.८ सामाजिक चेतना: प्रतीक पात्र :-

जमींदार, साहूकार, सरकार एवं समाज में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त लोग अपनी सत्ता और शासन का दुरुपयोग कर आम आदमी का हर तरह से शोषण करते है । उन्हें शारीरिक संत्रास एवं मानसिक उत्पीड़न दिया जाता है । लेकिन यही आम वर्ग जब अपने हक और अधिकारों को जानकर दुर्नितीयों का विरोध करता है, तो उसे सामाजिक चेतना कहते है । जब अपनी स्थिति के प्रति जागृति उत्पन्न होती है, तब कभी-न-कभी चिनगारी तो उत्पन्न होती ही है । वीरेन्द्र जैन ने अपने उपन्यासों में कुछ पात्र ऐसे चुने है, जो स्वयं तो सचेत है ही, साथ-साथ दूसरों को भी जागृत कर शोषण का विरोध करने के लिए प्रेरित करते है । जिनमें से एक है अट्टूसाव । अट्टूसाव ने भोपाल में रहकर डॉक्टरी की पढ़ाई की है । वह है तो साव के ही लड़के, मगर साव के एक भी लक्षण उनमें मौजूद नही है । वह अपने गाँव के मजदूरों को साहूकारों के शोषण से मुक्त करवाना चाहते है । और मजदूरी के बदले में नकद कलदार लेने के लिए समझाते है । गाँव के साहूकार मजदूरों को भय दिखाकर बिना मजदूरी के खेत में काम करवाते है । जिसकी वजह से उन्हें दिन-रात भूखा रहना पड़ता है । अट्टूसाव

उन्हें अपने अधिकार के प्रति सचेत करते हुए कहते है कि– ''कानून के आगे गुहार लगाओ ! वहाँ आततायी को सजा और सताए गए को न्याय मिलता है । वहाँ सब बराबर है । न कोई छोटा, न कोई बड़ा । न कोई ठाकुर न कोई चमार । न कोई अमीर, न कोई गरीब । न कोई विद्वान, न कोई गँवार ।''[१००] अड्डूसाव की इन बातों का असर घूमा और सारे चमरौटे पर होता है । जिसके परिणाम स्वरुप घूमा और सारा चमरौटा ठाकुर देवीसिंह से अपनी मजदूरी की माँग करता है । बदले में ठाकुर इन मजदूरों का मार-मार कर बुरा हाल कर देता है । इसका विरोध करते हुए घूमा जब ठाकुर के पीछे तलवार लेकर दौडता है, तब ठाकुर जैसे आततायी को घूमा से डरकर भागना पड़ता है । अब ये मजदूर अपनी स्थिति के प्रति सभान हो चूके है । अपने हक के लिए जहाँ विद्रोह और क्रांति की आवश्यकता है, वहाँ शांत बैठे रहने से काम नही चलता । घूमा ने भी वही किया !

लड़ैई गाँव के माते ने एक लंबी जिंदगी जी है । गाँव के हर भले और बूरे कार्य के वे साक्षी रहे है । गाँव का हर व्यक्ति माते का आदर करता है । लेखक ने माते और चेतना को एकाकार कर दिया है । चेतना के बगैर माते की कल्पना करना वृथा है । माते पढ़े-लिखे नही है, मगर फिर भी समय के साथ वे बदलना जानते है । सरकार के षड़यंत्र को माते शीघ्र ही भाँप जाते है । और राजनीति का विरोध करते है । गाँव के साथ-साथ माते की संवेदनाएँ भी टूटकर बिखर जाती है । माते सरकारी षड़यंत्र का विरोध करते हुए कहते है कि ''हमरी जो दशा बनाई है तुमने, उसमें और देने को

है ही क्या हमरे पास ? तुम्हारी दी चीज तो तुम हर पाँच बरस पीछे माँग ही लेते हो, कभी मुँह से तो कभी भँड़याई से । हमें खबर भी नही देते कि तुमने हमरी चीज बर्ती भी है । इसके सिवा तुमने दिया क्या है हमें ?''[१०१] मात को जब भी सरकारी हवाई-जहाज आसमान में दिखाई देते है, तब वह समझ जाते है कि गाँव में कोई नई आफत आने-वाली है । और वे बोल उठते है कि ''कहाँ से आ रही है ये मुतकेरी चीज-गाडियाँ (हवाई-जहाज) ।''[१०२] माते गाँव के हर व्यक्ति का फैसला पंच बनकर तटस्थतापूर्वक करते है । माते परंपरा को तोड़ते है । और दीपू तथा सावितरी दोनों प्रेम करनेवाले को मिलाते है । उन्हें अपनी शरण में लेते हुए गाँववालों को सचेत करते है कि ''सावितरी और दीपू को खरोच भी पहुँचाई किसी ने, तो हमसे बुरा कोई न होगा, यह हम फिर बताए दे रहे है ! अब ये हमरी शरण में है । हम आप लोगों को इनका भविष्य सँवारने का मौका तो दे सकते हैं चौपट करने का नहीं ।''[१०३] माते अंत में सरकारी षड़यंत्र का विरोध करते हुए बोलते है, कि ''लाबरी है जो सरकार, महा लाबरी! महा झूठी, सरासर झूठी ।''[१०४] इस तरह माते एक जीवंत पात्र है । जो हर अच्छे को अपनाता चलता है, और हर बुरे का विरोध करता है । माते की आँखें चारों दिशाओं में घूमकर सही और गलत का फैसला करती है ।

'डूब' क्षेत्र में हो रही बाँध योजना के तहत जंगलों की अवैध कटाई की जाती है । जिससे आदिवासी जाति के मुखिया चिंतीत हो रहे हैं । क्योंकि उनके जीवन यापन का एक मात्र आधार जंगल ही है । जहाँ से आदिवासी स्त्रियाँ जरुरत की चीजें

लाकर बेचने जाती है । मुखिया सोचता है, कि अब तक सरकार पर्यावरण को बचाने के ढोल पीटती थी, अब खुद ही जंगल का सफाया कर रही है । गाँव का बरेदी मवेशियों को लेकर जंगल में चराने आने लगता है । मुखिया की चिंता यह है कि अगर गाँव के मवेशी जंगल का चारा चर जाएँगे, तो हमारे मवेशी क्या खाएँगे ? बरेदी ने स्वयं मुखिया को बताया कि ''बाँध बनानेवाले लड़ैई से मील-दो मील आगे से राजघाट तक की राह से पेड-रुख काट ले गए । माटी खोद ले गए । सरियाँ-छ्योलियाँ उजाड गए । अब वहाँ चरागाह नही बचीं । कूओं, तलैयों जैसे गड्डे हो गए हैं जगह-जगह । सो वहाँ ढोर चराना कठिन हो गया है । फिर जब वहाँ हरियाली बची ही नही तब ढोर पानी में लौटने तो जाने से रहे वहाँ! सो अब सब दिन लड़ैई के ढोर यहीं आएँगे, हमरी डाँग में, हमरे खेरे में ।''[१०५]... ''अब अपनी विपदा यह कि उनके मवेशी हरियाली चर गए तो हमरे ढोर-बछेरु का चरेंगे ।''[१०६] आखिरकार मुखिया ने गाँव के मवेशियों को डराकर जंगल का रास्ता ही भूला दिया । जब मुखिया ने अपने मवेशियों के लिए चारा सुरक्षित करवा लिया तभी राहत की साँस ली ।

धूरे साव आदिवासी स्त्रियों को छल से शहर ले जाकर बेच देता है । और स्वयं जंगल में आकर उनके खो जाने की या भाग जाने की झूठी खबर देकर शोक प्रकट करता है । लेकिन गुनिया जब शहर जाता है, तब उसे अचानक रास्ते में खोई हुई मुनिया मिल जाती है । आश्चर्यचकित गुनिया मुनिया से सवाल पूछता है, कि ''तू कितै बिला गई थी री मुनिया ? तोए तो डाकू उठा ले गए थे न ?''[१०७] तब मुनिया

गुनिया के सामने रहस्योदघाटन करती है कि उसे डाकू नही, मगर घूरे साव भगाकर ले गया था । और शहर ले जाकर बेच दिया था । मुनिया अपना दु:ख प्रकट करती हुई कहती है कि ''बिकते-बिकते । अब की बार जिसने खरीदा उसे चकमा देकर मोटर में बैठ गई । मोटर यहाँ ले आई । यहाँ से किसी और मोटर में बैठती कि तुने हाथ थाम लिया ।''[१०८] ऐसा छल-कपट सुनकर गुनिया गुस्से से लाल हो जाता है । वही खेरे का अगला मुखिया है । अब तो उसे ही मुखिया की गैरहाजरी में मुनिया का न्याय करना है । जब पुलिस-थाने में भी गुनिया की बात सुनी नही जाती, तब वह स्वयं मुनिया का न्यार कर देता है । जैसे ही धूरे साव गुनिया को मोटर से उतरते दिखे ''गुनिया ने आव देखा न ताव, जनाउर की नाई जा दबोचा धूरे साव को । जब तक साव चिल्लाएँ, शोर मचाएँ, कि कैलास उनकी मदद को आगे बढे, धूरे साव का टेटूआ दबा दिया गुनिया ने... ।''[१०९] अन्याय का प्रतिकार किया गुनिया ने । अपनी जिम्मेदारी को निभाया गुनिया ने ।

'डूब' के मास्साव और अरविंद पांड़े भी एसे जीवंत पात्र है, जो गाँव के दु:ख से दु:खी और गाँव के सुख से सुखी होते है । जो गाँव के निरक्षर मजदूर और किसानों को शहर के सारे कायदे एवं बातों से अवगत कराते है । ''मास्साव यानी मास्टर जनकसिंह एक अलग ढंग के सच्चे पुरोधा हैं । वे जागृति चाहते है, शिक्षा का प्रसार चाहते हैं, जागरण की दुंदुभि बजाना चाहते हैं । वे उन सभी योजना-परियोजना के दुरागत परिणामों को समझाते हैं, जरा माते की सोच से हटकर । माते में आक्रोश और

आवेश है- हर दुष्कर्म के प्रति । हर उस कार्य के प्रति जो गाँव के निवासियों के लिए संकट का गजर बजाता है, वहाँ मास्टर हर कदम पर गंभीर सोच के साथ विश्लेषण करते हैं ।''[११०] इसी तरह 'पार' में रामदुलारे और यशस्विनी गाँव में रोशनी लेकर आते है । रामदुलारे और यश ने अपने आपको गाँव के लिए समर्पित कर दिया है । रामदुलारे एक एसा चरित्र है जो हर परिस्थिति की मार जेलता है । एक रुप से तो एसा लगता है, कि रामदुलारे के रुप में स्वयं लेखक ही है । रामदुलारे यशस्विनी से कहता है कि ''यश, हमें कठिन संघर्ष करना होगा । बहुत से काम, बहुत दिशाओं में एक साथ लेकर आगे बढ़ना होगा । यह गाँव बहुत दिनों तक सुरक्षित नहीं रहनेवाला, मैं चाहता हूँ कि ये यहाँ से इस लायक होकर जाएँ कि कहीं और अपने को खपा सकें। ठगे न जाएँ । दूसरों को इन्हें स्वीकारना लाजिमी लगे । उन पर बोझ न बनें ये । इस बीच बाहर की दुनिया बहुत कुछ बदल गई है । ये बहुत पिछड़ गए हैं । हमें इन्हें उस दुनिया के बराबर ज्ञान में, समृद्धि में पहुँचाना होगा ।''[१११] गाँव का हर व्यक्ति आगे बढ पाए इसलिए यशस्विनी गाँव के लोगों को फुरसत के समय में पढ़ाने का दायित्व अपने सर लेती है । ''इनमें से शिक्षा-जागृति मेरा दायित्व रहा ।''[११२] गाँव को विकास का सहयात्री बनाने का प्रयास करते हुए राम-दुलारे कहता है, कि ''यहाँ सबसे जरुरी तीन काम हैं । सड़क, संगठन और शिक्षा । इन्हीं की बदौलत ये दूसरों से जुडेंगे, दूसरों को जानेंगे, दूसरों से अपना वजूद मनवा सकेंगे । इसके बाद ही हालात बदलेंगे ।''[११३]

'पंचनामा' का अकलंक भी अपनी स्थिति के प्रति सचेत है । सनाथ होते हुए भी अनाथ है । मगर फिर भी उसमें स्वाभिमान का भंड़ार भरा हुआ है । वह अपने भविष्य को सँवारने के लिए वर्तमान में पढ़ाई भी करता है, और साथ-साथ छोटी-मोटी नौकरी कर अपना गुजारा भी कर लेता है । जब अधीक्षिकाजी को अकलंक पर दया आ जाती है, तब अकलंक परिस्थिति को भाँप कर अधीक्षिकाजी को स्पष्ट शब्दों में कह देता है कि ''हमें सहानुभूति नही चाहिए । उसका तो हमारे पास इतना भंड़ार है कि अपच होने लगती है... अगर आप दाता बनना चाहती हैं तो हमें अपना स्नेह दीजिए, प्यार दीजिए आत्मीयता दीजिए, ममत्व दीजिए, बंधुत्व दीजिए । यह वह पूँजी है जिसे समाज और दुनिया के ठेकेदार अपनी-अपनी जिद में हमसें छीन चुके है।''[११४] 'सुरेखा-पर्व' में पढ़ी-लिखी विद्या का ब्याह एक एसे लड़के से कर दिया जाता है, जिसके जीवन का कोई लक्ष्य नही । विनय को न तो अपनी पत्नी विद्या के प्रति प्रेम है, और न ही अपने बच्चे के प्रति । विनय में मात्र शरीर के भूख की पाशविकता है । विद्या को मालूम है, कि वह विनय के साथ ज्यादा निभा नही पाएगी । विनय जब अपने बेटे क्षितिज को जलती हुई बीड़ी का टुकडा चिपका देता है, तब वह जोरों से रोने लगता है । यह देखकर विद्या विनय का विरोध करती है और ''चूल्हें में से जलती हुई लकडी उठाकर विनय की पीठ पर तीन-चार बार दे मारी ।''[११५] विद्या विनय के मित्र यती को जब अनाथाश्रम दिखाने के लिए ले जाती है, तब वह भविष्यवानी करती हुई कहती है कि ''सुरेखा-पर्व की पुनरावृति हो रही है और इस सुरेखा-पर्व के तुम प्रत्यक्षदर्शी हो ।''[११६]

नरेन ने अपने विवाह में दहेज न लेकर समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास किया । नरेन ने प्रभा के पिताजी से दहेज की एक भी चीज लेने से साफ इन्कार कर दिया । प्रभा के नाते-रिश्तेदार यह सब देखकर आश्चर्यचकित हो गए । ''विवाह की रस्में देखने के लिए भीड़ उमड़ पड़ी थी । नगर के प्रतिष्ठित सेठ की कन्या का विवाह और वर की जिद कि वह कुछ नही लेगा, एक आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय घटना थी सभी के लिए । इसीलिए उस शहर का जनसमुदाय टूटा-सा पड़ रहा था नरेन को देखने के लिए ।''[११७] अंत में बिदाई के समय भी नरेन का आग्रह था कि प्रभा ने जो गहने पहने है, वह भी उतार लिए जाए तो अच्छा होगा । नरेन की एसी शराफत देखकर समाज अवाक सा रह गया ।

'शब्दबध' में वीरेन्द्र जैन ने प्रकाशन जगत के शोषण-चक्र को उजागर किया है । परंपरानुसार आनंद के साथ भी यही शोषण-चक्र का व्यूह शुरु होता है । मगर वह पहले ही महिने सचेत हो जाता है, और इस शोषण-चक्र का विरोध करता है । आनंद के काम के दिन बनते है १३७, पर उसे वेतन मात्र १०९ दिन का ही दिया जाता है । आनंद इस अपमानजनक वेतन को स्विकार नहीं करता । और किसी की भी परवाह किए बगैर वह सीधे संचालकजी के कमरे में चला जाता है । और उनसे बेखौफ सवाल पर सवाल करता है । जिसका संचालकजी के पास कोई जवाब नही है । आनंद संचालकजी से कहता है, कि ''मेरा माह-भर का न्यूनतम खर्च एक सौ बीस रुपए है, तो मैं छियानवे और कभी बयानवें रुपए में गुजारा कैसे कर लूँगा ? कि

जिस दिन कार्यालय बंद रहता है उस दिन मुझे खाना खाने या मकान में रहने का अधिकार है या नही ?... कि शनिवार और इतवार को मैं जो काम करता रहा वह अपराध क्षम्य है या नही ?''[११८] आनंद का विरोध सार्थक रहा, और उसका वेतन बढाकर १२० रु. तय कर दिया जाता है । प्रतिबद्ध प्रकाशन की संचालक कांताजी वेतन के अतिरिक्त हर कर्मचारी को प्रतिमाह ५० रुपए उपहार इसलिए देती है ''ताकि देर-सबेर तक काम करने पर कोई अतिरिक्त न माँगे, किसी के काम से नाखुश होने पर बन्द किया जा सके । वेतन के साथ तो ऐसी छेड़छाड़ नही हो सकती!''[११९] मगर आनंद वेतन के अतिरिक्त एक रुपया भी लेने से इन्कार कर देता है । अगर देना है, तो वेतन के साथ दीजिए, वरना नहीं ।

वीरेन्द्र जैन ने अपने प्रत्येक उपन्यासों में कोई- न कोई एसा पात्र रखा है, जो समाज में फैले अन्याय, शोषण व षड़यंत्र का विरोध करता है । और उसे निरंतर बदलने की चेष्टा में कभी-कभी वह खुद मिट जाता है । मगर शोषण के सामने झूकता नही ।

३.९ छल-कपट और षड़यंत्र :-

'पंचनामा' का पंचम स्वयं अपने ही परिवारवालों के षड़यंत्र का शिकार बनता है । मामा पंचम को छल से अनाथाश्रम में भर्ती करवा देते है । नायक वंश में सदियों से यह परंपरा चली आती है, कि उनका वंशज पढ़-लिखकर आगे बढ़ता है । मगर परिस्थितिवश अब यह हालात उत्पन्न होते है, कि नायक वंश पंचम को पढ़ाने के लिए

सक्षम नही है । घर में दो वक्त की रोटी भी नशीब से मिलती है । ऐसे मे पंचम की पढ़ाई अगर हो तो कैसे हो ? मँझले भैया और मामा दोनों किसी को बिना कुछ बताए पंचम को अनाथाश्रम में भर्ती करवाने की बात सोचते है । मँझले भैया पंचम को लेकर मामा के पास पहूँचते है । और मामा पंचम को बिना कुछ बताए अपने साथ ले जाते है । पंचम के मन में बहुत सारे सवाल उत्पन्न होते है, कि उसे कहाँ ले जाया जा रहा है ? क्यों ले जाया जा रहा है ? ''मामा जब से रेल में सवार हुए थें, पंचम से कुछ कहना चाह रहे थे, पंचम को कुछ समझाना चाह रहे थे ।''[१२०] मगर कुछ बता नही पाते । हिंमत करते हुए मामा बोले, ''पंचम बेटे, तुम्हें पढ़ाई करनी है न । खूब पढ़ना है न! अपने सभी भाइयों से ज्यादा ! घर की हालत तुमसे छिपी नही है । जींजाजी तुम्हे पढ़ा नहीं सकते । मँझले तुमसे दो छोटो को पढ़ाने की जिम्मेदारी ले चुके है । सँझले और तुमसे बड़े अभी इस लायक नहीं कि वे तुम्हारी मदद कर सके।''[१२१] अब हम तुम्हे जहाँ ले जा रहे है, वहाँ रहकर तुम खूब पढ़ाई करना । ''देखो, हम तुम्हें जहाँ ले जा रहे हैं, वहा तुम्हें अपना नाम पंचम नही अकलंक बताना होगा ।''[१२२] पंचम सोचने लगा कि यह कैसे संभव है ।''... फिर मदरसा के प्रमाण-पत्र में भी तो पंचम लिखा होगा...''[१२३] मामा ने कहा कि इसकी चिंता तुम मत करो। हम तुम्हारे मँझले भैया के मदरसे से जो प्रमाण-पत्र बनाकर लाए हैं, उसमें अकलंक लिखा है । ''और हाँ, तुम यहाँ आने से पहले राजस्थान के छाबड़िया गाँव में पढ़ते रहे हो, यह भी याद रखना । कोई पूछे तो यही कहना । उसी गाँव के मदरसे का प्रमाणपत्र हमारे

पास है।''[१२४] अब तक पंचम की समझ में नहीं आ रहा था कि उसे पढ़ने के लिए कहाँ ले जाया जा रहा है ! मामा ने पंचम से फिर कहना शुरु किया, ''और हाँ, पंचम, वहाँ तुम्हें यह नही कहना है कि तुम्हारे माँ-बाप, भाई-बहन या कोई सगा-संबंधी है... कोई भी पूछे तो कहना... मुझे खबर नही...''[१२५] वैसे कोई पूछेगा तो मैं ही उन्हे बता दूँगा कि तुम एक मेले मे मुझे मिले थे । बचपन से मैने तुम्हें पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया । मगर अबतुम्हारी परवरिश कर पाना मेरे बस की बात नही, इसलिए तुम्हें यहाँ ले आए । ''मामा की बात सुनकर पंचम को एसा लगा जैसे कई सारी रेले एक के बाद एक धड़धड़ाती हुई उसके ऊपर से गुजर गई हो...''[१२६] उसे लगा जैसे कि ''चौथी बार मौत के मुँह में मामा ने पहुँचा दिया । पिछली तीन बार तो वह जल, जनाउर और जंगली सूअर से बच गया था... लेकिन प्रकृति के इस सबसे चतुर प्राणी-मानव से नही बच पाया ।''[१२७] अब पंचम को मारकर अकलंक बना दिया । मगर पंचम को एसी पढ़ाई नही पढ़नी जो उसे पंचम से अकलंक बना दे । पंचम मामा से कहना चाहता है कि ''मामा मैं अकलंक नहीं, पंचम हूँ। मैं अकलंक नहीं, पंचम ही बना रहना चाहता हूँ । मुझे पंचम ही बना रहने दो । नायक वंश में यदि एक कम पढ़ा-लिखा नागरिक रह जाएगा तो आकाश नहीं टूट पड़ेगा... अभी हमारी धरती इतना अन्न देती है कि मेरा पेट पल सके... मामा इतना अनर्थ न करो...''[१२८]

'उसके हिस्से का विश्वास' में कबीर कविता को एक बड़े से षड़यंत्र का शिकार बनाता है । और कविता के साथ प्रेम का नाटक करता है । दरअसल कबीर

को टी.बी. की बिमारी थी। टी.बी. का इलाज करवाने के लिए उसके पास पर्याप्त पैसे नही थे। इसलिए उसने सोचा कि अगर वह कविता को अपनी प्रेम-जाल में फाँस ले तो उसकी बिमारी के पैसे अपने आप आ जाएँगे। कविता के मौसा-मौसी शास्त्रीजी को कहते है कि ''यह विवाह इन्होंने जान बूझकर सब कुछ सोच समझकर किया है। इतना महँगा इलाज इनके बूते के बाहर था। फिर कोई गारंटी नही की इलाज के बाद ये किसी काम के लायक रहते। सो इन्होंने हमारी भोली-भाली बिटिया की भावनाओं को हवा दी और उसे बहलाकर उसका तो भविष्य चौपट कर दिया और अपना सँवार लिया। जानते है न कि हम खानदानी लोग अपनी बिटिया-दामाद को दु:खी कैसे देख सकते है ? और वह नादान समझती है कि ये साहब उसे प्यार करते है।''[१२९] कबीर दफ्तर में नौकरी नही करता फिर भी वह कविता और बाकी सब को यही बताता है कि उसकी नौकरी लग गई है और वह शास्त्रीजी का चीफ-सब है। यह रहस्य तो तब खुलता है जब शास्त्रीजी दफ्तर के संपादक को यह सूचना देने के लिए फोन करते है कि ''कबीर की तबीयत ठीक नहीं है और वह अगले कई दिन नहीं आ पाएगा।''[१३०] तब संपादकजी ने बताया कि कबीर तो यहाँ नौकरी नही करता। कविता ने कबीर को शादी से पहले पत्रकारिता का डिप्लोमा करने के लिए शहर भेजा था। मगर वह शहर जाकर पढ़ाई नही करता। उसके पास डिप्लोमा का कोई सर्टीफिकेट नही है। फिर भी वह अपने आप को बहुत पढा लिखा साबित करता है। इतना ही नही पर शास्त्रीजी जो उसकी मदद करते थे, उनके उपर कबीर चोरी का इल्जाम लगाता है।

और कहता है कि ''आपके घर में से हमारे दो हजार रुपए गुम हो गए है... वे रुपए कविता की एक सलवार के इजारबंदवाले हिस्से में रखे थे ।''[१३१] शास्त्रीजी ने उसे समझाया कि ''अव्वल तो रुपये तुम्हारे पास थे नहीं, अगर थे भी तो दो हजार रुपया किसी सलवार के इजारबंदवाले हिस्से में समा सकते हैं यह मैं नही मानता, और अगर ऐसा हुआ भी हो तो रुपये मेरे यहाँ नहीं खोए होंगे यह तय है । इसलिए तुम्हारा यहाँ आना व्यर्थ गया और अगर तुम्हे यह तोहमत लगानी ही थी तो कम-से-कम बहाना तो अच्छा-सा गढ़ते । अब तुम दफा हो जाओ और यह मनहूस शक्ल कभी मत दिखाना ।''[१३२] कबीर ने चोरी की बात अलग-अलग व्यक्तियों के सामने अलग-अलग रुप से रखी । और सब के साथ कपट करने का प्रयास किया । मगर जब कविता और शास्त्रीजी खुलकर बात करते है, तब वास्तविक रहस्य खुलता है । शास्त्रीजी कविता को बताते है कि चोरी की बात मुझे ही नही, कइयों को पता है । मगर सबकी जानकारी के अनुसार अलग-अलग । ''मेरी जानकारी के अनुसार वे मेरे घर में से तुम्हारे इजारबंदवाले हिस्से में रखे चले गए । हमारे संपादक की पत्नी के अनुसार धोबी के कपड़ो में चले गए । नरेश की जानकारी के अनुसार प्रयाग में ही भूल आये...''[१३३] और कविता कहती है कि, ''मेरी जानकारी के अनुसार वे रुपये आपने (शास्त्रीजीने) मेरे घर में आकर कबीर की आँखों के सामने चुराए थे ।''[१३४] कबीर कविता के विश्वास को तोड़ता है, तो कविता को बहुत ही दु:ख होता है । वह कहती है कि ''लेकिन, यह सब... इतना झूठ... इतना प्रपंच किसलिए रचा कबीर ने ?''[१३५]

वास्तव में कविता के साथ कबीर का विवाह किसी सुनियोजीत प्रपंच का ही एक हिस्सा था। कबीर का कविता के प्रति निश्छल-पवित्र प्रेम नही था, परंतु छल-कपट और षड़यंत्र के कीचड से भरा मलिन प्रेम था। जो खुद के स्वार्थ के लिए दूसरों की भावनाओं के साथ खिलवाड करता है। जब कि भोली-भाली कविता अब तक यही मान बैठी थी कि, कबीर उसे बहुत प्रेम करता है, और उसके लिए कुछ भी कर सकता है।

'सुरेखा-पर्व' में विनय की शादी विद्या के साथ होती है। मगर उस शादी में बहुत हद तक झूठ बोला गया। विद्या दिल्ली की रहनेवाली पढ़ी-लिखी और सुसंस्कृत लड़की है। वह हायर सेकंडरी तक पढ़ी है। साथ में दहेज भी बहुत लाई है। जब यह बात विनय के मित्र यती को पता चलती है, तो वह मन ही मन सोचता है कि, ''ऐसे कौन लोग हैं, जो इस 'गुदडी के लाल' की खोज में दीया लेकर इस सुंदर बीहड में आए होंगे।''[१३६] वास्तव में विनय न तो पढ़ा-लिखा है, न तो कुछ कमाता है। और समझदारी के नाम पर शून्य! यती जब विनय से पूछता है कि लड़कीवाले तुमसे शादी करवाने के लिए तैयार कैसे हुए ? तब विनय रहस्योदघाटन करते हुए लड़कीवालों के साथ किए हुए छल को प्रकट करता है कि ''मेरी पत्नी को यह मालूम नही है कि मैं कहाँ तक पढ़ा हूँ। उसे हमने इंटर पास बताया है। यही नहीं और भी बहुत-सी बातें उस नवागन्तुका को झूठी और बेबुनियाद बतलाई गई है।''[१३७] विद्या को जब वास्तविकता का पता चलता है, तो वह सोचती है कि मेरा भविष्य क्या

होगा ? इतना कम था कि शादी के कुछ महीनो के बाद विद्या की माँ का व्यवहार विद्या की प्रति बदलने लगता है । विद्या के माँ अपनी ही बेटी की खुशियाँ छिनना चाहती है । विद्या अपनी माँ के व्यवहार पर हैरान थी । विद्या की माँ ने लोक-लज्जावश विद्या को बचपन में ही त्याग दिया था । और बाद में अनाथाश्रम भिजवाकर बार-बार उससे मिला करती थी । और अपनी ही बेटी होने के बावजूद एक शुभचिंतक के नाते विद्या को गोद भी ले लिया । और उसकी शादी भी की । विद्या कहती है कि ''मम्मी अपने दामाद को खुश रखने के बहाने बीस साल से अतृप्त, सुप्त अपनी इच्छाओं को जगा रही है । वे अक्सर विनय के साथ सटकर खड़ी होती । उसे कुर्सी पर बिठाकर खुद इस पोज में आ खडी होती कि उनका शरीर विनय के कंधे सिर या माथे को छूता रहे । उनके पहनावे में, उनके मुस्कुराने में दिन-व-दिन परिवर्तन आने लगा ।''[१३८] माँ का एसा व्यवहार विद्या को बिलकूल पसंद नही आता । विद्या की माँ उसका हक छिनने पर उतारु है । क्या खुद की अतृप्ति को तृप्त करने का उसके पास कोई और रास्ता नही था ? जो अपनी ही बेटी की खुशियों को आग लगाने पर तुली हुई है !

३.१० समाज में असुरक्षा :-

समाज के लोग जब तक सुरक्षित नही होंगे, तब तक समाज का विकास नही होगा । अत: समाज में सुरक्षा अनिवार्य है । गाँव के भोले-भाले किसान और मजदूर महेनत-मजदूरी करके रुपया इकट्ठा करते है । और डाकू उन्हें धाक-धमकी बताकर

उनका कमाया हुआ धन बटोर कर ले जाते है । रुपये-पैसे तो ठीक मगर कभी-कभी तो डाकू उन्हें बिना वजह मार भी देते है । इसलिए गाँव के लोग तथा साहूकार डाकूओं के नाम मात्र से डरते है । बीरन के कक्का के यहाँ डाकू सिपाहियों का वेश धारण करके आ पहुँचे । खेतों से लौटते हुए किसान इतने सारे सिपाहियों को देखकर हैरान हो गए । और सोचने लगे कि हमारे गाँव में तो ऐसी कोई अनहोनी नही हुई है, फिर इतने सारे सिपाही यहाँ क्या करने आए है ? सभी किसान उन सिपाहियों से डर रहे थे । क्योंकि ''यह भी पुलिस के प्रताप का ही परिणाम था की गाँव के सभी लोग उनका रास्ता डर-डरकर पार कर रहे थे । लोगों का वश चलता तो वे शायद इस रास्ते से गुजरते ही नहीं, मगर उनकी लाचारी, खेत-खलिहान से लौटते हर आदमी को बीरन के घर के सामने से ही निकलना होता था ।''[१३९] बड़े कक्का ने आते ही उन सभी सिपाहियों को देखा । मगर उन में से एक भी चेहरा जाना-पहचाना नही लगा । जब उनसे आने का कारण पूछा तो वे कहने लगे कि ''इधर से गुजर रहे थे कि आपके गाँव के पास आते-आते हमारी जीप बिगड़ गयी । सोचा, आज की रात आपके यहाँ काट ले ।''[१४०] बड़े कक्का ने भी उनके लिए सारा इन्तजाम कर दिया । जब बड़े कक्का ने उन्हें आराम करने के लिए कहा तो अब सिपाही वेश-धारी डाकू अपने असली स्वरुप में आए । बीरन कहता है ''मैं भी अपनी जगह से उठ ही रहा था कि अचानक उनमें से एक ने मुझे गोदी मे उठाकर घर के भीतर फेंक दिया । दो ने कक्का को भी लग-भग गोद में उठाकर दरवाजे के भीतर किया और पलक झपकाते

सबने अपना-अपना मोर्चा सँभाल लिया। दो बँदूकधारी घर के बाहर खड़े हो गए, दो भीतर आँगन में आ डटे और लाठीवालों ने हमारे पूरे परिवार को बेआवाज पौर की दिशा में हाक लिया।''[१४१] बड़े कक्का, बड़ी काकी, हल्के कक्का, हल्की काकी, बुआ सभी की समझ में यह बात आ गई कि यह सिपाही नही, डाकू हैं। डाकूओं ने चारों तरफ से उन्हें घेर रखा था। ''बाहर पूरे गाँव में भगदड़् मची हुई थी। लोगों के भागने-दौड़ने की आवाजें और 'डाकू आ गए।' 'डाकू आ गए।' का शोर रह-रहकर कानों में पड़ रहा था। सब अपना-अपना घर छोड़कर भागे चले जा रहे थे पुराने हिंदू मंदिर की ओर। वही एकमात्र ऐसी इमारत थी जो पक्की बनी थी। दरवाजा इतना मजबूत कि तोप से नीचे दर्जे की चीज से टूटने वाला नहीं। दीवारें इतनी पुख्त और ऊँची की न तो उनमें सेंघ लगायी जा सकती थी, न पंद्रह हाथ ऊँची सीढी के बिना उन्हें फर्लांगा ही जा सकता था।''[१४२] सारे गाँव में सन्नाटा छा गया। डाकूओं के सरदार ने बड़े कक्का और हल्के कक्का को मार-मारकर पूछना शुरु किया कि जो कुछ भी तुम्हारे पास है, वह हमें दे दे। बता दे कहाँ क्या गड़ा है ? तब दोनों कक्का गिड़गिड़ाकर बताने लगे कि सरदार हमारे घर में क्या हो सकता है ? अभी दो साल पहले ही तो डाका पड़ा था। सरदार ने सोचा अब टेढ़ी ऊँगली से घी निकालना पड़ेगा। और रस्सी बाँधकर ऊँधा लटका दिया। फिर कभी छाती पर तो कभी पीठ पर लाठी मारकर और ''कभी उनके बाल तो कभी गर्दन पकड़कर जमीन की तरफ झुकाकर कहते, ''बता दे सेठ, कहाँ क्या गड़ा है ?''[१४३] और इधर दोनो काकियाँ

'बचाओं'-'बचाओं' कहकर चिल्लाने लगी । पर डाकूओं पर इसका कोई असर नही हुआ । तब बड़ी काकी ने डाकूओं से कहा कि ''इन्हें मत मारो मैं बताती हूँ कहा क्या रखा है ।''[१४४] सरदार ने इस बात को सुनकर तुरंत दोनों कक्का को नीचे उतारा और रस्सी खोल दी । काकी ने चूल्हे में हाथ डालकर जेवर निकालकर दिए । अधिक गहनों की खोज में डाकूओं ने पूरा घर छान मारा । और बड़ी काकी तथा बूआ के शरीर पर जो गहने थे, वो भी उतरवा लिए । फिर दोनों कक्काओं के पास जाकर और धन की माँग करने लगे । छोटी काकी तथा हल्के कक्का पर मिट्टी का तेल डालकर कहा कि बता दो वरना जिंदा जला देंगे । तब बड़े कक्का ''फौरन उसके पैरो पर लौट गए, ऐसा गजब न करना ठाकुर । बहू के पेट में एक जीव और पल रहा है । जान से प्यारा धन थोड़े ही है, अगर कुछ होता तो कब का आपके कदमों में धर दिया होता ।''[१४५] मगर सरदार पर इस बात का कोई असर नही हुआ । तभी बूआ ने जल्दी से उठकर लालटेन को दीवाल पर पटका जिससे पूरे कमरे में अंधेरा हो गया । ''डाकू ने टोर्च की रोशनी में बूआ को ढूँढकर उसे बालों से पकडकर अधर में उठाया और पूरी ताकत से जमीन पर दे पटका ।''[१४६] और वहीं बूआ की मृत्यु हो गई । इस घटना के बाद गाँव के लोग डाकूओं से भयभीत होने लगे । गाँव में जो लोग साहूकारी का धंधा करते है, उन्होंने एक उपाय सोचा, कि अगर हम बड़े डाकू से संरक्षण माँगेंगे तो छोटे डाकूओं का उपद्रव अपने आप खतम हो जाएगा । तब शंकरसिंह नामक बड़े डाकू से सौदा तय हुआ । सौदे में तीस हजार रुपए सालाना और जब भी कभी आवश्यकता

पड़े तब राशन पहूँचाने का वायदा किया गया । फिर कभी गाँव में डाका नही पड़ा । यह व्यवस्था तीन-चार साल तक बखूबी चली । मगर ''कौन-सी अशुभ घड़ी में शंकरसिंह के मन में अपने पापों के प्रायश्चित की भावना बलवती हो आयी और उसने बाबू जयप्रकाश नारायण के बहकावें में आकर आत्म-समर्पण करने का निश्चय कर लिया ।''[१४७] तब गाँव के हर साहूकार सोचने लगे कि अब हमारा क्या होगा ? अब तो आए दिन डाका पड़ेगा और बहुत सारी जाने भी जाएगी । साथ में दु:ख की बात तो यह भी है कि जब शंकरसिंह ने आत्म-समर्पण की बात लोगों के सामने रखी, तब पुलिस-तंत्र को डर लगा कि अब हमारा सारा रहस्य शंकरसिंह खोलकर रख देगा । ''जितना खर्च राज्य सरकार को अपने तमाम कर्मचारियों पर होता था, उससे कई गुना अधिक रकम इन महकमों को डाकू-गिरोहों की ओर से नजर की जाती थी । भला पुलिसवाले अपनी आमदमी में इतनी जबर्दस्त कमी कैसे सहन कर पाते ? उन्होंने कई डाकू- गिरोहों को समर्पण न करने के लिए राजी कर लिया ।''[१४८]

गाँव के लोग डाकूओं से डरकर पुलिस के पास संरक्षण माँगने जाते है, मगर जब खुद पुलिस-तंत्र से ही समाज और गाँव सुरक्षित नही है, तो अब प्रजा किसके पास जाकर अपनी सुरक्षा की माँग करे ? समाज की सुरक्षा का भार जिसने सँभाला है, वही आज भक्षक बनकर समाज को विनाश की खाई की तरफ ले जा रहा है । पुलिस-तंत्र आज इतना भ्रष्ट हो चुका है, कि वह लोगों की रक्षा करने के बजाय उन्हें परेशान करता है, और उन्हें षड़यंत्र में फँसाकर उनके जीवन को बर्बाद कर देता है।

पुलिसवालों ने शंकरसिंह को बहुत समझाया कि वह आत्मसमर्पण न करे । ''पहले तो पुलिसवाले केवल अपनी आमदनी में होने वाली कमी की वजह से यह नहीं चाहते थे, कि वह आत्मसमर्पण करे मगर बाद में जब उन्हें यह रहस्य मालूम हुआ कि शंकरसिंह डाकूओं के साथ पुलिस की मिलीभगत की कलई भी खोलेगा, तब तो उन्होने साम-दाम-दंड़-भेद-सभी तरीके आजमाए, ताकि उसका इरादा बदला जा सके ।''[१४९] मगर पुलिस द्वारा मृत्युदंड बताने पर भी शंकरसिंह ने अपना इरादा न बदला, सो न ही बदला । तब पुलिसवालों ने उसे परेशान करना शुरु किया । एक दिन पुलिसवालों ने शंकरसिंह के पूरे परिवार को तथा गाँववालों को बड़ी बेरहमी से पीटा, ताकि वह अपना इरादा बदले । जब यह बात शंकरसिंह को पता चली, तो उसने बीच रास्ते पर जीप में से पुलिस के आठ अफसरों को उतारा, उन्हें मारा और उनके हथियार तथा वर्दिया छीनकर बीच रास्ते पर मुर्गा बना दिया । ''इस कार्रवाई के बाद जीप के ड्राइवर को जिला मुख्यालय भेजा गया, इस खबर के साथ कि अगर चौबीस घंटे के अंदर-अंदर प्रधानमंत्री और प्रदेश के मुख्यमंत्री पुलिस की इस शर्मनाक करतूत के लिए क्षमा माँगने यहाँ न पहुँचे तो ठीक चौबीस घंटे और पाँच मिनट बाद ये आठ लाशें ढुलवाने के लिए सरकारी ट्रक जरुर भेज दिया जाए ।''[१५०] तब मुख्यमंत्री ने पुलिस की इस करतूत के लिए शंकरसिंह तथा समग्र गाँववालों से लिखित रुप में क्षमा माँगी। तथा गाँव की सुरक्षा का विश्वास दिलाकर जिम्मेदारी उठाई ।

डाकू सिपाही का वेश धारण करके लोगों को लूटने का काम करते है यह बात

तो ठीक है, पर आज-कल तो सिपाही (पुलिस) डाकू का वेश धारण करके गाँव और समाज को लूटने का काम करते है, यह हमारे समाज की सबसे बड़ी ट्रेजेडी है । जब रक्षक ही भक्षक बन जाए, तो समाज में सुरक्षा की अपेक्षा आखिर किससे रखी जाए ! एक दिन मलखान, बड़े कक्का, दादा और हल्के कक्का अपनी बाखर में बैठे थे । कि अचानक किसी ने बाखर का दरवाजा खटखटाया । जब हल्के कक्का ने दरवाजे के छेद में से देखा तो बाहर कुल छः डाकू खड़े थे । वास्तव में डाकू के वेश में पुलिस थी। पुलिस इन लोगों को लूटना चाहती थी । बड़े कक्का तो डाकूओं का नाम सुनकर ही बेहोश हो गए । मगर मलखान, हल्के कक्का तथा दादा ने हिंमत रखकर मोर्चाबंदी संभाली । और बाखर के दरवाजे के पीछे अधिक से अधिक सामान रख दिया । ताकि दरवाजा आसानी से न खुले। इधर डाकू दरवाजा पीटे जा रहे थे । मलखान और हल्के कक्का छत के ऊपर चढ गए । ताकि कोई ऊपर न चढ़ पाए । दादा परिवार वालों को लेकर दूसरे रास्ते से चले गए । मलखान और हल्के कक्का ने उन डाकूओं का डटकर मुकाबला किया । जिसमें एक डाकू बहुत बुरी गिरफ्त में आ गया । डाकू धिधियाया कि, ''सेठ, मैं कहता हूँ मुझे छोड़ दो वरना अंजाम बुरा होगा । मैं सिपाही हूँ, सिपाही, आग लगवा दूँगा पूरे गाँव में ।''[१५१] डाकू के मुँह से एसी धमकी सुनकर हल्के कक्का ने उस पर गोली चला दी, और वह मर गया । इधर दूसरे डाकूओं ने बहोश बड़े कक्का को मार दिया । मरे हुए डाकू को देखकर दादा शिघ्र ही उसे पहचान गए । ''उसका चेहरा पहचानते ही दादा का अपना चेहरा पीला पड़ गया । हाँ, सचमुच

वह पुलिस का सिपाही ही था और वह भी पास ही के थाने का। इधर इस बीच सिपाही भी कुछ डाकूओं या भड़या (उठाईगीरे) किस्म के लोगों की मदद से डाका डालने का पार्ट टाइम काम करने लगे थे।... अब... पुलिस तो वह कहर ढाएगी जो कभी किसी डाकू या आततायी ने नहीं ढाया होगा।''[१५२] तब सप्ताह बाद कुछ पुलिसकर्मी आए और मलखान को पकड़कर ले गए। वे उससे यह ऊगलवाना चाहते थे, कि वह मरा हुआ डाकू वेशधारी पुलिसकर्मी कहाँ गया ? और कक्का के परिवार के बाकी लोग कहाँ गए ? पर मलखान ने उन्हें कुछ नही बताया। तब थक- हारकर पुलिस ने मलखान को इतना मारा कि वह दो पैरों के बजाय अपने बेटों के कंधो पर लदकर घर वापस आया।

३.११ अनाथ बच्चों की दुर्दशा :-

पंचम उर्फ अकलंक जब अनाथाश्रम में भर्ती होकर आया, तब उत्तम उसे अनाथाश्रम की सारी महत्वपूर्ण बातें बताता है। जिस दिन अकलंक अनाथाश्रम में आया, उस दिन दोनों वक्त अकलंक को अच्छा सा भोजन नशीब हुआ। तब उत्तम अकलंक को हिदायत देते हुए कहता है कि, ''तू सोचता होगा, यहाँ तो मजे हैं। रोज तर माल खाने को मिलता है। है न।''[१५३] वास्तव में ऐसा नहीं है। जब किसी की पुण्यतिथि, जन्मतिथि, किसी की तेरहवीं या फिर दान-पुण्य करना हो तभी अच्छा भोजन मिलता है। वरना ''ज्यादातर दिन तो आश्रम में बचे सूखे टिक्कड, पानीवाली दाल, मिर्चो भरी सब्जी खाकर गुजारा करना पड़ता है। वह भी गिनी चुनी।''[१५४]

अनाथ बच्चों को हर रोज भर-पेट सूखा खाना भी नहीं मिलता। जब तक छुट्टियों के दिन हैं, तब तक ही अनाथाश्रम के बच्चे खेल-कूद सकते है। जैसे ही छुट्टियाँ खतम वैसे ही खेलने-कूदने पर अंकुश लग जाता है। और तब स्कूल, विद्यालय से तथा अनाथाश्रम के कामों से फुरसत ही नही मिलती। सुबह से लेकर शाम तक के सारे काम घंटी बजने के अनुसार होते है। और घंटी बजने के तुरंत बाद खाना खाने या अन्य कामों के लिए जो नही पहुँचता उन्हें न तो खाना मिलता है, और न अन्य कामों मे शामिल किया जाता है। नास्ते की घंटी बजने पर भी जब अकलंक नहीं आया, तब उत्तम ने बताया, कि ''दोपहर के नाश्ते की घंटी तुझे सुनाई नहीं दी न। ऐसे नही सोते। अभी तो तू नया है सो मोनीटर ने तेरा हिस्सा मुझे दे दिया। आइंदा घंटी बजते ही उठने और जिस चीज की घंटी बजी है, वहाँ पहुँचने का ध्यान रखना। घंटी बजने के तुरंत बाद जो नहीं आता उसे चीज तो नही मिलती, सजा जरुर मिलती है। समझा।''[१५५] अनाथाश्रम के कुछ लड़के और अधीक्षक की मिली भगत है। ऐसे लड़के सीधे-सादे लड़कों को परेशान करते है। तथा उनसे अपने स्कूल का तथा अन्य काम करवाते है। और जो लड़के उनका बताया काम नहीं करते है, उन्हें न तो ठीक से खाना दिया जाता है, और न ही अन्य लाभ दिए जाते है। सुरेश अकलंक को राजेन्द्र का परिचय देते हुए कहता है कि ''तुझे इनका स्कूल का काम भी करना होगा। बदले में हम तुझे ज्यादा नाश्ता देंगे। भरपेट खाना देंगे। तुझे दावत में खूब भेजेंगे और तेरे से दावत में मिला ईनाम भी नहीं लेंगे। बोल करेगा न ?''[१५६] तब डर

के मारे अकलंक 'हाँ' में हामी भर देता है ।

अनाथाश्रम में तेल बाँटने का काम राजेन्द्र के हिस्से में है । सारे बच्चे बालों में तेल लगाने के लिए पंक्ति करके खड़े थे । अकलंक भी उसी पंक्ति में आकर खड़ा रह गया । तेल से भरी कटोरी के पास एक-एक करके लड़के आने लगे । जब अकलंक की बारी आई तो उसने कटोरी में ''एक हाथ की पाँचो ऊँगलियाँ डाली । ऊँगलियों के अच्छी तरह तेल में डूब जाने पर दूसरी हथेली कटोरी के पास पहुँचाई ताकि तेल जमीन पर न गिरे ।... अभी उसका हाथ तेल की कटोरी से बाहर आ भी न पाया था कि राजेन्द्र ने उसका हाथ थाम लिया । अकलंक के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। वह अपने गाल तक हाथ ले जाता कि तब तक दूसरे गाल पर एक और तमाचा आ पड़ा ।''[१५७] राजेन्द्र ने अकलंक का हाथ झटका और सारा तेल पंक्ति में खड़े बच्चों के कपड़े पर जा लगा । उसने अकलंक का हाथ पीठ के पीछे ले जाकर, जोरों से उमठा। फिर अन्य बच्चों को तेल लेने का आदेश दिया । तब डरे सहमे हुए से बच्चे तेल की कटोरी में तेल लेने के लिए नाम मात्र की एक ऊँगली डालते और जैसे की बहुत सारा तेल हाथ में आ गया हो ऐसा अभिनय करते और इतना सा तेल वे हाथ, मुँह, पाँव और बालों पर लगा देते । तब राजेन्द्र ने अकलंक से कहा, कि तेल इस तरह लिया जाता है । वैसे अकलंक बहुत दिनों से देख तो रहा था कि बच्चे नाम मात्र का तेल लेते है । पर उसे लगा था कि, शायद उन्हें ज्यादा तेल लेने से चिढ़ होगी, इसलिए ऐसा करते होंगे । जब अधीक्षक वहाँ आए और पूछा तो राजेन्द्र ने गलत

बताया कि अकलंक तेल की कटोरी गिरा रहा है । तब ''अधीक्षक ने अकलंक की पसली में घूँसा मारते हुए कहा... क्यों बे ।''[१५८] तब शर्म और संकोच का एहसास करते हुए अकलंक रुँआसा-सा होकर अपने कमरे में आया । अकलंक ने राजेन्द्र का बताया काम नहीं किया था, सो राजेन्द्र ने मौका पाकर अकलंक से बदला लिया ।

अधीक्षक कभी-कभी बच्चों को बेवजह कोई-न-कोई बहाना बनाकर झिडक देता है, और मारता है । खाना खाते वक्त बच्चों की स्थिति बहुत ही दयनीय होती है। जानवरों को भी इससे अच्छी तरह खाना मिलता होगा । परवश बच्चें किसी को कह भी नहीं पाते और सह भी नही पाते । इसलिए खाने के समय बच्चे अपना पूरा ध्यान उसी पर लगाते है । जल्दी-जल्दी खाना खाना ही उनका मुख्य्य उदेश्य रहता है । क्योंकि ''जाने कब एलान हो जाए- रोटियाँ खत्म! दाल खत्म ! सब्जी खत्म ! भले ही सब के सब भूखे हों, दोबारा कुछ नहीं बनने का । भूखे के भूखे भी रहेंगे और अधीक्षक से सुनने को मिलेगा- पेटू कहीं के ।... इसलिए झटपट खाओ । थाली में रोटी के आते ही निगल लो । दाल, सब्जी कटोरी में बची हो, तभी हाथ खड़ा कर दो । ताकि परोसने वालों का ध्यान चला जाए । वे फिर परोस दे । खाना परोसने का काम करनेवाले लड़कों से कभी भूल कर भी लड़ो नही । उन्हें नाराज मत करो । वरना उन्हे उठा हाथ दिखना बंद हो जाएगा । सब चीजें होते हुए भी पा नहीं पाओगे। भोजनालय में मुँह का काम खाना है, बोलना नही । बोल की थाली हाथ में थमा बाहर कर दिए गए...''[१५९] अधीक्षक बेवजह अकलंक को झिडक ने लगते है । खाना ढंग से

खाओ, आवाज क्यों आ रही है। जैसे बहाने बनाकर अकलंक के उपर गुस्सा करते है। आज अधीक्षक का हाथ अकलंक को मारने के लिए तैयार ही था, पर उसे पीटा नहीं।

आश्रम के लड़कों को शारीरिक शोषण का भोग भी बनना पड़ता है। पंड़ितजी अकलंक को अपने साथ अपने कमरे में लेकर आए। कमरे में पहुँचकर पंड़ितजी ने धोती, कुर्ता, बनियान उतारी। सिर्फ चड्डी पहने हुए थे। और फिर बिस्तर पर लेटकर अकलंक से पैर दबाने को कहा। पैर दबाते वक्त अकलंक भी उसी मुद्रा में वहीं कब सो गया, इसका उसे पता न चला। तभी ''अपने ऊपर कोई भारी वजन रखा महसूस होते ही अकलंक की आँख खुल गई। अपने ऊपर लेटे आदमी को बगल में पलटा और ताबड़ तोब कई धूँसे जड दिए। उसमें कोई हरकत न होते देख अकलंक डर गया। उठा। बत्ती जलाई। कमरे में रोशनी होते ही अकलंक की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। कमरे में उसके और पंड़ितजी के अलावा कोई नहीं था। पंडितजी बेसुध से चित्त लेटे खराँटे लें रहे थे।''[१६०] अचानक अकलंक के मुँह से जोरों की चीख निकल गई। आश्रम के कई लड़के एक साथ इकट्ठे हो गए। तब जब अकलंक से पूछा गया कि क्या हुआ ? तब अकलंक से शर्म के मारे न कहते बना, न सहते बना। सब लड़के समझ गए कि अकलंक के साथ क्या हुआ होगा! ''क्यों अकलंक पंडितजी ने तेरे साथ कुछ ऐसा वैसा किया क्या ?''[१६१] ऐसा कहते हुए रमेश ने अकलंक की चड्डी आगे और पीछे से देख ली। और सब लड़कों को बताया कि

अकलंक बच गया है । आश्रम के लड़के अकलंक को बताने लगे कि ''आश्रम में आए प्राय: हर लड़को को कभी-न-कभी किसी का गिलमा बनना पड़ता है । लड़के ग्लानि, भय, असुरक्षा के चलते न कह पाते है, न विरोध कर पाते है ।''[१६२] अनाथाश्रम में बच्चों का विकास होता है, उन्हें शिस्त और अच्छे संस्कार दिए जाते हैं । ताकि समाज में एक सुशिक्षित नागरिक के रुप में अपना योगदान दे पाए । इसके स्थान पर अगर बच्चों का शारीरिक व मानसिक शोषण किया जाएगा, उन्हें अनैतिकता, भ्रष्टाचार और अप्रमाणिकता के पाठ पढ़ाए जाएँगे, तो बच्चे महान नहीं बनेंगे, पर चोर, उचक्के अवश्य बन जाएँगे । एसे अनाथाश्रम हमारे समाज की सबसे बड़ी ट्रेजेडी है । अकलंक ने जो व्यवहार किया उसको केन्द्र में रखते हुए पंडितजी अकलंक से बदला लेने पर उतारु हो जाते है । एक दिन अकलंक रंगमंच के ऊपर किसी नाटक का अभिनय कर रहा होता है, तभी पंड़ितजी ने तलवार की मूठ अकलंक के पेंट की तरफ बाँधी । ''लोहे की तलवार की पतली, पैनी मूठ अकलंक का पेट छीलती चली गई ! खून की धार बह चली ।''[१६३] और अकलंक धडाम से मंच पर जा गिरा ।

अनाथाश्रम में जो छोटे लड़के है, उनके सामने कोई समस्याएँ नहीं है । पर जो लड़के बड़े है, और उनमें से भी पाँच से आठ कक्षा तक के जो लड़के है उनके सामने सबसे अधिक दिक्कते है । इनसे बड़े लड़के इन्हें बहुत ही परेशान करते है । ''वे नहीं रहे होते, कि कोई बड़ा लड़का आ पहुँचता । इन्हें नल के नीचे से हटाकर खुद नहाने लगता । उनके नहा चुकने के बाद भी पहले से नहा रहे लड़के को नहाने का अवसर

नही मिलता । वे उसे अपनी चड्डी-बनियान थमाकर आदेश देते- धो इसे ।... जब तक किसी एक का चड्डी-बनियान धोकर उससे मुक्ति मिलती, कोई दूसरा आ धमकता । सो नहाने के लिए मिला सारा समय बड़े लड़कों की तिमारदारी में खर्च ।''[१६४] तब जल्दी-जल्दी हाथ, मुँह धोकर कपड़े बदलकर तेल की पंक्ति में खड़ा हो जाना पड़ता है । तो कभी-कभी टट्टी करते वक्त अगर कोई बड़ा लड़का आ जाए, तो वह छोटे लड़के को डपटकर बाहर निकालता है । और कहता है, ''चल बे, जल्दी उठ । सारा आज ही हगेगा क्या । साला, खाने को मिलता नहीं, जाने कहाँ से इतना गू बना लेते है ।''[१६५] और तब जितना कर चुके इतना बस ! फिर पूरा दिन जाने का मौका नहीं मिलता । ''यदि खाने का समय पेट खाली करने में गँवा दिया तो शाम तक खाली पेट कैसे निभेगा ? सो अपने हमउम्र से दोस्ती करो, ताकि वह तुम्हारे लिए भोजनालय से दो-चार रोटियाँ छुपाकर ले आए । मौका मिलते ही उन रुखी-सुखी रोटियों को निगलो । छूप-छूपाकर ।''[१६६] अगर कोई देख ले तो दोनों को सजा फटकारी जाती है । आश्रम में यदि किसी बड़े लड़के को खेलने जाना है, तो वह अपने से छोटे लड़कों से अपना काम तथा स्कूल का काम पूरा करवाते है । कभी-कभी तो बड़े लड़के अपने से छोटे लड़कों के कपड़े भी धुलवाते है । साबुन की एक ही टिक्की हर एक को महीने में एक ही बार मिलती है। और उसमें भी छोटे लड़के बड़ो के कपड़े तो धोए, और वह भी अपने साबुन से । कभी अनाथाश्रम के लड़के दूसरे लड़को का नेकर, कुर्ता तो कभी पाजमा पहन लेता है । तब जिस लड़के के कुर्ता-पाजामा पहने

गए है, उसे गंदे कपड़े पहनने पड़ते है । और प्राचार्य के डंडे भी खाने पड़ते है । ''कपड़ा जैसे गायब हुआ था, उसी तरह तख्त पर, बिस्तर के नीचे, किताबों के पीछे या आलमारी के पीछे इस हालात में मिले की अपनी भर्ती संख्या के अलावा कुछ पहचान में ही न आए ।''[१६७]

अकलंक और दीदी ने पूरी रात जागकर झाँकी सजाई । तब ईर्ष्या वश खेमचन्द्र ने अकलंक को मारा । झाँकी पूर्ण होने के बाद अकलंक नल के पास मिट्टी से सने हाथ धोने आया, कि ''यकायक खेमचन्द्र ने पीछे से उसके नितंबों कर लात मारी । अकलंक फिसलता हुआ सीधा सामने की दीवार से जा टकराया । वहाँ मौजूद एक और नल से सिर टकराते ही सिर फट गया । देखते-ही-देखते गुसलखाने में पानी से कहीं ज्यादा खून बिखरा नजर आने लगा ।... बेइंतहा लातों, धूँसो से अकलंक को तब-तक रौदता रहा, जब तक वह बेहोश नहीं हो गया... ।''[१६८] अकलंक को अस्पताल ले जाया गया । रेणुका दी ने खेमचंद्र को बहुत डाँट लगाई और अकलंक से क्षमा माँगने को भी कहा ।

३.१२ अनाथाश्रम में भ्रष्टाचार

समाज में स्थान-स्थान पर अनीति, भ्रष्टाचार व अप्रमाणिकता का राक्षस अपना मुँह खोले बैठा है । जो समाज को स्वाहाँ करने पर तुला हुआ है । आज-कल चाहे गाँव हो या बड़ा शहर उसमें एक भी जगह ऐसी नही है, जो भ्रष्ट न हो चुकी हो। तो ऐसी स्थिति में अनाथाश्रम कैसे बाकी बच सकता है ? पंचम उर्फ अकलंक जिस

अनाथाश्रम में रहता है, उस अनाथाश्रम का अधीक्षक आश्रम के ही कुछ लड़कों को अपने हाथ का हथकंडा बनाते हुए भ्रष्टाचार करते है ।

आश्रम के लड़कों को सेठजी ने अपनी हवेली में भोजन करने के लिए बुलाया। भोजन के बाद लौटते समय सेठ ने सबको एक-एक रुपया दान में दिया । आश्रम में आते ही अधीक्षक ने सब लड़कों से रुपए ले लिए । और लड़के का मुँह देखते ही रह गए । अधीक्षक के इशारों पर चलनेवाला सुरेश अकलंक को जूते दिलाने के लिए बाजार ले गया । ''एक जोड़ी काले जूते दिलाए । एक पॉलिस की डिब्बी । जूतों और पॉलिस की डब्बी का जो भुगतान किया उससे कहीं ज्यादा का पर्चा बनवाया और 'किसी से कहना नहीं" की हिदायत के साथ आश्रम में लौटा लाया ।''[१६९]

उत्तम अकलंक को बताता है कि विद्यालय में आश्रम के लड़कों के नाम दो रजिस्टर में अलग-अलग लिखे जाते हैं । विद्यालय में धर्म और संस्कृत की शिक्षा इसलिए दी जाती है, ताकि अलग-अलग संस्थाओं से रुपया एँठ पाए । ''विद्यालय के लिए सरकार से रुपया मिलता है, धर्म की शिक्षा देने के लिए बंबई की एक संस्था से। कभी कोई आकर दोनों की हाजिरी देखे और कहे कि एक ही विद्यार्थी के लिए दो जगह से सहायता क्यों लेते हो ? तब ? इसलिए दो रजिस्टरों में दो नाम लिखतें है। छः बजे से सात बजे तक धर्म शिक्षा का समय । सवा सात बजे से सवा नौ बजे तक संस्कृत का ।... अब जिसका मन हो, आ जाए ।''[१७०] उत्तम के भी दो नाम रखे गए है । उत्तमचंद्र और सर्वोत्तम कुमार । जब अकलंक भी इस विद्यालय में भर्ती होता है,

तो उसे भी एक नया नाम दिया जाता है- आनन्दवर्ध्दन । और उसे हिदायत दी जाती है कि जब संस्कृत की शिक्षा लेने जाओ तो इसी नाम से अपनी उपस्थिति दर्ज कराना। इतना ही नही, अधीक्षक बच्चों के बालों में लगाने का तेल हर रोज का मंगवाते है एक किलो । उसमें से बच्चों तक पहुँचता है दो सौ ग्राम तेल । और बच्चों को कहा भी जाता है, कि कटोरी में से तेल लेने के लिए ऊँगली तो नाम मात्र की ही डालनी है । अधीक तेल लेना नही है । बाकी बचा हुआ आठ सौ ग्राम तेल अधीक्षक डकार जाता है । ऐसी स्थिति में लड़के सब देखकर भी किसी से कुछ कह नही पाते।

मंड़ली में जाने वाले लड़कों को अधीक्षक कई जोड़ी नये कपड़े देते है । जैसे ही उत्तम और अकलंक को नये कपड़े मिलते है, वैसे ही शिघ्र जाकर उत्तम ने अपने और अकलंक के कपड़े पानी में डाल कर धो लिए । निचोड़े और बरामदे में सूखा भी दिए । जब राजेन्द्र और सुरेश उत्तम और अकलंक से कपड़े छीनने के लिए आते है तो उससे छीन नही पाते । क्योंकि कपड़े तो धो डाले थे । अब छीनकर क्या करते ? तब राजेन्द्र और सुरेश को खाली हाथ वापस लौटना पड़ा । ''दरअसल, अधीक्षक जिस दुकान से कपड़े लाया है, वहाँ कहकर आया है कि जो कपड़े छोटे बड़े रह जाएँगे, वे वापस कर दिए जाएँगे । अब सबके सामने तो दे दिए । बाद में छीनकर पुराने, धुले कपड़े पकड़ा दिए जाएँगे । इस तरह जितने कपड़े इकट्ठे हो जाएँगे, सब वापस कर दिए जाएँगे । बिल पूरे कपड़ो का बन ही चुका है । लौटी हुई रकम अधीक्षक रख लेगा । कुछ रुपए लंगड को, सुरेश को थमा देंगा...''[१७१] अधीक्षक इन

लड़को के माध्यम से आश्रम की सारी बातों की हेरा-फेरी करता है । कल से अगर कोई बात सामने आई, या रहस्योदघाटन हुआ तो अधीक्षक सारा दोष इन पर डाल देगा । और खुद साफ-साफ बच जाएगा ।

अकलंक के मामा ने अकलंक को देने के लिए अधीक्षक को डेढ़ सौ रुपए दिए थे । मगर अधीक्षक ने अकलंक को देने के बजाय खुद रख लिए । और अकलंक को बताया तक नहीं कि उसके मामा ने उसके लिए डेढ़ सो रुपए उसे दिए है । जब अकलंक को यह बात उत्तम के माध्यम से पता चलती है, तो वह अधीक्षक से पैसे माँगने की सोचता है । तब उत्तम उसे समझाता है कि अगर तू अधीक्षक से पैसे माँगेगा, तो वह तुझे पीट देगा । इससे बेहतर है, कि उन रुपयों को तू भूल ही जा । अनाथाश्रम में जो लड़के खाना परोसने का काम करते है, वे ही रसोईघर में बनी तमाम रोटीयों पर घी चुपड़ते है । घी ऐसे चुपड़ा जाता है, जैसे की मुहर लगाई गई हो । ''डाकखाने में जिस गति से चिट्ठयों पर मुहर लगाई जाती है, लगभग उसी गति से यहाँ रोटियों पर घी चुपड़ा जाता है । एक साथ रोटियों का बड़ा-सा ढेर सामने रखकर एक छोटी-सी कटोरी में घी रख लिया जाता है । फिर डाकिए से भी कहीं तेज रफ्तार से रोटियों पर घी में डूबी हथेली से चपकी दी जाती है, और दूसरे हाथ से घी की मुहर लगी रोटियों को एक टोकरी में फेंक दिया जाता है ।''[१७२] इस प्रकार थोडे से घी में सब रोटियाँ चुपड़ ली जाती है । शेष बचे घी को रसोई वाले तथा परोसने आए लड़के खा जाते है । ''रोजाना जो घी काम में आने के लिए भंडार से

निकाला जाता है उसका आधा हिस्सा अधिक्षक और प्रचारक पंडितजी के पास पहुँचता है नियम से, सो इस मामले की शिकाय कही संभव नहीं।''[१७३] छात्रावास के लड़के भी इस अनीति को जानते है, पर विरोध नहीं करते। क्योंकि अधीक्षक स्वयं जब भ्रष्ट हो चुका हो, तो अब किसके पाक जाकर न्याय की माँग की जाए। अंत में जब प्रधानमंत्री को यह बात मालूम पड़ती है, तो वे सुरेश और राजेन्द्र के साथ अधीक्षक को भी आश्रम से निकाल देते है।

o निष्कर्ष :-

स्वतंत्रता के बाद लोग इस आशा में बैठे थे कि अब नई-नई योजनाओं के तहत हमारा विकास होगा, पर हुआ इससे बिलकुल विपरीत। समाज में नई-नई योजनाएँ सरकार द्वारा अस्तित्व में तो आई, मगर वह आम जनता तक न पहुँची। अगर पहुँची भी तो लाँच-रिश्वत और भ्रष्टाचार के रुप में। पुलिस-तंत्र के द्वारा समाज को सुरक्षा मिलने के बजाय असुरक्षा मिलने लगी गाँवो में कृषकों और मजदूरों का शोषण, स्वार्थ, छल-कपट, अनीति एवं अप्रमाणीकता, साहूकारों का उपद्रव, प्रेम एवं यौनवृति, बलात्कार, नारी का शोषण, दहेज-प्रथा एवं विवाह-प्रथा का जोर कम होने के बजाय बढ़ता ही चला गया। और इन सभी का देखा और भोगा यथार्थ वीरेन्द्र जैन ने अपने उपन्यासों में रेखांकित किया है। आधुनिक समाज में पढ़ी-लिखी नारी का भी शारीरिक व मानसिक शोषण किया जाता है। उन्हें प्रेरणादात्री नहीं, पर उपभोग की ही वस्तु माना जाता है। समाज में आदर्श और महान मान जाने वाले लोग अनाथ

बच्चों को भी नहीं छोडते । अनाथाश्रम में अनाथ बच्चों की स्थिति जानवरों से भी बदतर होती है । समाज की हर एक समस्याओं का यथार्थ के धरातल पर आलेखन करने में वीरेन्द्र जैन सफल रहे है । और हर समस्या का समाधान पाठक को उसी उपन्यास में से मिल जाता है । लेखक ने अपने कुछ एक उपन्यासों में ऐसे पात्र रखे है, जो इन सारी बातों को मात्र मूक बने देखते ही नही, वरन् उनका विरोध भी करते है । मगर दु:ख की बात यह है, कि ऐसे सच्चे और ठोस पात्र जो विद्रोह और क्रांति की मशाल लिए चलते है, उनका साथ समाज के लोग नही देते....

संदर्भ संकेत

१. पार, वीरेन्द्र जैन- पृ.६६

२. वही, पृ.६४

३. वही, पृ.६४

४. वही, पृ.६५

५. वही, पृ.६५

६. सबसे बड़ा सिपहिया- वीरेन्द्र जैन- पृ.२४

७. वही, पृ.२४,२५

८. वही, पृ.२७

९. वही, पृ.२७

१०. प्रतिदान, वी.जै. पृ.९०

११. वही, पृ.१०४

१२. उसके हिस्से का विश्वास- वी.जै., पृ.११३

१३. वही, पृ.११४

१४. सुरेखा पर्व, वी.जै. पृ.१२

१५. वही, पृ.१४

१६. वही, पृ.१३

१७. सु.प., पृ.२९

१८. वही, पृ.२८

१९. वही, पृ.४५

२०. वही, पृ.५८

२१. वही, पृ.५८

२२. हितोपदेश- १८६४, पृ.५८

२३. डूब, वी.जै. पृ.८२

२४. वही, पृ.१२६

२५. वही, पृ.१२८

२६. वीरेन्द्र जैन का साहित्य- सं. मनोहरलाल, पृ.१३३

२७. पार, पृ.११

२८. वही, पृ.४६

२९. वही, पृ.४६, ४७

३०. डूब, वी.जै., पृ.८४

३१. प्रतिदान- वी.जै. पृ.७६

३२. वही, पृ.७६

३३. वही, पृ.७७

३४. प्रतिदान, वी.जै., पृ.७७

३५. वही, पृ.८४,८५

३६. डूब, वी.जै., पृ.६७

३७. वही, पृ.६७,६८

३८. वही, पृ.६६

३९. वही, पृ.६७

४०. वही, पृ.६८

४१. वही, पृ.६९

४२. वही, पृ.६९

४३. वही, पृ.७०

४४. वही, पृ.७१

४५. वही, पृ.७१

४६. वही, पृ.२०

४७. वही, पृ.२०

४८. तलाश, वी.जै. पृ.९०

४९. वही, पृ.९०

५०. पंचनामा वी.जै. पृ.१४

५१. वही, पृ.२२

५२. वही, पृ.२३

५३. डूब, वी.जै., पृ.१९५

५४. पार, वी.जै, पृ.९३

५५. वी.जै. का सा.- सं. मनोहरलाल, पृ.१२१

५६. डूब, वी.जै., पृ.१८३

५७. वही, पृ.१८७

५८. वही, पृ.१८७

५९. वही, पृ.१०८

६०. वही, पृ.१०९

६१. वही, पृ.१०९

६२. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में कृषक-जीवन, डॉ. उत्तमभाई पटेल, पृ.६४

६३. डूब, पृ.२३१

६४. वही, पृ.१०८

६५. वही, पृ.२७९

६६. वही, पृ.२७९

६७. पार, वी.जै., पृ.९३

६८. वही, पृ.३०

६९. वही, पृ.३१

७०. वी.जै. का सा., सं. मनोहरलाल, पृ.१२७

७१. प्रतिदान, वीरेन्द्र जैन, पृ.२६

७२. सुरेखा-पर्व, वी.जै. पृ.२७

७३. वही, पृ.२७

७४. वही, पृ.२८

७५. वही, पृ.३०

७६. वही, पृ.३४

७७. वही, पृ.४०

७८. वही, पृ.४१

७९. वही, पृ.४१

८०. वही, पृ.४४

८१. वही, पृ.४४

८२. वही, पृ.१२

८३. वही, पृ.१३

८४. सबसे बड़ा सिपहिया, वी.जै. पृ.२३

८५. वही, पृ.२४

८६. वही, पृ.२७

८७. सुरेखा-पर्व, वी.जै., पृ.२२

८८. वही, पृ.२२

८९. प्रतिदान, पृ.७२

९०. वही, पृ.७२

९१. वही, पृ.७२

९२. पार, पृ.५४

९३. पार, पृ.५५

९४. वही, पृ.५५

९५. प्रतिदान, वी.जै., पृ.७३

९६. वही, पृ.७३

९७. प्रतिदान, वी. जै., पृ.७३

९८. वही, पृ.७७

९९. सुरेखा-पर्व, वी.जै. पृ.२२

१००. डूब, वी.जै., पृ.६६

१०१. वही, पृ.१८१

१०२. वही, पृ.१७९

१०३. वही, पृ.८८

१०४. वही, पृ.२८७

१०५. पार, वी.जै., पृ.३६

१०६. वही, पृ.३६

१०७. वही, पृ.१४७

१०८. वही, पृ.१४७

१०९. वही, पृ.१४९

११०. वी.जै.का.सा., सं. मनोहरलाल, पृ.१०५

१११. पार, वी.जै., पृ.१६२

११२. वही, पृ.१६२

११३. वही, पृ.१६२

११४. पंचनामा, वी.जै. पृ.२६५

११५. सुरेखा-पर्व, वी.जै., पृ.५८

११६. वही, पृ.६७

११७. प्रतिदान, वी.जै., पृ.७५

११८. शब्दबध, वी.जै., पृ.२५

११९. शब्दवध, वी.जै., पृ.११८

१२०. पंचनामा, वी.जै., पृ.६६

१२१. वही, पृ.६७

१२२. वही, पृ.६७

१२३. वही, पृ.६७

१२४. वही, पृ.६७

१२५. वही, पृ.७०

१२६. वही, पृ.७१

१२७. वही, पृ.७१

१२८. वही, पृ.७१

१२९. उसके हिस्से का विश्वास- वी.जै., पृ.१४२,१४३

१३०. वही, पृ.१४१

१३१. वही, पृ.१३८

१३२. वही, पृ.१३८

१३३. वही, पृ.१४१

१३४. वही, पृ.१४१

१३५. वही, पृ.१४२

१३६. सुरेखा-पर्व, वी.जै., पृ.२१

१३७. वही, पृ.२२

१३८. वही, पृ.२६

१३९. तलाश, वी.जै., पृ.८२

१४०. वही, पृ.८३

१४१. वही, पृ.८४

१४२. वही, पृ.८५

१४३. वही, पृ.८६

१४४. वही, पृ.८६

१४५. वही, पृ.८८

१४६. वही, पृ.८८

१४७. वही, पृ.९८

१४८. वही, पृ.९८,९९

१४९. वही, पृ.९९

१५०. वही, पृ.९९,१००

१५१. वही, पृ.१०३,१०४

१५२. वही, पृ.१०४

१५३. पंचनामा, वी.जै., पृ.९०

१५४. वही, पृ.९०

१५५. वही, पृ.९०

१५६. वही, पृ.९६

१५७. वही, पृ.९९

१५८. वही, पृ.१००

१५९. वही, पृ.१०६

१६०. वही, पृ.१११

१६१. वही, पृ.१११

१६२. वही, पृ.११२

१६३. वही, पृ.११४

१६४. वही, पृ.११५

१६५. वही, पृ.११६

१६६. वही, पृ.११६

१६७. वही, पृ.११७

१६८. वही, पृ.१२९

१६९. वही, पृ.९७

१७०. वही, पृ.९८,९९

१७१. वही, पृ.१०४

१७२. वही, पृ.१३०

१७३. वही, पृ.१३१

अध्याय–४

वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और राजनीतिक चेतना

४.१ विकास बनाम विनाश

४.२ सरकारी नसबंदी का घिनौना और क्रूर अभियान

४.३ भ्रष्ट और अनैतिक पुलिसतंत्र

४.४ सत्ता का नशीलापन

४.५ पुलिसतंत्र: षड़यंत्रों का भंड़ार

४.६ राजनीतिक अनैतिकता

४.७ गाँववालों का आदिवासियों पर बरसता कहर

➢ निष्कर्ष

अध्याय-४
वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और राजनीतिक चेतना

''सत्य वहाँ घायल हुआ, गई अहिंसा चूक

जहाँ-तहाँ दगते लगी शासन की बंदूक ॥''

ऐसा कहने वाले नागार्जुन ने राजनीतिक संदर्भ में बहुत सारी सत्य हकीकतें समाज के सामने रखी है । राजनीति का सीधा संबंध समाज से है । चाहे वह आदिकाल की राजनीति हो या आधुनिक काल की राजनीति । राजनीतिक मूल्यों में किसी भी युग में कोई परिवर्तन नहीं आया, बदला है तो केवल ढाँचा । जहाँ शासन और सत्ता होती है, वहाँ शासकों एवं कर्मचारीयों की स्वार्थवृत्ति, अनीतियाँ, भ्रष्टाचार व लालच अपने आप चले आते है । जिसकी वजह से राजनीति भ्रष्ट एवं अपवित्र बन जाती है । ऐसी स्थिति में जनता को न्याय और हक मिलने के बजाय, मिलती है मात्र उपेक्षा । अन्याय के इस तराजू में सर्वहारा वर्ग गरीबी और बेकारी में पीसता चला जाता है । तब किसी भी नेता या प्रमुख का ध्यान उन पर नही जाता ।

स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेज शासकों द्वारा जनता के ऊपर अत्याचार एवं शोषण हो रहे थे, जिसकी वजह से हमारा देश कंगाल और पिछडा हुआ-सा रह गया । स्वतंत्रता के बाद लोगों को विश्वास था कि, अब तो लोकशाही आ गई, अब हमारा विकास और प्रगति होगी, हमारी स्थिति कुछ सुधरेगी, मगर लोगों का यह विश्वास बहुत जल्द ही टूट गया । गरीबी और बेरोजगारी से मुक्त होने के जो स्वप्न जनता ने देखे थे, उसे

राजनीतिक शासको ने अपनी बड़ी-बड़ी योजनाओं के तहत कूचलकर रख दिया । तब लोगों में निराशा फैल गई । वीरेन्द्र जैन ने स्वतंत्रता के बाद जनता की दुर्दशा, शोषण, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी इन सारी बातों को बहुत ही गहराई में जाकर उजागर किया है । सरकार मात्र बड़ी-बड़ी बातें कहकर बरसों तक मूक हो जाती हैं। विकास के नाम पर लोगों की जिंदगी से खिलवाड किया जाता है । लेखक इन राजनीतिक संदर्भो को एवं गतिविधियों को विश्लेषित करने में कारगर सिद्ध हुए है ।

४.१ विकास बनाम विनाश :-

आज विश्व में विकास की यो परिभाषाएँ हमारे सामने है, वह कई अर्थो में चौंकाने वाली है । वैज्ञानिक और तकनीकी युग में कहा जा रहा है, कि आनेवाले दिनों में विकास की पद्धति तो होगी, परंतु रोजगार के अवसर नहीं होंगे । लेखक ने इसी कड़वे सच के दर्शन हमें 'डूब' और 'पार' में करवाए है, कि किस तरह लोग रोटी, कपड़ा और मकान जैसी प्राथमिक जरुरतों के लिए तरसते है । राजनीतिक विकास के तले किसानों के हर सपने को कुचला जा रहा है । ''सत्ता के अंधेरे में अब देखने योग्य शायद कुछ नहीं बचा है । खारिज होती हुई शताब्दी तथा नई शताब्दी की सोच ने हमें और हमारे समाज को कहाँ तक प्रभावित किया है । आज हमारे लिए हर क्षण बदलाव के मंजर है । इस तेज अंधेरे और रोशनी में चलते हुए हम असल में हम कहाँ है । कहाँ है हमारा अपनापन और कहाँ हमारा भूत और अमावश में खोया भविष्य।''[१]

'डूब' का हर व्यक्ति विकास के नाम पर जो नयी-नयी परियोजनाएँ उनके सामने आती है, उससे संघर्ष करता है । अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए भूख, भय, गरीबी, लाचारी, अत्याचार, शोषण, दु:ख और राजनैतिक हथकडों को झेलने के लिए विवश है । लेखक ने बड़ी गहराई में जाकर जिन्दगी जीने की इस पीड़ा को व्यक्त किया है । जिससे हम कभी भी आँखे नहीं चुरा सकते । वह धरती जो आदमी को जीने का हक देती है, और वह आस्माँ जो उसको उसके हिस्से की स्वतंत्रता देता है वह भी शासक वर्ग जनता से छीन लेता है । आधुनिकता और विकासवाद ने सबसे ज्यादा अगर किसी को प्रताडित किया तो वह है गरीब जनता-सर्वहारा वर्ग । ''जिसके सर से उसके हिस्से का सूरज तथा चाँद छीन लिया जाए, जिसके हाथों में उसके हिस्से का काम तथा जिसकी सोच में सपनों को छीन लिया जाए, वह इस धरती का सबसे बड़ा दलित बासिंदा है ।''[२] गाँववाले समझते थे कि इस विकास योजना में उनका उद्धार हो जाएगा, अब खुशियाँ आएगी । लेकिन गलत, विकास योजना तो उनकी एक-एक खुशी का ग्रास कर रही थी । ''बेतवा, राजघाट और बुंदेलखण्ड के आसपास में जो कुछ हो रहा है, वह एक देशव्यापी छल का हिस्सा है । इसलिए एक आँचलिक पृष्ठ भूमि पर रचे जाने के बावजूद इन उपन्यासों का परिदृश्य देशव्यापी है, इनकी चिंताएँ समूचे भारत की चिंताएँ है । इन्हें पढ़ते हुए देश के विभिन्न हिस्सों में चल रही दूसरी बड़ी परियोजनाओं की याद आ जाती है । और कई तकलीफ देह सवाल मन को देर तक मथते रहते है । आजादी के बाद से शुरु होती है डूब की कहानी ।

पूरे देश के साथ-साथ वहाँ भी आनी थी, सो लड़ैई में भी आई आजादी। आजादी आई तो अपने साथ-साथ कई भरोसे भी लाई। मगर हुआ उलटा। राजघाट पर बाँध बनाने की जो घोषणा वरदान स्वरुप लग रही थी, वह लडैई के लिए और उसके साथ सारे गाँवो के लिए अभिशाप बन गई।''[३]

बेतवा नदी के राजघाट पर, बाँध बनाने की योजना बनी की लड़ैई 'डूब-क्षेत्र' में आ गया। और तुरंत ही लड़ैई और आस-पास के क्षेत्रों को सारी सुविधाएँ देना बंध हो गया। कृषकों की जमीनें ले ली गई। उनके मकान भी छीन लिए गए। गाँव के रईस और साहूकारों की जमीन को छोड़कर बाकी सारी जमीन हड़प करके ले गए। अब किसानों के पास जमीन के बदले में जो थोड़े बहुत रुपए आए, उन्हे देखकर साहूकारों की जीभ से लार टपकने लगी। साहूकारों ने किसानों से अपने पुराने कर्ज वसूले, और शहर जाकर आराम से रहने लगे। लडैई में पानी ऊपर से नीचे गिराया जाएगा, इस गाँव में बाढ भी बार-बार आएगी। इसलिए साहूकार सोचते है, कि अगर गाँववाले अपनी बची हुई जमीन सस्ते दाम में बेचकर चले जाए, तो वह सरकार से उसी जमीन के दुगुने भाव वसुले। ''लेखक आदि से अंत तक गाँव के जीवन-यथार्थ के विविध आयामों को खोलता चलता है, और व्यवस्था की सारी विसंगतियों को उद्घाटित करता है। सब लोग बारी बारी गाँव छोड़कर चले जाते है, क्योंकि गाँव में कुछ रखा ही नही है। किन्तु कस्बे में जाकर भी भिन्न-भिन्न तरह से गाँव का अर्थदोहन करते रहे। राजनीति और प्रशासन ने गाँव के लिए कुछ किया नहीं, बस

डूब के नाम पर गाँव खाली करा लिया। गाँववालों को मुआवजे देने की प्रक्रिया में अदभूत ताल-मेल के साथ राजनीतिज्ञ, प्रशासक और व्यापारी वर्ग गावों को लूटते है। बाँध बाँधने पर भी गाँव नहीं बचता।''[४] सबसे बड़ी त्रासदी तो यह है कि जहाँ विकास कार्य होते है, वहीं के लोगों को मजदूरी का काम भी नहीं दिया जाता। और एक दिन वही होता है, जिसका सबको डर था। रमते सलैया ने माते को खबर दी कि, ''राजघाट बाँध के जो टीले उठाये थे न बाँध वालो ने। उनमें से इक तरफ वाले टीले में रात को दरार पड़ गई। घाट पर छिका तमाम पानी टीला तोड़कर गाँवों में घूस गया हैं। पंचमनगर तक जल ही जल है माते। इतना जल जैसे प्रलय आ गई हो। जितना कभी किसी बाढ के बखत नहीं आया। जाने कितने लोग मर खप गए। कितने ढोर-बछेरु डूब गए। कितनी खडी फसल स्वाहाँ हो गई।''[५] यह खबर सुनकर तो माते जहाँ के तहाँ स्थिर ही रह गए और बेहोश हो गए, जब होश आया तो चल पड़े पंचमनगर की ओर लोगों की खबर लेने। गाँव के सारे लोग किले के बाहर अपना-अपना सामान लिए पानी के उतरने की राह देख रहे थे। गाँव के कुछ युवक पानी में फँसे लोगों को, सामान को, और मवेशियों को पानी से बाहर निकालने में लगे हुए थे। गाँव के बाहर ऊँचा-सा किला ही एक ऐसी जगह थी जहाँ लोग बैठ सकते थे, बाकी पूरा गाँव पानी में बह चला था। विनाश के इस तांड़व नृत्य ने माते के हृदय में हलचल मचा दी। इतना होने के बावजूद राजनैतिक अनैतिकता और चालबाजी तो सचमुच आश्चर्य-जनक है। सरकार ने झूठी खबर रेड़ियो पर दी कि ''कुछ वर्ष पूर्व

सरकार ने बाँध के आसपास गाँवों को मुआवजा देकर खाली करवा लिया था। यदि एसा न किया जाता तो आज उस क्षेत्र में पानी के अचानक प्रवेश कर जाने से न जाने कितनी ही जाने चली गई होती।''[६] हाँलाकि गाँववालों को आज तक मुआवजा ही नही दिया गया था, सरकार की ऐसी झूठी खबर को सुनकर माते को गुस्सा आना स्वाभाविक ही था। वे रेड़ियो को उठाकर वट-वृक्ष से दे मारते है और चिल्ला उठते है- ''लाबरी है जा सरकार, महा लाबरी! महा झूठी, सरकार झूठी!''[७] चारों ओर हाहाकार मच जाता है। दीन-हीन, नि:सहाय लोग कहाँ जाकर कहे की- हमें मुआवजा नहीं मिला। ''इस शासनतंत्र की अनैतिकता और लोभ बुद्धि का लेखक ने एक सशक्त प्रतीक चुना है चीलगाड़ी (हवाई-जहाज)। हर बार, किसी सरकारी लूट चाल के पहले लेखक वर्णन करता है- 'चीलगाडी, फिर आकाश में मँड़राने लगी है।' और सचमुच यह चीलगाड़ी किसी विकास या आधुनिकता का प्रतीक नहीं, मौजूदा शासनतंत्र की अनैतिकता बुद्धि के कारण यह समाज पर गिद्ध द्रष्टि लगाए, उसका सब कुछ हड़पने को ललक रहे औपनिवेशिक प्रशासन तंत्र की प्रतीक है। जो की भारत का यथार्थ है।''[८]

इतना सब कुछ होते हुए भी अन्याय रुकवाना, न्याय पाना नहीं चाहते थे भ्रमित किए गए मेहनतकश ग्रामीण। जब-जब बाँध का पानी आता, तब कभी खड़ी फसल को अपने साथ बहा ले जाता, तो कभी ढोर-बछेरु या मवेशियों को खिंचकर ले जाता। नालों का पानी नदी में जाना बंद हो जाने की वजह से नालों में पानी

सड़ने लगा। और दलदल जमा हो जाने की वजह से नालों के रास्ते लोगों का पैदल या बैलगाडीयों पर जाना बंद हो गया। इस तरह गाँव से शहर आने-जाने का रास्ता बंद हो जाने की वजह से शहर से गाँव कट-कर रह जाता है। इस तरह एक के बाद एक कई गहरे गडढ़े खुद जाने के कारण उनमें मवेशियों की गिर कर मर जाने का डर लगा रहता था, सो बरेदी भी गाँव छोड़कर जाना चाहता है। पानीपुरा तक पानी की जो नहर आती थी, वह भी सरकार ने बंद कर दी, जो पानी का एकमात्र साधन थी। नहर के बंद हो जाने की वजह से लोग प्यास के कारण छटपटाने लगे। और पानी के अभाव में पूरा गाँव स्वत: ही उजड़ गया। यह विकास है या विनाश ?

विकास योजना में सरकार पर्यावरण को बचाने के ढोल पीटती रही, उसी पर्यावरण को वह खुद अपने ही हाथों नुकशान पहुँचाती है। सरे आम जंगलों को काट कर वहाँ बाँध बनाने की योजना बनाते है। जंगलों की अवैध-कटाई से जीरोन खेरे का मुखिया चिंता प्रकट करता है। ''कल को गाँव वाले जलावन लेने आने लगेंगे। हमरी डांग रिता जाएँगे। अब भी जब-तब किसी न किसी गाँव के लोग लकडियाँ काट ही ले जाते है। अभी तो डर के मारे कभी कभार ही हिम्मत करते है। गेल से जान चिनार हो जाने पर तो निड़र होकर आएँगे, बेधड़क रुख के रुख काटेंगे। तब हम कंद-मूल, फल-फूल, जड़ी-बूटी जलावन छाजन कहाँ से पाएँगे ? हमरी तो डांग ही आसरा है।''[१] वीरेन्द्र जैन ने पर्यावरण के विनाश पर चिंता प्रकट की है। माते को अरविंद पांड़े से खबर मिलती है, कि अब यहाँ बाँध नहीं अभ्यारण्य बनेगा और पशुओं

को संरक्षण दिया जाएगा । गाँववालों को उजाड़कर उनका विनाश कर पशुओं का उद्धार करने निकलती है सरकार । ऊधर निर्मल साव भी जीरोन खेरे की जमीन पर अपना अधिकार पाना चाहते है । और जिस जमीन पर आदिवासी चले है । उसी से उन्हें बेदखल करने पर उतारु है । उन्हें कानून का भय दिखाकर जमीन छोड़ने की धमकी दे जाते है । दु:खद स्थिति तो यह है, कि कानून और पुलिस भी ऐसे सूदखोर और खून चूसनेवालों का साथ देती है । जिसके कारण विकास-योजना में जमींदार की जेब भर जाती है, लेकिन गरीब वहीं के वहीं । ''विकास के नाम पर धन आखिर जा किन की जेबों में रहा है ? इन्हें तो इन्हीं के धन का छोटा-सा हिस्सा वापस मिल पा रहा है । वह भी कब ? जब वे उसे भोगने योग्य न रहे तब !''[१०] तब गाँव का प्रमुख चरित्र माते आधुनिकता और विकास का विरोध करे, यह स्वाभाविक ही है । एसा विकास किस काम का जो मनुष्य को अपनी जमीन से उखाड दे । घर, गाँव और स्वजन अपने आप से बिछुड जाए । जो दु:ख के सिवा और कुछ न दे पाए, पशु-पक्षियों का और खड़ी फसलों का विनाश करे, मनुष्य को अपनी जान से हाथ धोना पड़े । ''माते एक विकास-विरोधी चरित्र है । और यह जमाना विकासवाद और प्रगतिशील विकास की कामना का है । माते इस तमाम विकास पर थूँकता चलता है। कहानी में एसे कई पात्र आ गए हैं, जो सरकार की विकासनीति यानी, बाँधनीति का मुआवजा लेकर 'ये जा वो जा' होते है । कुछ शहरों का रुख करते है, किन्तु माते नहीं हिलता । दाँत में सुपाडी शुरु से फँसी है, वह आखिर तक निकलती नहीं । वह

दाँत में विकास की सुपाडी है ।''[११]

निश्चय ही ये सभी विकास योजनाएँ श्रेष्ठ, सुंदर और सुखद ढंग से संपन्न हो सकती थी । उससे शासक वर्ग को समाज का प्रेम और यश ही मिलता । पर उसने यह रास्ता नहीं चुना । जो चुना उसमें वह एक अनैतिक, कायर, विकृत, आत्मघाती और कलंकी समुदाय के रुप में प्रगट हुआ । और लोगों को विनाश के कगार तक पहुँचाकर रख दिया, इस विकास ने ! तब विद्रोह तो होना ही था, आज नहीं तो कल ! इसी स्थिति को पूर्णत: वास्तविक रुप में लेखकने अंकित किया है ।

४.२ सरकारी नसबंदी का घिनौना और क्रूर अभियान :-

गाँव और खैरे के लोगों की नसबंदी करवाने में हीरासाव और निर्मलसाव जैसे स्वार्थी और बेरहम लोग राजनीतिक अधिकारीयों के साथ मिल जाते है । अपना काम निकलवाने के बदले मे इन मासूमों की जान लेने में भी नही हिचकिचाते । हीरा साव पानीपुरा की जमीन सस्ते दामों में खरीदकर सरकार से ज्यादा रकम ऍंठना चाहते थे। पानीपुरा खरीने के बाद अब तक खरीदी उन तमाम जमीनों को विधिवत अपने नाम करवाने के मुहिम पर जुट जाते है । ''इस निमित्त साव ने तहसील के कई फेरे लगाए, मगर न पटवारी, न तहसीलदार, कोई हाथ ही न धरने दे । दोनों कल-कल पर टालते रहे ।''[१२] हीरा साव उलझन में थे कि अब क्या होगा ? तब तहसीलदार ने बताया कि सरकार बढ़ती हुई जनसंख्या से परेशान है । हमें भी दो हजार लोगों की नसबंदी करवाने का आदेश हुआ है । रिश्वत ले सके ऐसे हालत नही । ''अगर आप हमे अपने

क्षेत्र से पाँच सो मर्द दे सके तो बदले में हम आपका काम कर देंगे । इसमें आपको करना इतना भर होगा कि लोगों को समझा-बुझाकर चंदेरी ले आइएगा । यहाँ डॉक्टर लोग मौजूद रहेंगे । वे एक ही दिन में इस काम को अंजाम देकर उन्हें फारिग कर देंगे।''[१३] हीरासाव ने तुरंत ही प्रस्ताव स्विकार कर लिया । गाँव के निर्दोष, निरक्षर, नि:सहाय लोगों को साव और सरकार दोनों मिलकर अपने स्वार्थ का मोहरा बनाते है। हीरासाव मुआवजा देने के नाम पर गाँव आकर कहते है, कि ''उन्होंने कहा है हमसे कि आप अपने गाँव से सोलह बरस से पचास बरस के बीच के जो आदमी-बच्चे खेत में काम करते है, उन सबको लेकर चंदेरी आना । हम उनके नाम जमीन का पट्टा लिखेंगे । उन्हें मालिकाना हक देंगे । उस जमीन की किंमत का कागज देंगे । उस कागज के मुताबिक सरकार के खजाने से मुआवजा मिलेगा । कहीं अंत रहने की जगह मिलेगी ।''[१४]

इस तरह झूठ बोल कर छल से गाँववालों को हीरासाव शहर लाते है । तीसरी सुबह बौराए हुए लोगों का पूरा हूजूम मुँह लटकाए आता दिखा । माते के मन में कुविचार आने लगे, वे सोचने लगे कि क्या हुआ होगा ? माते सबसे सवालिया निगाह से पूछते है कि, ''कोई धोखा हुआ क्या ? अरे कोई मर खप गया क्या? अरे, मरद होकर मायूस होते हो? किसान होकर? हीरा साव कहाँ है ?''[१५] तब गाँववालों ने कहा कि अब हीरा साव नही आएँगे । इस गाँव में अब कोई बच्चा नहीं जन्मेगा । इस गाँव में केवल साव लोग ही मरद रहे है । यह सुनकर माते कहने लगे कि क्या पथरा

बब्बा ने तुम सबको शाप दे दिया, जो ऐसी बातें कर रहे है । गाँववालों ने कहा- ''चंदेरी में धेरधारकर हमरी मर्दानगी छुडा ली सरकार ने । देश की आबादी से परेशान है सरकार ! इसलिए जबरन जनन नश काट दी हमरी ।''[१६] माते अत्यंत क्रोधित होकर बौखलाए ''क्या कहते हो ? बेशरमी की भी हद हो गई यह तो । अब सरकार जिसे चाहेगी वही जनम लेगा क्या ? भगवान जिसे भेजना चाहेगा मनुष्य योनि में वह नहीं आ पाएगा अब ? तुम यहाँ क्यों नहीं पकड़ लाए सरकार को ? तुमने कहा नही की यहाँ एक बूढा रहता है पाँच बरस कम सौ का ? वह भी आबादी की बढ़त में है। वह भी आबादी बढ़ा सकता है ।''[१७] माते कहते है, कि तुमने पूछा नही सरकार से कि जब वो हमे पालती-पोसती नहीं । हमरी परवरिश नहीं करती, हमारी बदहाली से कोई दु:ख या तकलीफ नही होती, तो हमारी आबादी बढ़े या घटे उसको क्या फर्क पड़ता है ।

लेखक ने सारे गाँव में जागृत व्यक्ति के रुप में माते के विचारों के द्वारा अपने मन की अभिव्यक्ति की है । माते लेखक के जागृत विचारों का प्रतिनिधित्व करते है । माते सब जानते थे, कि सरकार अब तक नही और आज इतनी जल्द मुआवजा देने के लिए तैयार क्यों हो गई ? ''हमें तो पहले ही शक था कि सरकार की नीयत में खोट है । मगर हम इस करके नहीं बोले की तुम लोग मानते थौड़ेई । अगर हम कहते कि इन बाल-बच्चन को मत ले जाओ, ये नाबालिग है अभी, इनके नाम कोई जमीन नहीं हो सकती कानूनन, तो तुम यही कहते न कि माते सठिया गए है । इनकी अकल

पर पथरा पड़ गया है ।''[१८] इस अभियान से माते बहुत ही दु:खी हुए । अपनी पीडा व्यक्त करते हुए और आँसू बहाते हुए माते कहते है, कि ''अब क्यों आए हो अपनी मनहूस सूरत दिखाने ? जाओ, अपने अपने घर जाओ । जाकर बताओ अपनी-अपनी बैयरबानी को कि सरकार ने तुमरे नाम जमीन का पट्टा लिखा है, या तुमरे धरु हल की मूठ मरोड़ दी है । जाओ, जाओ यहाँ से । हमरे कान तो बहुत पक्के है । ये नहीं फटेंगे तुमरी बैयरों की चीख-पुकार सुनकर । उनका विलाप सुनकर, कि उनका उलाहना सुनकर । जाओ, जाओ यहाँ से । हमें तो अब जब तक जीना है तब तक जननी माताओं के कंठ से यही सुनना बदा है, कि सरकार ने अपनी उपजाउ जमीन उसर कर दी है ।''[१९] वे ठगे गए, भरमाए गए लोग मुँह लटकाए आए थे, उससे बदतर मुँह बनाकर निराश होकर चले गए अपने-अपने घर । इतने दिन हो गए हीरा साव गाँव नही लौटे । सरकार ने जनन नश काट दी थी कि जीवन नश । माते का पौत्र अनेका सहित पूरे सात लड़कें भगवान को प्यारे हो गए । करम सरकार के, साव के और दुर्गति इन बेजुबानों की ।

हीरासाव ने जो अनैतिकता और अत्याचार किए, वैसी ही क्रूरता निर्मलसाव ने जीरोन खेरे के साथ की । लेखक ने भ्रष्टाचार, राजनैतिक लोभ-बुद्धि, विकास का खोखलापन, और बाहरी दिखावे को चीर डाला है । तहसीलदार ने निर्मल साव को आपातकाल में दो हजार मर्दो की नसबंदी करवाने के लिए खेरे के आदमियो को लाने का काम सौंपा । रिश्वत के रुप में जो देना है, उसके बारे में तहसीलदार कहता है-

''बदले में सरकार आपको प्रति-मर्द कुछ नकद रकम इनाम में देगी । और हम अपनी तरफ से आपको आपके क्षेत्र के तमाम गाँव का किरासीन, शक्कर, का कोटा-परमीट दिलवाएँगे । मर्दो को कब लाएंगे, कैसे लाएँगे, यह आपको तय करना है । तय करके हमरे दफ्तर में खबर दे देना । हम बाकी सारा इंतजाम कर लेंगे ।''[२०] हीरासाव ने जो चाल गाँववालों के साथ चली, वही थोड़ी फेर बदल कर आजमाई घूरेसाव ने । निर्मल साव (घूरे साव) ने समझाया कि सरकार के आदमी तुमरे लिंग की पेशाब की जाँच पड़ताल करके तुमरी मर्दानगी नापेंगे । और उसी के अनुसार तुम्हारे लिए काम तय किया जाएगा । भोले-भाले आदिवासियों को उल्लू बनाया जा रहा है । निर्मल साव सबको लेकर चंदेरी आते है । पर किसी को यह पता न चला कि उनके साथ क्या किया जा रहा है ? और जब उन्हें पता चला तब बहुत देर हो चुकी थी । निर्मल साव ने सब को चंदेरी से बिदा किया और कहा कि, अब तुम लोग जाओ, हम सरकारी फरमान लेकर आते है । ''शहर से लौटे पीछे एक भी जन वह नहीं रहा जो खैरे से गया था । मर्दानगी जताने गया था कि मर्दानगी गँवाने, कूत नहीं पड़ता । उनकी जनी स्तब्ध, दुखी, परेशान, और हैरान ही रह गई । न कहते बने, न धरते ।''[२१] चारों और हाहाकार मच गया, खबर मुखिया तक पहुँच गई । मुखिया जान ही न पाया कि, ''ऐसे कैसे सबके सब एक दिन में मौए जैसे हो गए ?''[२२] सब बताना चाहते है । मगर मर्यादा-भंग होने का डर है । आखिर मुखिया को बात ज्ञात हो ही गई । ''कई महीनें हो गए, किसी जनी को ओ-ओ करते हुए नहीं देखा । करे कैसे जब जन बीज ही न

दे, तो जनम ने के लक्षन कहाँ से जनमें ।''[२३] अब मुखिया को चिंता होने लगती है, की अगर जन्म रुकेगा, तो हमारा खेरा भी खतम हो जाएगा । गाँव और खेरे की स्थिति समान हो जाती है । लेकिन गाँव व खेरा जीत गया, शहर और सरकार हार गई । ''जन-जनी का नेह जीत गया, प्रीत जीत गई, छल हार गया । एक संकट टला। नया जनम नहीं रुका । खेरा चलेगा । बिरादरी बढ़ेगी ।''[२४]

छल की आखिर पराजय ही होती है । छल करके भी सरकार गाँववालों के आगे हार गई । अनैतिकता के सामने नैतिकता जीत गई । लेखक ने असंभव कार्य को भी संभव बनाकर निर्दोष सर्वहारा वर्ग का विजय घोष किया है ।

४.३ भ्रष्ट और अनैतिक पुलिसतंत्र :-

आनंद सागर पत्रिका में उपसंपादक है । उसने अपने प्रदेश में आए नए आई.जी. का इंटरव्यू पिछले सप्ताह ही लिया था । इंटरव्यू में आई.जी. साहब के अनुभव पुलिस तंत्र की कर्तव्यपरायजता आदि बातों की जानकारियाँ हाँसिल कर वह उसे प्रकाशित करना चाहता था । जब वह अपना काम पूर्ण करके घर वापस लौटता है, तो देखता है कि उसके घर में चोरी हो गई है । घर में सारा सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा है। आनंद यह सब देखकर सोचता है, कि अब मुझे पुलिस के पास जाकर अपनी एफ.आई.आर. दर्ज करवानी चाहिए । ताकि पुलिस आकर उचित तहकीकात करके चोर को पकड सके । और अपना सामान वापस आ सके । आनंद पुलिस थाने में एक पत्रकार की हैसियत से नही, पर एक सामान्य नागरिक के रुप में अपनी रपट दर्ज

कराने जाता है । ताकी सामान्य नागरिक के प्रति पुलिस का व्यवहार कैसा है, इसका स्वयं अनुभव कर सके । और पुलिसतंत्र की वास्तविकता भी सामने आ सके ।

आनंद थाने में रपट लिखवाने पहुँचता है, तो संतरी उसे अपमानीत करते हुए कहता है कि ''ओये पिद्दी के, कहाँ घुसा जा रहा है ।''[२५] तब आनंद थानेदार से मिलने की इच्छा व्यक्त करता है । अंदर जाकर आनंद डी.ओ. से अपनी एफ.आई.आर. दर्ज करने के लिए कहता है । तब डी.ओ.आनंद से कहते है, कि ''उससे क्या होगा ? हैं ?... क्या तू समझता है कि तेरे घर में चोरी करनेवाले को पुलिस पकड लेगी ? और तेरा जो सामान चोरी गया है या नहीं, तुझे पता तक नहीं, उसे ढूँढ निकालेगी ? हैं ? बोल?''[२६] आनंद के बहुत कहने पर भी डी.ओ. उसकी रपट दर्ज नहीं करता। क्योंकि वे राह देख रहे है कि आनंद कुछ चाय-पानी या सिगरेट वगैरह की व्यवस्था कर दे, तो रपट दर्ज करे । पर आनंद की ओर से इनके कोई आशार नजर न पड़े तो खुद डी.ओ. ने चाय और सिगरेट लाने के लिए जगतराम को भेज दिया । जब वह चाय और सिगरेट लेकर वहीं पहुँचा, तब डी.ओ. से पूछने लगा कि- ''डी.ओ. साहब, चायवाला पूछ रहा था कि ये किसने मँगवाई है । मतलब ये किसी के खाते में दर्ज होंगी या इनका पेमेंट नकद होगा ?''[२७] डी.ओ. राह देखने लगे की आनंद पैसें देने को कहेगा । मगर आनंद ने ऐसा कुछ नही कहा । तब रामसेवकने कहा कि, चाय डी.ओ. साहब ने थोडेई मँगवाई है, जो पैसे दे । वह रामधन से पूछता है कि, क्या तुने तो नहीं मँगवाई ? तब रामधन कहता है कि ''नहीं तो, मैं क्यों मँगाता ? मैं कोई

रपट दर्ज कराने आया हूँ, जो तुम्हारी खुशामद में... अपनी बात पूरी न करके वह आनंद की ओर मुडा और ऊँगली से टोहना मारकर पूछा, आपने मँगवाई है न ?''[२८] तब भी आनंद अपनी बात पर डँटा रहा और साफ मना कर दिया की नहीं मैने तो चाय-सिगरेट नही मँगवाई। आनंद को अपनी बात पर डँटा हुआ देखकर डी.ओ. फिर से अपनी अधूरी रपट पूर्ण करने में लग गया। पर आनंद की रपट दर्ज करने की शुरुआत नही की। अगर आनंद ने चाय-सिगरेट के पैसे दे दिए होते तो शायद अब तक रपट दर्ज हो चुकी होती। पर आनंद ने एसा नही किया, सो उसे धिक्कते उठानी पड़ी। काफी देर तक आनंद थाने में बैठा रहा, पर किसीने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया। आनंद पुलिस द्वारा हो रहे सामान्य लोगों के साथ अन्याय और अनैतिक व्यवहार को देख रहा था।

ताई के साथ एक युवती डी.ओ. के पास अपनी रपट लिखवाने आती है। एक शराबी उस युवती को आगर छेडता है। घबराई हुई उस सुंदर युवती को ढाढस बँधाते हुए डी.ओ. बोलते है, कि ''आज के बाद वह हरामजादा तुम्हें तंग नही कर पाएगा। मैं आज रात को दो सिपाही तुम्हारे घर पहेरे पर बैठा दूँगा। तुम चादर ओढकर सोने का नाटक करना। जब वह शराबी आए और छेड़छाड़ करे तो तुम चुप रहना। हमारे सिपाही वहाँ होंगे ही; कोई ऊँच-नीच होने से पहले ही वे उसे रँगे हाथों पकड़कर हवालात में बंद कर देंगे। और हाँ, तुम किसी से भी इसकी चर्चा मत करना, वरना वो हरामजादा, बदजात सावधान हो जाएगा और तुम्हारी थू-थू होगी सो अलग।''[२९]

डी.ओ. के विचार नेक नही है, उसमें अनैतिकता की बू आती है । युवती के जाने के बाद सभी सिपाही के साथ मिलकर डी.ओ.ने हँसी उड़ाई । और उसकी रपट टोकरी के हवाले कर दी गई । डी.ओ. को इस हरकत के लिए शाबाशी दी गई । और पूछा गया कि रात को शराबी बनकर जाएगा कौन ? और उस युवती के साथ शराबी के रुप में शोकर युवती की जवानी का फायदा कौन उठाएगा ? तब डी.ओ. रति-विलाप करते हुए कहते है कि, मैं शराबी बनकर जाऊँगा।'' क्या चीज पेश की है आज इसने! अब तो दिन के बाकी घंटे काटना भारी पड़ रहा है । जी चाहता है कि साली को अभी से बिस्तर में ले के पड़ जाऊँ...''[३०] समाज का रक्षक ही पाशविक बनकर आम जनता के ऊपर अपने नाखून गडाएगा, तो अब रक्षा की उम्मीद की भी किससे जाए । ताई का काम ही यही है कि, वह निर्दोष युवतीयों को बहला-फुसलाकर पुलिसवालों के पास ले आती है, और उसे डरा-धमकाकर धंधा भी करवाती है । जिससे पुलिसवालो कई शामें आबाद हो जाती है । और यह सारा नाटक देखता है आनंद । आनंद को पुलिस की इस अनैतिकता पर धीन आती है ।

एक वृद्ध अपनी दुकान में चोरी करनेवाले चोर उच्चके गुंडे किस्म के आदमी को पकड़कर थाने में लाते है । तब मुंशी रामसेवक और सिपाही रामतीरथ ने बाहर जाकर उस गुंड़े के साथ थोड़ी बात-चीत की और फिर थाने में आ गए । बाद में दरवाजे की ओर में जाकर उच्चके ने खुद को छोड़ देने के लिए मुंशी को रिश्वत दी । ''उचक्के ने अपनी पैंट में आगे की तरफ हाथ डाला और वहाँ रखी कोई चीज निकालकर मुंशी

के हाथ में देकर बाहर की तरफ दौड़ पड़ा । मुंशी ने उस चीज को अपनी जेब के हवाले किया और पूरे मनोयोग से उचक्के का दौड़ना देखने लगे ।''[३१] अंदर आकर मुंशी ने सबको बताया कि उस आदमी के पास तो कुछ नही निकला । वह तो एकदम शरीफ आदमी है । यह सुनकर वृद्ध डर गया । और कहने लगा कि- क्या कहते है ? मैं इतनी महेनत से उसे पकड़कर लाया और आपने उसे छोड़ दिया । वह मुझे रास्ते भर धमकी देता रहा, तो वह शरीफ कैसे हो गया । पैसे तो गए, अब तो जान का भी खतरा वृद्ध के सर पर आ गया । जब पुलिस रपट लिखवाने की बात कहती है, तब वह वृद्ध कहता है कि- ''मुझे नही लिखवानी रिपोर्ट । रिपोर्ट को क्या मैं चाटूँगा.... मैं सब समझ गया हूँ... सब... और वह लाचार, बेबस, कानून के रक्षकों की मिलीभगत से ठगा गया बूढा जाने क्या-क्या बड़बड़ाता हुआ थाने से चला गया...।''[३२] जैसे ही बूढ़ा ड्यूटी रुम से बाहर चला गया, तो सब मिलकर जोरों से हँसने लगे । जैसे कि अपना विजय घोष कर रहे हो । हाँ, विजय ही तो हुई है, रिश्वत लेने में विजय ! ''मुंशी रामसेवक ने अपनी जेब से एक बटुआ निकाला । उसमे से रुपए निकालकर गिने। फिर सौ-सौ के तीन नोट डी.ओ. के सामने रखे, तीन सिपाही रामतीरथ के सामने रखे और अपने हाथ में बचे शेष तीन नोट दोनों को दिखाकर बटुआ सड़क की तरफ उछाल दिया ।''[३३] मिली हुई रिश्वत में सभी ने बँटवारा कर लिया । और अपनी-अपनी रकम अपनी-अपनी जेब में रखने लगे । और फिर जोरों का ठहाका लगाया । मानो वे गर्व कर रहे हो कि कैसे वृद्ध को उल्लू बनाया !

पुलिस द्वारा थाने में आकर मदद माँगनेवाले हर व्यक्ति को कोई-न-कोई बहाना बनाकर वहाँ से भगा दिया जाता है । कभी कहा जाता है, कि अपना पता लिखवा दो, हम अभी आते है । तो कभी कहाँ जाता है कि हम अभी सिपाही भेजते है, आप जाईए । फिर महीने बीत जाते है, फिर भी कोई भी पुलिस-कर्मी दिखाई नहीं देता । थाने में जब नये एस.आई. सेवालाल शर्मा का आगमन होता है, तब आनंद को आशा बँधती है कि अब उसकी रपट दर्ज होगी । लेकिन नही यहाँ तो सब पुलिस कर्मचारीयों की मिली-भगत है । सब एक मिट्टी के ही है । बस दुर्घटना में एक बच्चे की मौत हो जाने की वजह से एस.आई. को रपट दर्ज करनी पड़ती है । रपट दर्ज करना उन्हें बिलकुल अच्छा नही लगता । बच्चे के बाप को पुलिस पर विश्वास नही है । वह सोचता हैं कि पुलिस रिश्वत लेकर उसके दूसरे बेटे को भी मार डालेगी । और ड्राइवर से तगड़ा माल एँठेंगी । बच्चे का बाप एस.आई. से कहता है कि ''तुम तो चाहते हो कि मेरा दूसरा बच्चा भी मर जाए ताकि तगड़ा मामला बने और तुम ड्राइवर से अच्छी खासी रकम एँठ सको..''[३४] मुंशी रामसेवक के पूछने पर एस.आई. बताता है कि ''फिर क्या था । मैं भी अपनी सी पर आ गया । तू तो जानता ही है जब मैं अपनी सी पर आता हूँ तो किसी माई के लाल की नहीं सुनता । न आगा-पीछा देखता हैं । मैंने उस हरामजादे को चेतावनी दी, देख बे चुतियानंद जहाँ तक एक इंसान का सवाल है, मुझे तेरे बच्चों से पूरी हमदर्दी है । मगर जहाँ तक एक पुलिस अफसर का सवाल है, मुझे अपनी ड्यूटी से सरोकार है बस, और तू अच्छी तरह जानता है कि

मैं एक पुलिस अफसर हूँ। इसलिए कान खोलकर सुन ले। अगर तूने अपनी औकात भूलकर टाँय टाँय की तो साले इतने जूते मारुँगा, कि गीन भी नही पाएगा और बच्चे तैयार करनेवाला हथियार उखाड़कर हाथ पर धर दूँगा सो अलग। फिर साले ताउम्र दूसरों की चिरौरी करता फिरेगा बच्चे जनवाने के लिए।''[३५] एस.आई. की बात सुनकर मुंशी बोला ''आप उसे जनखा बना देते तभी उसे पता चलता कि पुलिस से चूँचपड़ करने का अंजाम क्या होता हैं...।''[३६] आनंद इस हँसी-मजाक को बैठा-बैठा सुन रहा था। घंटो बीत गए पर आनंद की रपट दर्ज नही की गई। क्योंकि पुलिस के लिए रपट लिखना मतलब बहुत महेनत का काम और बड़ा काम है। डी.ओ. को ''आज रोजनामचा और प्रथम सूचना रपट दर्ज करनी पड़ रही है। और इस भारी भरकम काम में दस-बीस घंटे लगना तो मामूली बात है।''[३७] एसे में बीच में आनंद की रपट कहाँ से दर्ज की जाए ! जब आनंद का धैर्य जवाब दे देता है, तब वह रामरतन से पूछता है कि मुझे कब थानेदार से मिलवाएँगे ? आनंद का प्रश्न सुनकर रामरतन की पुलिस आत्मा जागृत हो उठी। ''उन्होने आग्नेय नेत्रों से उसकी तरफ देखा। तू चुप बैठेगा या तेरा कोई बढ़िया इंतजाम करना पड़ेगा ? साला पिद्दी न पिद्दी का शोराबा, टर्र-टर्र लगाए हुए है। थानेदार से मिलना है !! अबे उनके आगे हमारी तक तो फटती है... तू क्या खा के मिलेगा उनसे ? एँ ? चुप लगाकर बैठा रह वरना..''[३८] रामरतन की धमकी सुनकर आनंद चुप हो जाता है। जब दूसरा सिपाही प्यारेलाल आता है, तो वह बताता है कि थानेदार तो यहीं है थाने में। जबकि आनंद पिछले चार घंटे से

थानेदार की राह देखा बैठा रहा, मगर फिर भी किसीने उसे थानेदार से मिलने नहीं दिया। आनंद जब प्यारेलाल से पूछता है कि- क्या थानेदार थाने में मौजूद है। तब ''एक पल के लिए प्यारेलाल भी अकबकाया, मगर तुरंत ही उसने चतुराई से पैंतरा बदला, हाँ तो कोई झूठ थोड़े ही कहा गया था। थाने के पूरे इलाके में थानेदार कहीं भी राउंड पर हो तो उन्हें थाने में मौजूद माना जाता है। पर इसका मतलब यह नहीं होता कि वे बैठे कुर्सी तोड़ रहे है... समझा कुछ।''[३९] आनंद से जब प्यारेलाल पूछता है कि तू यहाँ बैठा क्या कर रहा है ? तो आनंद ने इस प्रश्न का उत्तर देना उचित न समझा। ''अपने प्रश्न का उत्तर न मिलता देख प्यारेलाल ने स्वयं को अपमानित महसूस किया। एक सिविलियन से अपमानित होना भला कोई भी पुलिसवाला कैसे बर्दाश्त कर सकता है। वह बौखलाया, अबे बताता है या दिखाऊँ पुलिसिया दाँव?''[४०] इस प्रकार प्यारेलाल गुंड़ागीरी करने पर उतारु हो जाता है। तभी एक फरियादी आकर अपनी फरियाद डी.ओ. और प्यारेलाल के सामने रखता है। फरियादी की दुकान के सामने किसी दूसरे व्यक्ति ने दुकान डाली है। सो यह बात फरियादी को खटकने लगती है। इसलिए वह झूठी फरियाद लेकर थाने में आता है कि उस व्यक्तिने उसे मारा है। फरियादी चाहता है कि डी.ओ. और अन्य पुलिस कर्मचारीयों को थोड़े-बहुत पैसे खिलाकर दूसरे दुकानदार के सामने झूठा मुकदमा दर्ज किया जाए और उसकी दुकान उठवा ली जाए। इस कार्य को संपन्न करने के लिए डी.ओ. उस फरियादी को कहता है कि ''रकम ढीली करनी पड़ेगी... है कुछ अंटी में ?''[४१]

फरियादी पूछता है कि- कितनी रकम चाहिए ? तब डी.ओ. बताता है कि- ''यही तकरीबन चार-पाँच सो रुपए... पर देख भई इनका जिकर न करियो किसी के सामने... अरे जब हम कह रहे हैं तो समझ तेरा काम हो ही गया। और फिर अब तो हम तेरा नमक खाने जा रहे हैं। क्या नमक हलाली भी नही करेंगे ?''[४२] डी.ओ. फरियादी के द्वारा दिए गए नोट गिनने लगे, मगर जैसे ही सामने से प्यारेलाल को आता देखा तो डी.ओ. ने बिना गिने ही नोट अपनी जेब में रख दिए। फिर फरियादी के काम को अंजाम देने के लिए डी.ओ. ने खुद फरियादी के मुँह पर घाव के निशान बना दिए, ताकी सारे मामले में फरियादी बेकसूर ठहरे। और वह निर्दोष दुकानदार मारा जाए। डी.ओ. ने शिघ्र ही एफ.आई.आर. लिखकर ''अपनी दराज में से एक जंग खाई लोहे की पैनी पत्ती निकाली। फरियादी को अपने एकदम करीब बुलाया, फिर उस पत्ती की सहायता से उसके सिर, माथे, भौंहों और नाक के आसपास की खाल खुर्च दी। सभी जगहों से खून रिसने लगा। उसकी क्षत-विक्षत सूरत देख डी.ओ. का मित्र प्रसन्न हो गया। अपनी कामयाबी पर पहले वे मन ही मन मुस्कुराए, बाद में फरियादी को समझाया, अब मैं तुम्हें एक सिपाही के साथ अलीपुर भेजूँगा। वहाँ पुलिस हस्पताल में तुम्हारी डॉक्टरी होगी। मैंने जो चित्रकारी तुम्हारे चेहरे पर की है उसकी वजह से डॉक्टर तो क्या, उसका बाप भी डॉक्टरी रिपोर्ट में शर्तिया यह लिखेगा कि तुम पर कातिलाना हमला किया गया था। बस, रिपोर्ट तुम्हारे हक में आते ही हम उस हरामजादे को गिरफतार कर लेंगे... और जब वो यहाँ से छूटकर

जाएगा, दुकानदारी करना भूल चुका होगा। अब, तुम देखते जाओ पुलिस के हाथ, पाँव, डंड़े और दिमाग का कमाल।''[४३] बाद में डी.ओ.ने किशनलाल को समझाया कि यह फरियादी अगर दो सो रुपये दे तो ही उसे हस्पताल ले जाना, वरना नहीं। फरियादी से पैसे मिलने की बात सुनकर किशनलाल खुश हो गया।

४.४ सत्ता का नशीलापन :-

सत्ता प्राप्ति के साथ नैतिकता, कर्तव्य-पालन एवं प्रामाणिकता जुडती है। मगर सत्ता हासिल होते ही कर्मचारी अपने कर्तव्य को भूल कर अकर्मण्यता एवं पाशाविकता पर उतर आता है। पुलिस-तंत्र में भी बिलकुल वैसा ही है। सिपाही को सामान्य जनता की मदद करने के लिए तैनात किया जाता है। पर सिपाही तो अपनी सत्ता के नशीलेपन में सब-कुछ भूलकर पाशविकता पर उतर आते है। और किसीका भी अपमान कर देते है। सतत छः घंटे तक थाने में बैठकर थानेदार का इंतजार करने पर भी जब आनंद को उससे मिलने नही दिया जाता, तब आनंद डी.ओ. से कहता हैं कि, जब तक उसे थानेदार से मिलने नही दिया जाएगा, तब तक वह यहाँ से नही जाएगा। तब डी.ओ. चिल्लाते हुए कहते है कि, ''पुलिस तेरे बाप की नौकर है न, जो हुकम देते ही हाजिर हो जाएगी। जा, जा ज्यादा बकवास करने की कोई जरुरत नहीं है। साले चले आते है टूटे लोटे और फटे टाट की चोरी की रपट करने।''[४४] इतना कहने पर भी जब आनंद वहाँ से नहीं हटता तब डी.ओ. संतरी से कहता है, कि ''संतरिया, इस पिद्दी की... में भूस भरकर इसे धूरे पर तो फेंक आ।''[४५] तब डी.ओ.

की ''आँखों का वहशीपन और उसके हाथों की अकुलाहट देख आनंद काँप-सा गया... और इससे पहले कि वह डी.ओ. का हुकुम बजाये... वह थाने से भाग खडा हुआ...।''[४६] आनंद तो थाने में बैठा-बैठा सोच रहा था कि यहाँ देर है, पर अंधेर नही। लेकिन अब उसे लग रहा है कि यहाँ तो अँधेर ही अँधेर है । थाने से भागते हुए आनंद के कदम जल्दी-जल्दी बढ़ने लगे । उसे डर लगने लगा कि कहीं सिपाही पिछे से आकर उसे दबोच न ले और मारने न लगे । आनंद से बहुत बड़ा जुर्म हो गया था। और वह जुर्म था पुलिस को उसकी अकर्मव्यता की याद दिलाना और उससे मदद माँगना । ओर पुलिस भी आनंद को शायद इसी वजह से मारने पर उतारु हो जाती है कि दूसरों को भी इस घटना से सबक मिले । उनसे मदद माँगने आने से पहले दस बार सोच विचार करे । आनंद ने आज जान लिया था, कि थाने की परिभाषा क्या है ! ''वह जगह जहाँ आपको सुरक्षा का भरपूर आश्वासन देकर बुलाया जाता है, आकर्षित किया जाता है, मगर वहाँ होता है आदमी की खाल ओढे आदमखोर भेडियों का हुजूम, जो दरवाजों की ओट मे अपने पैने नाखून छुपाए आपका इंतजार कर रहा होता है और भीतर प्रवेश करते ही आपके तमाम जिस्म को चाक-चाक कर मांस का आखिरी कतरा तक चबा जाता है और तिस पर भी डकार नहीं लेता, क्योंकि उसकी भूख तब भी शांत नही होती... और शायद इन दरिदों की भूख तो देश की तमाम जनता की बोटिया चबा जाने पर भी शांत नहीं होने वाली ।''[४७] आनंद जब अपने घर पहुँचा, तब जाकर खुद को सुरक्षित महसूस किया । जब रमेशजी

ने आनंद से देर होने की वजह पूछी, तो आनंद ने सारी घटना सविस्तार रमेशजी को सुना दी। आनंद की बात सुनकर रमेशजी आश्चर्य चकित रह गए।

इस घटना के बाद आनंद आई.जी. साहब से मिला। और उनका इंटरव्यू छापने से आनंद ने साफ इन्कार कर दिया। क्योंकि आई.जी. साहब ने पुलिस की प्रशंसा के पुल बाँधे थे। मगर जब आनंद को खुद उनका अनुभव हुआ तब उसे आई.जी. साहब की बातों में कतरा भर भी सच नही दिखा। आनंद इस गलत सूचना को प्रकाशित करके जन-साधारण को भरमाना नही चाहता। वह आई.जी. से कहता है कि, ''अब मैं जनसाधारण के हित में चाहूँगा कि आप मुझे इस सलाह को प्रकाशित करने को बाध्य न करें। चूँकि ऐसी सलाह देकर आप और हम ढेरों लोगों को मुसीबत में डालने का कारण बनेंगे।''[४८] पुलिस सत्ता के नशे में इतनी चकचूर हो गई है, कि आई.जी. की आनंद से कही यह बात बिलकुल गलत साबित हो गई है कि ''हर नागरिक को पुलिस की मदद करनी चाहिए, पुलिस से मदद लेनी चाहिए, उन कामों में ही नहीं जो पुलिस से संबंधित हो बल्कि उनमें भी जिनमें पुलिस कानून की हद में रहते किसी भी नागरिक की मदद कर सके।''[४९] आनंद पुलिस की वास्तविकता सबके सामने लाकर उनके चेहरे से मुखोटा हटाना चाहता है। आनंद कहता है कि हम ''खुद जान बुझकर एक ऐसी स्थिति को क्यों न उघाडें जो हमारा और हम जैसे हजारों नागरिकों का अहित कर रही हो।''[५०] आनंद की ऐसी बातें सुनकर आई.जी. को लगा कि कहीं आनंद उसकी वास्तविकता सबके सामने खोलकर न रख दे। इसलिए

उन्होंने आनंद से बनावटी हमदर्दी बताते हुए और खुद को श्रेष्ठ साबित करते हुए अपने स्टाफ को धमकाने का ढोंग किया । डी.ओ. कहता है कि ''थाने के तमाम दोषी कर्मचारियों से जवाब तलब करूँगा... और हाँ, इस थाने के तमाम स्टाफ को पदावनत करके यहाँ से चलता करो और मुझे एक सप्ताह में पूरी रिपोर्ट दो । और इस थानेदार को, क्या नाम है इसका हॉ, प्रभातीलाल शर्मा, इस हरामजादे को तुरंत बदलो । जो आदमी चार-चार घंटे दिन मे सोता है, वह क्या खाकर थानेदारी करेगा...''[५१] एसे थानेदार ''काहिली, लापरवाही, नालायकी और अपने खामखा का अफसरपना दिखाने से बाज नहीं आते ।''[५२] आई.जी. साहब ने अपने स्टाफ को इसलिए धमकाया कि आनंद नौ भाषाओं की पत्रिकाओं के उपसंपादक है । अगर आनंद असंतुष्ट और रुष्ट होकर कुछ इधर-उधर का छाप देगा तो समग्र पुलिस-तंत्र की इज्जत मिट्टी में मिल जाने की संभावना है । अत: उन्होंने आनंद के सामने दिखावे की सख्त से सख्त कार्यवाही करके अपना दोहरापन व्यक्त किया । अधीक्षक से लेकर सचिव, आई.जी., एस.पी., डी.ओ., थानेदार और सामान्य सिपाही तक सभी कर्मचारियों की आपस में मिली-भगत है । आनंद के जाते ही अधीक्षक ने थानेदार को समझाया कि- यह पत्रकार आई.जी. के बहुत करीब है । ढेरों रुपए कमता है । अत: इसे, चोरी की फिक्र नही है, पर इसके साथ थाने में जो दुर्व्यवहार हुआ उसीसे वह क्रोंधित व अपमानीत है । उसकी तसल्ली के लिए जरा अपने स्टाफ को उसके सामने धमका देना । अधीक्षक की एसी बातें सुनकर थानेदार कहता है कि ''ठीक है सर में वो तमाशा करुंगा कि

इसकी तो बाँछे खिल जाएँगी ।''[५३] तभी एक सज्ज्ञन व्यक्ति थानेदार के पास अपना स्कूटर लेने आता है । वास्तव में उस व्यक्ति के एक किराएदार ने कई महीने का किराया नही दिया था । तो पाँच हजार रुपए उस सज्ज्ञन के किराएदार के पास से लेने निकलते थे । उसने किराया तो नही दिया, पर घर छोड़कर अवश्य चला गया । जाते वक्त वह अपना फ्रिज उस सज्ज्ञन के घर छोड़ गया । और उनका स्कूटर स्वयं उठा ले गया । वह सज्ज्ञन थानेदार के पास आता है, और किराएदार के पास से अपना स्कूटर वापस लेना चाहता है । थानेदार ने उस किराएदार से स्कूटर ले लिया । और स्कूटर का इस्तमाल खुद करने लगा । जब थानेदार के पास वह सज्ज्ञन आता है और अपना स्कूटर वापस लेना चाहता है, तब थानेदार साहब ने उसे रौब के साथ समझाया कि ''सुनिए श्रीमान, इस तरह मुँह उठाए अफसरों के दफ्तरों के चक्कर ना ही काटे तो अच्छा है, मैं तो खैर महसूस कर रहा हूँ पर कभी कोई तगडा-सा थानेदार पल्ले पड़ गया तो छठी का दूध याद करा देगा ।''[५४] थानेदार की एसी बात सुनकर वह सज्ज्ञन गंभीर हो गए और चेहरा दयनीय हो उठा । थानेदार ने स्कूटर थाने में रखा था, सो उस व्यक्ति को हिदायत दी गई कि वह थाने मे आकर स्कूटर ले जाए । थानेदार गुंडागीरी करके उस सज्ज्ञन से फ्रिज और स्कूटर दोनों हड़पना चाहता है । थानेदार की कड़क बाते सुनकर ''उस नागरिक के चहेरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी । वह सकपका गया ।''[५५] और स्कूटर वहाँ थाने में छोड़ गया । एक पुलिस कर्मचारी ने स्कूटर देखकर थानेदार से पूछा कि स्कूटर कब लिया? तब उसने अपना पुलिसिया दाव उस

कर्मचारी को बताया । ''अब क्या बताऊँ यार... उसके भाई और उसके साथी के लेन-देन का झगड़ा तो तू सुन ही चुका है । एक दिन इसका भाई थाने में आया था। उसने मुझे सारा किस्सा सुनाया । मैंने दूसरे ही दिन उस आदमी को बुलवा लिया । खूब डराया धमकाया सो वह स्कूटर मेरे हवाले कर गया ।''[५६] स्कूटर थानेदार के पास बना रहे इसके लिए वह एक षड़यंत्र रचता है । थानेदार उस सिपाही से स्पष्टता करते हुए कहते है कि ''जब थाने में आओ तो फ्रिज साथ लेते आना और अपना स्कूटर ले जाना । अब वह आदमी तो फ्रिज लेने आने से रहा । उसका तो सीधा-सा गणित है कि पाँच हजार किराया बनता था, उसके बदले अगर चार हजार में खरीदा फ्रिज और वह भी तीन-चार साल इस्तमालसुदा, चला गया तब भी सस्ते में छूटे । इधर इसका भाई भी कभी उससे बात नहीं छेडेगा, क्योंकि ये भी सोचेगा कि किराया मिल जाता तो ठीक था, नही भी मिला तो कम से कम आठ हजार का स्कूटर तो जाते-जाते बच ही गया । बस... और स्कूटर भी मैं इतनी आसानी से तो नहीं ही दूँगा । साला क्या लाजवाब चलता है ।''[५७] इस प्रकार थानेदार ने डंड़े की चोट पर फ्रिज और स्कूटर दोनों पर अपना कब्जा कर लिया । इधर गर्मी के मौसम में कूलर मरम्मत करनेवालों की दुकान पर हर मार्च की शुरुआत में बीस सरकारी कूलर मरम्मत के लिए आते हैं, उसे जैसे के तैसे दूसरे सरकारी दफ्तरों पर किराए पर भेज दिए जाते है । और गरमी का मौसम पूर्ण होते ही ठीक करके वापस उसी दफ्तर में भेज दिए जाते है । इस बार थानेदार ने उन बीस कूलरों में से दो कूलर दुकानदार

को कहकर अपने थाने में लगवा दिए । और कूलर मरम्मत करनेवाले दुकानदार ने डर के मारे थानेदार ने जैसा कहा वैसा ही किया ।

चाय-लस्सी की दूकान का नौकर दो गिलासों में लस्सी लेकर थाने में आता है । जाते वक्त उससे दरवाजा खुला रह गया । तब थानेदार ने उसे डपटते हुए कहा, ''अबे ओ चौबे, हरामजादे, दरवाजा क्या तेरी माँ बंद करेगी आकर ? चल मुड ! दरवाजा बंद कर ।''[५८] नौकर ने सहमते हुए दरवाजा बंद कर दिया । इसके अलावा कुछ हड़तालियों ने दो बजे तक की भूख हड़ताल रखी थी । इस अभियान को पूर्ण कर हड़तालियों को उठाकर वापस भेजने के लिए रामतीरथ को भेजा था । समय होने पर भी जब रामतीरथ थाने में हाजिर नही होता तो थानेदार गुस्सा होकर कहते है कि ''अरे! सुबह से सिपाही तैनात करने की क्या जरुरत थी ? वे लोग न तो मरने की धमकी देकर गए थे न दंगा-फसाद करने की । और तुमने भेजा भी किसे- रामतीरथ को? वह साला लंबी तानकर सो रहा होगा वहाँ ! जब नींद खुलेगी तो चला आएगा... अब तुम जल्दी से दो सिपाही रवाना करो । उनसे कह दो कि अगर वे हरामजादे हड़ताली मिले तो उन्हें डंड़े मार-मारकर भगा दे । चले आते है साले दो बजे तक की भूख-हड़ताल करने । गोया इनकी भूख-हड़ताल से सरकार कँपकँपा जाएगी । इधर साला हम रोज चार बजे से पहले अन्न का दाना मुँह में नही डालते, फिर भी हडताल पर नहीं माने जाते । गुदा मे गू है नहीं और करेंगे नेतागीरी ।''[५९] आनंद के साथ अभी प्रभातीलाल लस्सी पीकर बैठे ही थे कि तभी वहाँ रायसाहब आते है । रायसाहब के

आने पर प्रभातीलाल ने फिर से लस्सी मँगवाई और एक गिलास आनंद के सामने भी रखा गया । तब आनंद ने कहा कि अरे ! अभी तो पी थी लस्सी! तभी प्रभातीलाल कहता है कि ''यह गाय के दूध की है आनंदजी, वह भैंस के दूध की थी । आप तो पी जाइए, आँख बंद करके ।''[६०] थानेदार की एसी बातें सुनकर रायसाहब साश्चर्य पूछते है कि दोनों प्रकार के दूध का इंतजाम कहाँ से होता है ? तब थानेदार ने सगर्व बताया कि ''यहीं थाने के पीछे दो दूधिये हैं रायसाहब । एक के पास भैंसे ज्यादा है और दूसरे के पास गाये । मैंने दोनों को कह रखा है, कि पाँच-पाँच किलो दूध चायवालों की दूकान पर पहुँचा दिया करो रोजाना ।''[६१] थानेदार की एसी सुव्यवस्था पर रायसाहब ने उनकी सराहना की । रायसाहब के जाने के बाद थानेदार आनंद के साथ हुए दुर्व्यवहार की मात्र दिखावे के लिए जाँच करने लगे । जब आनंद रपट दर्ज कराने के लिए आया तब अर्जुनसिंह ड्यूटी पर था । कृपाराम ने बताया कि अर्जुनसिंहने ''इनसे पूरी वारदात एक कागज पर लिखवा ली थी... और इन्हें कह दिया था कि जाकर घर बैठो । अभी हम सिपाही भेज रहे हैं । मगर फिर सिपाही नहीं भेजा और अर्जी भी शायद फाडकर फेंक दी या अपनी जेब में रख ली ।''[६२] अर्जुनसिंह ने आनंद को मदद करने के बजाय उससे गाली-गलौच की । और अपना अफसरपना दिखाते हुए अपमानित कर, वहाँ से भगा दिया गया । थानेदार ने अर्जुनसिंह को और भी ज्यादा डाँटा । फिर आनंद द्वारा आई.जी.साहब को दी हुई अर्जी थानेदार पढ़ने लगे। ''अपनी दराज खोलकर वह पत्र निकला जो आनंद ने आई.जी. के नाम लिखा था।

वह पत्र जोर-जोर से पढ़कर सबको सुनाया। पत्र पूरा पढ़कर उन्होंने और भी ज्यादा क्रोधिन होने का स्वाँग रचा...''[६३] आनंद के रपट की ओर एक भी पुलिसकर्मीने ध्यान इसलिए नही दिया, क्योंकि आनंद रुपया-पैसा तो दे नही रहा था। और न तो उनके चाय-पानी या लस्सी की व्यवस्था कर रहा था। इसलिए आनंद अपमान करने योग्य और उपेक्षा का पात्र बनकर रह जाता है। वीरेन्द्र जैन ने वास्तविकता की ओर अंगुलिनिर्देश करते हुए कहा है, कि सामान्य जनता की जिनके पास रिश्वत में देने के लिए कुछ नही है, उन्हें पुलिस की अवहेलना, नृसंशता और डंड़े का शिकार ही बनना पड़ता है। वे थाने में भी सुरक्षित नही है।

४.५ पुलिसतंत्र: षड़यंत्रों का भंड़ार :-

आनंद ने आई.जी.साहब का जो इंटरव्यू लिया था, उसे वह अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर लोगों के सामने पुलिस की महानता लानेवाला था। यह इंटरव्यू पूर्ण होने के दूसरे ही सप्ताह आनंद के घर चोरी हो जाती है। जब वह रपट लिखवाने के लिए थाने पहुँचता है, तो वहाँ उसे पुलिसवालों के बहुत ही कड़वे अनुभव होते है। आम जनता के प्रति पुलिस की अनैतिकता, भ्रष्टाचार और गुंड़ागीरी ने आनंद को विक्षुब्ध कर दिया। आनंद अपनी इस आपबीती के बाद आई.जी.साहब का पुलिस-तंत्र के बारे में प्रशंसा से भरा हुआ इंटरव्यू छापना नही चाहता। क्योंकि पुलिस-तंत्र के बारे में सरासर झूठी प्रशंसाएँ प्रकाशित करना मतलब जनता को कठिनाईयों में डालने के बराबर था। अत: रोष से भरा हुआ आनंद पुलिस-विभाग द्वारा उसके साथ

किए गए दुर्व्यवहार को अपनी आपबीती के रुप में जब प्रकाशित करता है, तो पुलिस तंत्र की तिसरी आँख खुलती है । पुलिस द्वारा आनंद के साथ अच्छे व्यवहार का नाटक कर आनंद को अपने षड़यंत्र के जाल में इस कदर फाँस दिया जाता है, कि आनंद का साँस लेना भी दुभर हो जाता है।

आनंद डी.एस.पी. साहब से मिलने की इच्छा से थानेदार के पास जाता है । तब थानेदार आनंद को देखकर संतरी से अपना टिफिन बदल लेता है । टिफिन बदलकर वह आनंद के सामने यह साबित करना चाहता है, की पुलिसवालों की नौकरी आराम की नौकरी नही है, और न तो उन्हें अच्छा खाना नशीब होता है । थानेदार ने रोटियाँ निकालते हुए आनंद से कहा कि ''देखिए आनंदजी, ये रुखे-सूखे टिक्कड सुबह के बने । हम लोग इन्हें खाकर पेट भरते हैं । और दुनिया समझती है, पुलिसवालों के मजे है । पुलिसवाले तो तर माल खाते है ।''[६४] जब संतरी को पता चलता है कि थानेदार ने उसकी रोटियाँ खा ली है, तो वह बोला कि अरे ! अब मैं क्या खाऊँगा ? तब थानेदार कहते है कि- आज तू मेरे पराठे खा ले । ''अबे वक्त-जरुरत पर सब करके दिखाना पड़ता है । जा बरतन रख आ । तू नहीं समझेगा ।''[६५] आई.जी. से लेकर सिपाही तक सबको यह लगता था कि आनंद को खुश करने से और उसको महत्व देने से शायद अब वह उनके खिलाफ कोई बात प्रकाशित नही करेगा । पुलिस-तंत्र को डर है कि कहीं आनंद उनके विभाग की सारी वास्तविकता जनता के सामने खोलकर न रख दे । अगर एसा हुआ तो जनता के सामने उनके तंत्र

की बहुत बदनामी होगी। अत: आनंद को हर तरह से खुश रखने के प्रयास किए जाते है। मगर फिर भी पुलिस-तंत्र के कार्य से असंतुष्ट आनंद जब उनकी सारी पोल अपनी आपबीती के रुप मे समाज के सामने प्रकाशित कर देता है, तब पुलिस ने आनंद को एसे चक्रव्यूह में फँसा दिया जिससे बाहर निकलना उसके लिए कठिन हो गया। आनंद ने थाने में अपनी जो रपट लिखवाई थी, उसे भी छल द्वारा बदल दिया जाता है। इतना ही नही पुलिस द्वारा उसे बेइंतहा मारा-पीटा ही जाता है। एक सप्ताह बाद आनंद अपनी दक्षिण यात्रा पूर्ण करके वापस लौट रहा था, कि सामने से दो व्यक्ति उसे आते हुए दिखे। ''अभी वह मोड़ पर ही पहुँचा था कि अचानक किसी ने पीछे से आकर उसका गला दबा दिया। घबराहट में आनंद का सब सामान जमीन पर गिर पड़ा। आनंद पशोपेश में पड़ गया- कौन है ? गले पर दबाव लगातार बढ़ता जा रहा था... आनंद ने उस आक्रमणकारी के हाथ की लपेट में से अपनी गर्दन छुडाने के लिए दोनों हाथों से कोशिश की। तभी एक और व्यक्ति उसके ठीक सामने आकर खडा हो गया। इस व्यक्ति ने खाकी ओवरकोट पहना हुआ था।... घबराहट, छटपटाहट के मारे उसका बुरा हाल था... तभी सामने आए व्यक्ति ने आनंद के शरीर पर लात-धूँसों से वार करना शुरु कर दिया और पीछे वाले व्यक्तिने दूसरे हाथ से मुँह बंद कर लिया...।''[६६] आनंद को जब होश आया तब वह अस्पताल में था। पुलिस की चालबाजी तो देखो कि पहले उसी के द्वारा आनंद को पीटा जाता है, फिर जैसे की उसे तो कुछ पता भी न हो इस प्रकार उसी विभाग के सिपाही द्वारा आनंद को

अस्पताल भी ले जाया जाता है । शायद पुलिस आनंद को पुलिसीया दाव दिखाकर बताना चाहती है, कि पुलिस से बैर मोड़ लोगे तो यही हाल होगा । और तुम कुछ भी कर नही पाओगे । आँखे खोलते ही आनंद को अपने सामने सिपाही बैठा हुआ दिखाई दिया । उसने बताया कि वह मीठापुर-मुद्रानगर का सिपाही है । उसने आनंद को रास्ते में बेहोश हालत मे देखा तो वह उसे शीघ्र ही अस्पताल ले आया । आनंद मन ही मन सोचता है कि ''कौन था वह अजात शत्रु, जिसे उसके हर पल का कार्यक्रम मालूम था... वह कल रात उस हमलावरों के दस-बीस लात धूँसे खाकर ही बेहोश हो गया था.. मगर अपने क्षत-विक्षत शरीर को देखकर उसे लगा, उन्होने उसे बेहोशी में भी बराबर पीटा होगा...!''[६७] आनंद के शरीर पर जगह-जगह पर पट्टीयाँ बँधी थी । उसे जल्दी ही पता चल गया कि हो न हो यह करतूत पुलिस की ही है । डॉक्टर के आने पर जब आनंद उनसे पूछता है, कि डॉक्टर मुझे क्या हुआ था ? तब डॉक्टर ने पुलिस का रटा-रटाया जवाब दिया कि ''रिपोर्ट के मुताबिक आप रात को शराब के नशे में नदी के पथरीले पुश्ते पर लुढककर पचास फीट नीचे खड्डे मे जा गिरे थे ।''[६८] आनंद को यह समझते देर न लगी कि पुलिस ने इंटरव्यू के प्रकाशन पर उसे बधाई दी है । तभी थानेदार प्रभातीलाल शर्मा वहाँ आ पहुँचे । जिसे देखकर आनंद का पूरा शरीर क्रोध से काँपने लगा । आखिरकार थानेदार ने व्यंग्य भरे स्वर मे आनंद से पूछा ''आनंदजी, मुझे सख्त अफसोस है... मगर आप इतनी पीते ही क्यों है ? जाने आप पत्रकार लोग क्यों शराब के पीछे दीवाने है...''[६९] आनंद ने कभी शराब को छुआ तक

नही, और डॉक्टरी सर्टीफीकेट में यह साबित कर दिया कि आनंद ने बेइंतहा शराब पी रखी थी । थानेदार प्रभातीलाल शर्मा आनंद को एक और झटका देते है । वह आनंद से कहते है, कि हमने चोर को ढूँढ लिया है । चोर के साथ आपके गहरे संबंध है । अगर हम उनका नाम बताएँगे तो आप हैरान रह जाएँगे । ''दरअसल यह चोरी की है आपके साथी रमेशजी की पत्नी ने या फिर उनकी मिलीभगत से किसी और ने । सीधी-साफ-सी बात है । उनके पास आपके कमरे की एक चाबी है और उन पर आपको पूरा विश्वास है । सो उन्होंने सोचा की आप उन पर तो शक करेंगे नही । देखिए आनंदजी, मैं मानता हूँ कि आपके साथी तो भले आदमी हो सकते है, पर आप इन औरतों के बारे में नही जानते । ये बड़ी चालाक होती है... आप कहे तो मैं दो मिनट मे साबित कर सकता हूँ ।''[७०] पुलिस के इस झूठे इलजाम को सुनकर आनंद तो हैरान रह गया । वह सोचने लगा कि पुलिस क्या इस हद तक गिर सकती है ? पुलिस ने आनंद के मित्र की पत्नी पर चोरी का इल्जाम इसलिए लगाया ताकि आनंद का मित्र रमेश भी उसकी मदद न कर पाए । चूँकी रमेशजी भी पत्रकार हैं, तो उन्हें भी सबक मिल जाए, और अपना मुँह खोलने से पहले ही बंद कर दे । बाद मे थानेदार ने ''एकाध मिनट बाद अपनी जेब से एक कागज निकालकर आनंद को देते हुए बोले, ये आपके उस बयान की प्रतिलिपी है जो आपने डी.एस.पी. साहब के सामने लिखवाया था । आप उस रोज जल्दबाजी में शायद वहीं छोड़ आये थे । इधर एक रोज मै उनके पास गया तो उन्होने मुझे दे दिया था ।''[७१] थानेदार आनंद से खास

आग्रह करते है, कि वह इसे एक बार अवश्य पढ़ ले। आनंद ने जैसे ही उस बयान को पढ़ने के लिए कागज खोला तो वह बयान उर्दू में था। उर्दू तो आनंद को आती नही। रमेशजी के आने पर जब आनंद उनसे यह प्रतिलिपि पढ़वाता है, तो वह बयान बिलकुल आनंद के विरुद्ध था। जो पुलिसवालों ने बदलकर लिखा था। और छल से आनंद के हस्ताक्षर करवा लिए थे। प्रतिलिपि कुछ इस प्रकार थी-

''श्रीमान जिला उप-अधीक्षक साहब, मैं नौ भाषाओं में छपने वाली पत्रिका 'सागर' का उपसंपादक आनंदकुमार अपने एक कृत्य के लिए आई.जी.साहब से, आपसे और पूरे पुलिस महकमे से क्षमा माँगता हूँ। मैंने मीठापुर-मुद्रानगर पुलिस थाने में अपने घर में चोरी हो जाने की मनगढंत रपट लिखवायी थी। अपने झूठ को पुख्ता करने के लिए मैंने वहाँ के पुलिसकर्मियों के साथ जान बूझकर अभद्र व्यवहार किया था। फिर उनकी झूठी शिकाय लेकर आई.जी. साहब के पास पहुँचा था। आई.जी. साहब ने मेरी शिकायत पर तुरंत कार्रवाई की ओर एस.पी.साहब को पुलिसकर्मियों के खिलाफ कार्रवाई करने का आदेश दिया। एस.पी.साहब ने थाना इंचार्ज को डाँटा-फटकारा थाना इंचार्ज ने अपने मातहतों को और इस तरह मैं अपने झूठ को पुख्ता करने में सफल हो गया।

मगर पुलिस ने काफी तहकीकात के बाद मेरा झूठ पकड़ लिया। अब मैं पुलिस को गुमराह करने के जुर्म में आपके सामने मौजूद हूँ। वास्तव मे मैंने यह सारा प्रपंच अपनी पत्नी को धोखे मे रखने के लिए किया था।

मैंने अपनी पत्नी की अनुपस्थिति में अपने कुव्यसन पूरे करने की खातिर उनके गहने बेचकर रकम खर्च कर ली थी । मगर पुलिस ने असलियत उजागर कर मेरी योजना का पर्दाफाश कर दिया । अब मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि पुलिस को गुमराह करने का मुझसे जो धृणित अपराध हुआ, उसे मेरा पहला गुनाह समझकर मुझे माफ कर दें । भविष्य में यदि मुझसे पुलिस के प्रति कोई भी अपराध या गलतबयानी हो तो जो भी दंड आप देंगे, मैं उसे भुगतने का वचन देता हूँ ।

मैं यह क्षमा-पत्र जिला पुलिस उप-अधीक्षक और मीठापुर-मुद्रानगर के थानदार प्रभातीलाल शर्मा की उपस्थिति में लिखाकर इस पर हिंदी भाषा में अपने हस्ताक्षर कर रहा हूँ ।''[७२] अपने बयान का एसा इकरार सुनकर आनंद स्तब्ध रह गया । उसके पाँव से जमीन सरकने लगी और पूरे तन-बदन में आग की लपटें उठने लगी । पुलिस के बयान बदलने से साफ स्पष्ट होता है, कि वह आनंद को धमकी दे रही है कि आगे जाकर भी अगर उसने पुलिस से पंगा लिया तो उसका हाल शायद इससे भी बुरा होगा। और अगर किसी से मदद ली तो जैसा हाल रमेशजी का हुआ है, वैसा ही उसका भी होगा । आई.जी. साहब ने जो प्रेस कोन्फरन्स बुलाई थी, उसमे उन्होने आनंद के चरित्र पर जमकर किचड उछाला । और पुलिस-तंत्र के बारे में आनंद ने जो सच बातें प्रकाशित की थी, उसे झूठ साबित कर उलटे आनंद पर ही आरोप लगाया गया । पुलिस जो की अनैतिक है, खुद अपना बचाव कर उलटे आनंद को ही अपने षड़्यंत्र में फाँस लेती है । अब आनंद कैसे साबित करे की आखिरकार सच क्या है ?

और झूठ क्या है ? आनंद ने आवेश मे आकर घोषणा की, ''मैं अब भी जवाब दूँगा इस स्पष्टीकरण का । फिर चाहे मुझे पेशे से हाथ धोना पड़े, चाहे परिवार से, चाहे समाज से और चाहे अब तक अर्जित प्रतिष्ठा से भी ।''[७३] तब रमेशजी कहते है कि ''कौन प्रकाशित करेगा आपके पक्ष को ? सच को ? सच तो वही माना जाएगा जो पुलिस की डायरी में दर्ज है । जो इस गजट में छपा है... और फिर आपको सत्यता प्रमाणित करने देगा कौन ? कौन सुनेगा आपकी सफाई ? हो सकता है, समाज भी बरकरार रहे, परिवार भी, पेशा भी, और ये सभी आपको प्रतिष्ठा भी दिये रहना चाहे, मगर आप ही न हो । इन पुलिसवालों के लिए कुछ भी असंभव नही ।''[७४] आनंद, मानसिक, शारीरिक और सामाजिक चारों और से हार जाता है । एक भी रास्ता एसा नही बचा, जिस पर चल कर वह अपने आपको सच और पुलिस को झूठ साबित कर पाए । इसलिए कहा गया है, कि ''लोक बड़ा न रुपैया, सबसे बड़ा सिपहिया ।''[७५] सिपाहिया के अनैतिक हाथ इतने लंबे है कि उसके सामने अच्छे-अच्छे हार जाते है। वह साम, दाम, दंड, भेद किसी भी तरीके से स्व बचाव कर दूसरों को ही गलत साबित करता है...।

४.६ राजनीतिक अनैतिकता :-

अंग्रेजी शासनतंत्र के बाद जब देश को आजादी मिली तो जनता में एक आशा बंध गई कि अब हमारा लोक-तंत्र आएगा । हम जैसा चाहेंगे वैसा ही शासनतंत्र इस देश में भी होगा । अब कोई दु:खी, प्रताडित और गरीब नही होगा । भारत का हर गाँव

देश के विकास में एवं विभिन्न परियोजना में शामिल होना चाहता है । पर देश के नेताओं ने इन गाँवों का विकास नही किया, बल्कि विकास के लिए इनका इस्तमाल ही किया । स्वार्थी रीति-नीतियों के चलते एक गाँव को विकसीत करने के लिए बहुत सारे गाँव को उजाड़ा जाने लगा । सरकार समय-समय पर आकर इन लोगों को केवल भविष्य के सपने ही दिखा जाती है । मगर कार्य करने के नाम पर कुछ भी नही। इसी प्रकार की विकास-योजना में आया है एक गाँव लड़ैई । जहाँ बाँध बनाकर लोगों को पानी एवं बिजली की सुविधाएँ दी जाएगी । पर गाँव की कुर्बानी पर !

मास्साव कहते है कि ''जिला शहर में हमें बताया गया कि इस बाँध का पानी कहीं इकट्ठा किया जाएगा । राजघाट के इस तरफ जहाँ अपना गाँव है, वहाँ बारी, टोढे, शंकरपुर, पंचमनगर, सिरसौदिया, सिद्धपुर, केशोपुर हैं । मतलब ये कि बारी से प्रानपुरा तक के सब गाँव खाली करवाए जाएँगे । पानी छेंका जाएगा वहाँ । अपने ये पहाड, ये पठारियाँ दीवार का काम करेगी, यहाँ के लोगों को कहीं अंत बसाया जाएगा।... और उधर नदी पार के भी सैकड़ों गाँव उजाड़े जाएँगे । वहाँ बाँध पर काम करनेवाले इंजीनियर, ओवरसियर, बाबू, मजदूर बसेंगे ।... कई बरस तक चलेगा काम। तब बन पाएगा बाँध! चार बीसी-पूरे अस्सी करोड़ कलदार खर्च होंगे । तब कहीं मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश को मिल पाएगी उतनी बिजली, जितनी उन्हें जरुरत हैं।''[७६] अब सरकार ने यह फैसला भी ले लिया है, कि यह गाँव बाँध परियोजना में डूब क्षेत्र में आ रहा है । अत: यहाँ से मदरसा हटा लिया जाएगा और बच्चों को शिक्षा देना भी

बंद कर दिया जाएगा। विद्यार्थी कम हो और सरकार मदरसा बंद करे यह बात तो ठीक है, पर यहाँ तो आस-पास के गाँव के बचें भी पढ़ने के लिए आ रहे है। एसी स्थिति में मदरसा बंद करना क्या उचित है ? गाँववाले चिंता में डूब जाते है, कि क्या अब हमारे बच्चों को शिक्षा नही मिलेगी ? मदरसा में आनेवाले इतने बच्चे ''जो हमें-तुम्हें दीख रहा है वह सरकार को क्यो नहीं दिखता? आँधरी है क्या सरकार ?... शिक्षा इतनी ही जरुरी है अगर, तब फिर सरकार मदरसा क्यो हटा रही है ?''[७७] एक और सरकार गाँव में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करती है, तो दूसरी ओर विकास योजना के तहत स्कूल और मदरसा बंद करवाए जाते है। क्या सरकार की यही नैतिकता है ? माते कहते है कि एसा तो बहुत साल पहले हुआ था, जब गोरो की सरकार थी। ''और अब? अब तो अपना राज है। अपनी सरकार है। न कोई राजा है, न कोई प्रजा। तो क्या प्रजा ही प्रजा पर जुल्म ढा रही है ? पर हमरी तो किसी प्रजा से कोई दुश्मनी नही है। न हम किसी के लेने मे, न किसी के देने मे!''[७८] माते को बामन महाराज याद आते है। वे कहते है कि बामन महाराज ठीक ही कहते थे कि कलजुग में मनुष्य और उसके काम दोनों ओछे होंगे। लेकिन अब तो यह सरकार अपनी है। सरकार अपनी होकर भी इतनी निर्दयी है। और इसलिए माते सरकार को वोट देने से सबको मना करते है। ''उस रात फिर लड़ैई के किसी घर में ब्यारु नहीं पकी। उस शाम किसी बानिया के घर में अंथऊ नहीं परोसी जा सकी। उस शाम बानियों के मंदिर में आरती और वचनिका नही वाँची गई। उस रात देहरे मे, मंदिर में,

ठाकुरद्वारे में भोग नहीं चढा । संजा मैया की घंटी की अवाज नही सुनी किसी ने ।''[७९] सारा गाँव शोकमग्न बन गया ।

इंदिराजी राजघाट बाँध की पहली इँट रखने आनेवाली थी । अत: सारा गाँव भूखा-प्यासा निकल पड़ा सुबह-सवेरे बाँध की दिशा मे । ''बाँध कब तक बनेगा, आपको गाँव-घर-खेत छोडने के एवज में कितना मुआवजा मिलेगा, आपको कहाँ बसाया जाएगा, यह सब भी बताएँगी इंदिराजी ।''[८०] सबको एक ही आशा थी कि आज उनके भाग्य और गाँव का फैसला अवश्य हो जाएगा । गाँव के सारे लोग पैदल चलकर बाँध तक बहुँचे । बैलगाडी के जाने की जगह नही थी, क्योंकि पूरा रास्ता जगह-जगह पर खोद दिया था । अत: चाहे चल पाए या न चल पाए जाना तो पड़ेगा पैदल ही । माते कहते है, ''पहली इँट रखने आई हैं इंदिराजी । और इँट रखे से पहले ही हमरी गैल मिटा दी । वाह री बैयर ! क्या जबर बैयर है रे ! का गूँजती आवाज पाई है ! कैसे दहाडती है ! लगती है यह भोपू ससुरा तो कान का पर्दा ही फाड़ डालेगा ।''[८१] इंदिराजी आई तो सही पर वह केवल बड़ी-बड़ी बातें ही कर गई । इंदिराजी और सरकार जितनी बड़ी बातें करते है, उतना बड़ा काम नही । सरकार ने गाँव से सब कुछ छीनकर खाली बना दिया । अब गाँववालों के पास सरकार को देने के लिए कुछ भी नही है । फिर भी स्वार्थी सरकार अपने दोनों हाथ फैलाकर लोगों के पास मदद माँगती है । इंदिराजी कहती है कि ''अब हमने पूरे मन से इस काम को पूरा करने का बीड़ा उठाया है । आप लोग इस काम में हमारी मदद करो ! देश के

विकास में हाथ बँटाओ !''[८२] तब माते मन ही मन सरकारी रीति-नीतियों पर व्यंग्य करते हुए कहते है कि ''लो, सुन लो भैया! जैसे हमने हाथ रोका हो इनका। हमसे वोट के सिवा तुमने कुछ चाहा है भला ? हमरी जो दशा बनाई है तुमने, उसमें और देने को है ही क्या हमरे पास ? तुम्हारी दी चीज तो तुम हर पाँच बरस पीछे माँग ही लेते हो, कभी मुँह से तो कभी भँड़याई से हमें खबर भी नहीं देते कि तुमने हमरी चीज बर्ती भी है। इसके सिवा तुमने दिया क्या है हमे ?''[८३] माते इंदिराजी की बातें सुनकर मन ही मन अपना दु:ख व्यक्त करते हुए कहते है, कि, ये गाँव के भोले-भाले लोग। अब हम तुम्हारी बातों में आनेवाले नही है। क्योंकि हमे तो अब तुम्हारी सारी पोल, तुम्हारी मंशा, अप्रमाणिकता और निर्दयता पता चल गई है। ''सरकारजू तुम भी बताओ तुम्हारी क्या मंशा है ? कौन से लोभ ने सताया है तुम्हे ? किसका पाप ढँकना चाहती हो तूम ? किसने भरमाया है तुम्हें ?''[८४] राजघाट से वापस लौटते हुए माते को पूरा विश्वास हो गया था कि सरकार बिलकुल झूठ बोलती है, वह करनेवाली कुछ नहीं। अभी इंदिराजी को हमसे वोट चाहिए, सो वह बड़ी-बड़ी बाते कर गई। थोड़े साल बाद कोई दूसरे नेता आएँगे और ''दूसरी ईंट रखकर कहेगा कि बस,इन्तजार खत्म... हम ये कर रहे है, हम वो कर रहे है ! सब झूठ! सरासर लाबरी बातें !... कोई बताता क्यों नहीं हमे कि कब खाली करना होगा गाँव ? इतनी बड़ी-बड़ी बातें कर गई सरकार् ! तनिक यह भी बता देती कि हमें ले कहाँ जाओगी यहाँ से उखाड़कर?''[८५] सरकार की अनैतिकता के आगे माते अपना गुस्सा निकालते हुए कहते है, कि हे

सरकार! हमे इतनी मुर्ख न समझो। हम गाँव में रहते है, तो क्या हुआ ? हम भी वही अनाज खाते है, जो तुम खाते हो । हमें यह लगता है कि जैसा झूठ तुम यहाँ आकर बधारती हो, वैसा पूरे देश में बधारती होओगी । शायद दूसरे स्थान पर जाकर कहते होओगे कि हमने राजाघाट पर बाँध बना दिया है, और वहाँ के लोग मजे से रह रहे है । क्योंकि जिसमे आत्मा की द्रष्टि से नैतिकता और कर्तव्य-पालन न हो वह कुछ भी कर सकती है । ''जैसी ये सरकारजू वैसेई इसके कारिंदा । राज-भर के झूठे इकट्ठे हुए राजघाट पर । एक भी तो भला आदमी नहीं दिखा जिससे पूछते कि कहाँ जाकर बसेंगे हम ?''[८६] राजघाट से लौटते हुए माते रास्ते भर सोचते रहे कि ये गहरे गड्ढ़े सरकारने खुदवाए कब ? इतने गहरे गढ्ढे में ढोर, मवेशी, मनुष्य कोई भी गिर कर मर सकता है । काफी समय बीत जाता है, मगर फिर भी गड्ढे वैसे के वैसे । माते कहते है कि ''हमरे गाँव के मील-भर दूर खुदाई हुई दोनों ओर, और हमें खबर तक नही दी । खबर दे देते तो क्या बिगड जाता ! क्या हम तुमरे हाथ रोक लेते ? अरे ज्यादा से ज्यादा यही न कहते कि यह काम होना ही है, तो इसे हमरे बाल-बच्चों से करवा लो । दो टका देने ही है तो इन्हें दो । मगर नहीं जाने कहाँ से लाए होंगे मजूर । आँधरों बाँटे रेबड़ी, मुड़-मुड़ अपनन को देय । तुम तो दोगे उन्हीं शहरातियों को ! हमसे तो बस लेने ही लेने का रिश्ता है न तुम्हारा । हमें तो यहीं छेंककर मारना है न तुम्हे ! यहीं डूंबोना है न ।''[८७] और गाँववाले खाली दिमाग लेकर जाएं तो कहाँ जाए ! इन्होने तो शहर भी नही देखा ।

सरकार ने पानीपुरा तक जानेवाली पानी की नहर को मुहाने से बंद कर दिया। इसलिए पानीपुरा का एक-एक व्यक्ति बिना पानी के तड़प-तड़प कर मरने लगा। सरकार की अनैतिकता तो देखो कि वह गाँव उजाड़ ने नहीं आई, पर गाँव स्वत: ही उजड गया। इसलिए पानीपुरा का बच्चा-बच्चा यही गाता है कि-

''पहले राजा को पानी की दरकार थी

सो गाँव बसाया था।

जब राज्य को पानी की दरकार है

सो गाँव उजाड रही है।''[८८]

इंदिराजी बाँध पर पहली ईंट रखकर गई कि गाँव में बाढ़ आनी शुरु हो गई। जब पहली बार बाढ़ आई तो पूरा गाँव जलमग्न हो गया था। गाँव के सारे व्यक्ति जा बैठे थे माते की बाखर में। अब बाढ़ आने का सिलसिला हर मौसम मे बना रहेगा। गाँववाले सोचते है, कि आखिरकार सरकार की इच्छा क्या है ? वे हमारा सर्वनाश करके हमशे आखिरकार क्या हासिल करना चाहती है ? वोट के समय सरकार लार टपकाती चली आती है। बाद में ''खबर लेना तो दूर, खुद हमरे दरवज्जे आना तो सपने की बात, संकट पर संकट भेजे जा रही है निर्दोष जनता पर।... फिर मँड़रा रही है चीलगाडियाँ (हवाई-जहाज) आसमान में... कुछ-न-कुछ होवेगा तो अवश्य ही। ऐसेई नही मँडरा रही ये चीलें। लूट मची है लूट ! सचमुच का कलजुग आया है। साँचऊँ कलजुग।... महेनतकश तो हुए जा रहे हैं लाचार, विवश और ये परजीवी

शहराती दिन-ब-दिन हो रहे हैं सुखी, प्रसन्न, आकाश तक को हथियाने में समर्थ !''[८९]

सरकार की कोई भी अनैतिक लूट चाल के पहले चीलगाडियाँ आसमान में मँडराने लगती है । तब गाँववाले अपने आप समझ जाते है कि अब कोई न कोई बड़ा संकट या खबर अवश्य सुनने को मिलेगी । जब सरकार स्वयं प्रजा पर अन्याय करती है, तो प्रजा किसके पास जाकर मदद की माँग करे ? तब माते कहते है कि-

''जब माता मारे बच्चे को
तो वह किससे फरियाद करे ?
जब राजा ही अन्याय करे
तब प्रजा किसको याद करे?''[९०]

४.७ गाँववालों का आदिवासियों पर बरसता कहर :-

जिस तरह सरकारी तंत्र गाँव का शोषण करता है, उन पर अत्याचार कर धाक जमाता है, उसी तरह गाँववालें भी आदिवासियों के उपर धौंस जमाने की कोशिश करते हैं । उन्हें डराते है, धमकाते है, गाँव में प्रवेश तक नहीं करने देते । जब गाँव का बरेदी अपने मवेशी जीरोन खेर में आकर चराने लगता है तब जीरोन खेरे के मुखिया की चिंता और बढ़ जाती है कि- ''ये गाँव के मवेशी यहाँ क्या कर रहे है ? कल को किसी ढोर-बछेरु को जनाऊर टोर खाए । किसी को किसी गाँव का बासिंदा हाँक ले जाए । किसी गैया-बछिया का पाँव किसी झाड़ी या खड्ड में उलझ जाए । दरक जाए, टूट जाए । तब संकट हमरे सिर । आफत हमरी । लड़ैईवाले हमरी मुढी

पर लठ बजाकर माँगेगे अपना ढोर। एक ही रट लगाएँगे ढोर कहाँ उकाया है ! किसने हलकान करके लूला बनाया है ! लाबरो इल्जाम लगाएँगे, तुमने ढोर की भँड़याई कर ली। गोश्त खा गए हुइयों। हाड़ गला गए हुइएँ। चामरे की पनैया बना लइ हुइएँ।''[११] गाँववालें मन गढंत इल्जाम लगाकर हमारे खूँटे से बँधा ढोर खोल ले जाएँगे। वे हमारी एक न सुनेंगे। हम उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाएँगे। गाँववाले कितने ही लाठी-बल्लम लेकर आएंगे। हमारी उनके आगे कोई हैसियत नही। गाँववालों का भय उन्हे हंमेशा ही सताता रहता है। ''वह जो ठाकुर आता रहा वर्षो तक कंधा पर बंदूक टाँगे। डाँग-डाँग डोलता था। जब चाहा जिसे चाहा ढोरु-बछेरु को बंदूक का निशाना बना लेता था। अपने तनिक से शौक की खातिर, हमरे मौढ़ी-मौढ़न का मुँह बिना दूध के सूखता रहा। हेरता ऐसे था दोई गहन से गोया आँखों ही आँखों में स्वाहा कर देगा हमें। बंदूक से ढोरों पर और आँखो से हम पर आग उगलता था। हम निगाह न हटा ले तो लिलार पर तीसरी आँख बंदूक से बनाने को हाथ कसकसाते रहते थे उसके।''[१२]

गाँव के ठाकुर आदिवासियों को कीड़े-मकौड़े की तरह मारने से भी नहीं हिचकिचाते हैं। जैसे वे मनुष्य नही उनके गुलाम हो। शोषण व अत्याचार के कहर तले दबे आदिवासियों की आज भी यही स्थिति हैं। आज भी उन तक विकास की एक किरन तक नहीं पहुँची है। दयनीय हालत में अपना जीवन यापन करते है, न ही तो उन्हें अपना अधिकार मिलता है, न कानून से संरक्षण। जब ठाकुर का घोड़ा गायब हो गया था, तब जीरोन खेरे मे आकर तो उन्होंने जैसे तांड़व मचा दिया था। सारे

आदिवासी उनके आगे थर-थर काँपने लगे थे । अगर दुनिया सही वक्त पर उनका घोडा खोजकर नही आता तो ठाकुर जाने कितने ही मवेशियों को मार कर गिरा चुका होता । वीरेन्द्र जैन ने आदिवासियों की दयनीय स्थिति के हर पहलू का सूक्ष्मता से निरुपण कर उनके जीवन की सचाईयों को खोलकर रख दिया हैं । जंगलों की बेधडक कटाई से उन्हें कंद-मूल, फल-फूल, जड़ी-बूटी, जलावन आदि चीजें भी नहीं मिल पाती । ''बदन पर केवल लिंग ढाँपने के लिए एक चमड़ी बाँधे किसी राऊत को देखा कि ऐसे खदेड़ते हैं गाँववालें, जैसे खेत में सियार के धूसपैठ पर उसे खदेड़ा जाता है। सियार डाँग में और राऊत खेरे में पहुँचकर ही राहत की साँस ले पाता है तब । साँस ले पाने के बावजूद भय से ताउम्र मुक्त नही होता वह राउत ।''[१३] गाँववाले आदिवासियों को नफरत की निगाह से ही देखते है ।

लेखक ने आदिवासियों की दयनीय स्थिति के द्वारा आधुनिक विकासवाद पर तमाचा मारा है । आदिवासियों तक विकास न पहुँचने का कारण भी यही है, कि उन्हें अपने इलाके से बाहर ही नही निकलने दिया जाता । जैसे ही वे अपने इलाके से बाहर निकलते है, उन्हे डरा-धमकाकर वापस खदेड दिया जाता है । शिक्षा और अन्य चीजों के अभाव में अपने आप को शर्मिंदा महसूस करते है । जीरोन खेरे का मुखिया जो बात करता है, उसमें स्वयं लेखक के विचार ही द्रष्टिगत होते है- ''बताये कोई इन गाँववालों को कि भैयाजू राउतों को शोक थोडेई है चमडी में रहने का । धाम, जाड़े, बसकारे में उधारे बदन नंग-धड़ंग रहने का । यह तो हमारी लाचारी है । लत्ता कहाँ

से लाए हम । तुमरे पास बाड़ू हो तो दे दो । पहन लेंगे । वही लपेट कर तुमरे गाँव में आ जाएँगे । तुमरा जस गाएँगे । तुमरे काम सलटाएँगे । मुखिया बहुत वर्षो से यह बात गाँववालो से कहना चाहता है । लेकिन कहे कैसे, कहाँ, कब ? इतनी देर राउत को अपनी आँखन छिताँ ठहरने कब देते है गाँववााले, कि वह कुछ कह सके । राउत देखा कि लतियाया ।''[१४] आदिवासियों को खुद अपनी एसी स्थिति पर शर्म आती है। लेकिन वे मजबूर है । मुखिया गाँववालों को अपनी वास्तविकता से अवगत कराना चाहते है । मगर जब तक आदिवासियों को यह ज्ञात होता है, कि उनसे गाँववालों की नजर में आने का अपराध हुआ है उससे पहले तो वह उनके पाँवों में अधमरा होकर लौटा पड़ा होता है । पशुवत स्थिति हो जाती है । ''कुछ बरस पहले तक तो इनका जाना भी कहाँ हो पाता था । वह तो कोई निपूती गाँववाली सिद्ध बब्बा के थान पर धोती-जोडा चढा गई । हमरा एक जन वह उठा लाया । उसी के तीन टुकडा करके हमरी तीन जनी उन्हें पहन कर पहली-पहली बार पहूँची गाँव में ।''[१५] कितनी त्रासद और करुण स्थिति है । राउतने गाँव में इन कपड़ों को पहनकर चीजें बेचने जाने लगी, तब भी ''जरुरतमंद सामान मे से अपने मतलब की चीज छाँटता है । बदले में जो उसका मन हो, गेहूँ से गोबर तक, वही राउतन की झोली में डाल देता हैं । बदले में मिलनेवाली चीज के मामले में राउतन की ईच्छा, जरुरत का कोई सरोकार नहीं होता ।''[१६] इस तरह बदले मे कपड़े भी मिल जाया करते थे । आदिवासियों का आधा पेट गाँवों के जरिए ही चलता है । ज्यों-ज्यों जंगल का नाश होता जाता है, त्यों त्यों

इनका गाँववालों पर आसरा बढ़ता जाता है । पर गाँववालों से कोई मदद नही मिलती। गाँववाले हमरी डांग, हमरा खेरा रिता डालेंगे, तब हम कहाँ जाएँगे ? आखिर इनका क्या बिगाडा है ? जब से मेल जोल बना, अपने हाड़ गलाकर इन्हें इनकी जरुरत की चीजें ही पहुँचाई है।''[१७] मुखिया कहता है कि, गाँववालों के द्वारा किए जा रहे जुल्म, शोषण व अत्याचार का यह दमन-चक्र शृंखला की भाँति है, जिसमें अपने से नीचे दरज्जे वाले आदमी को हंमेशा हेय की द्रष्टि से ही देखा जाता है ।

० निष्कर्ष

निष्कर्षत: वीरेन्द्र जैन ने आधुनिक युग के राजनैतिक षड़यंत्रों का पर्दा-फाश किया है । सरकारी नेता अपने निजी स्वार्थ के लिए जनता को अपनी पाशविकता का शिकार बनाते है । सत्ता के नशीलेपन में शासकों की मानवता एवं संवेदना शून्य हो जाती है । विविध योजनाओं के तहत मासूम लोगों की बलि ली जाती है । नसबंदी के अभियान में कई मासूम व्यक्तियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है । विकास के नाम पर गाँव के लोगों के साथ धोखा और छलकपट कर उनकी जमीनें हड़प ली जाती है । राजनैतिक अनैतिकता इतनी हद तक बढ़ जाती है, कि गाँव के गाँव उजड जाते हैं । लेकिन उनका विरोध करनेवाला कोई नही है । पुलिसतंत्र के अधिकारी भी अपनी सत्ता के मद मे पुलिसीया दाव दिखाने मे ही अपनी इति श्री समझते है । आम जनता की रक्षा और मदद करने की भावना उनमे लुप्त हो गई है । इस प्रकार लेखक ने वर्तमान राजनीति की समग्र बुराईयों को खोलकर रख दिया है ।

संदर्भ–संकेत

१. समकालीन भारतीय दलित समाज बदलता स्वरुप और संघर्ष, डॉ. कृष्णकुमार रतू, पृ.६

२. वही, पृ.१

३. वीरेन्द्र जैन का साहित्य, सं. मनोहरलाल, पृ.१२७

४. वही, पृ.१०२, १०३

५. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.२८५

६. वही, पृ.२८७

७. वही, पृ.२८८

८. वीरेन्द्र जैन का साहित्य, सं. मनोहरलाल, पृ.९९

९. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ.३०

१०. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.२८०

११. वीरेन्द्र जैन का सा., सं. मनोहरलाल, पृ.८०

१२. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.२०१

१३. वही, पृ.२०२

१४. वही, पृ.२०९

१५. वही, पृ.२१०

१६. वही, पृ.२१०

१७. वही, पृ.२१०

१८. वही, पृ.२११

१९. वही, पृ.२११

२०. पार, वीरेन्द जैन, पृ.६७

२१. वही, पृ.७७

२२. वही, पृ.७७

२३. वही, पृ.७८

२४. वही, पृ.७८

२५. सबसे बड़ा सिपहिया- वीरेन्द्र जैन, पृ.९३

२६. वही, पृ.१६

२७. वही, पृ.१८

२८. वही, पृ.१८

२९. वही, पृ.२५

३०. वही, पृ.२७

३१. वही, पृ.२९

३२. वही, पृ.३०

३३. वही, पृ.३०,३१

३४. वही, पृ.३५

३५. वही, पृ.३५

३६. वही, पृ.३६

३७. वही, पृ.३७

३८. वही, पृ.४०

३९. वही, पृ.४४

४०. वही, पृ.४४

४१. वही, पृ.४९

४२. वही, पृ.४९

४३. वही, पृ.५०

४४. वही, पृ.५४

४५. वही, पृ.५५

४६. वही, पृ.५५

४७. वही, पृ.५५

४८. वही, पृ.६१

४९. वही, पृ.६१

५०. वही, पृ.६१

५१. वही, पृ.६३

५२. वही, पृ.६७

५३. वही, पृ.७२,७३

५४. वही, पृ.७५

५५. वही, पृ.७६

५६. वही, पृ.७६,७७

५७. वही, पृ.७७

५८. वही, पृ.८१

५९. वही, पृ.८२

६०. वही, पृ.८४

६१. वही, पृ.८५

६२. वही, पृ.८६,८७

६३. वही, पृ.८८

६४. वही, पृ.१००

६५. वही, पृ.१०१

६६. वही, पृ.११३

६७. वही, पृ.११३,११४

६८. वही, पृ.११४

६९. वही, पृ.११५

७०. वही, पृ.११६

७१. वही, पृ.११७

७२. वही, पृ.११९

७३. वही, पृ.१२४

७४. वही, पृ.१२४

७५. वही, पृ.१२५

७६. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.१०९

७७. वही, पृ.१०६

७८. वही, पृ.१०९

७९. वही, पृ.११०

८०. वही, पृ.१८०

८१. वही, पृ.१८१

८२. वही, पृ.१८१

८३. वही, पृ.१८१

८४. वही, पृ.१८५

८५. वही, पृ.१८५

८६. वही, पृ.१८४

८७. वही, पृ.१८७

८८. वही, पृ.१९६

८९. वही, पृ.२०७

९०. वही, पृ.२४०

९१. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ.२९

९२. वही, पृ.२९

९३. वही, पृ.३०

९४. वही, पृ.३०

९५. वही, पृ.३१

९६. वही, पृ.३०

९७. वही, पृ.३०

अध्याय–५
वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और सांस्कृतिक चेतना

५.१ सांप्रदायिकता

५.२ वर्णव्यवस्था और अस्पृश्यता

५.३ अंधश्रद्धा

५.४ तीज-त्योहार

५.५ पूजा-पाठ

५.६ शिक्षा

५.७ रीति-रिवाज

५.८ आदिवासी संस्कृति

➢ निष्कर्ष

अध्याय-५
वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और सांस्कृतिक चेतना

मनुष्य को परंपरा से प्राप्त आचार विचार, श्रद्धा-अंधश्रद्धा, रीति-रिवाज, प्रथाएँ-दुष्प्रथाएँ, धर्म, जाति, खान-पान, पहनावा, नृत्य, कला, उत्सव, तीज,-त्योहार, संगीत, वस्तु, सिद्धांत, मान्यताएँ इत्यादि का समावेश संस्कृति के अंतर्गत होता है। संस्कृति समाज रुपी शरीर में साँस लेती है। अत: जब भी समाज की बात या आलोचना होती है, तब संस्कृति खुद-ब-खुद उभरकर सामने आ जाती है। प्रत्येक क्षेत्र या देश की संस्कृति अलग-अलग होती है। और संस्कृति के अनुसार मनुष्य के जीवन-व्यवहार का निर्माण व अनुसरण होता है। बाबू गुलाबराय संस्कृति में ''साहित्य, संगीत, कला, दर्शन, धर्म, लोकवार्ता तथा राजनीति का समावेश करते है।''[१]

साहित्यकार अपने साहित्य में जब सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं का आंकलन करता है, तब वह किसी भी प्रदेश-विशेष की संस्कृति से चाहकर भी अछूता नही रह सकता। जनता के आचार-विचार और संस्कृति स्वयं उभरकर सामने आती है। आधुनिक उपन्यासकार वीरेन्द्र जैन का मूल उदेश्य भी वर्तमान युगीन समाज की वास्तविकता को उभारना रहा है। समाज व राजनीति की वास्तविकता का सफर तय करते हुए उन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण संस्कृति, आदिवासी संस्कृति, उनके खान-पान, तीज-त्योहार, अंधश्रद्धाएँ, अस्पृश्यता, सांप्रदायिकता, धार्मिक बाह्याडंबर एवं रीति-रिवाजों को बड़ी सूक्ष्मता और गहराई से चित्रित किया है। संस्कृति विहीन

मनुष्य की कल्पना कभी नही की जा सकती । चाहे वह आदिकालीन मनुष्य हो, या आधुनिक युग का मनुष्य ! लेकिन लेखक सांस्कृतिक विचारों को व्यक्त करते हुए स्पष्ट करते है कि, हमारी संस्कृति में जो बुरे रीति-रिवाज या परंपराएँ है, उसकी वजह से हमारी प्रगति रुक जाती है । अत: मनुष्य को उसका त्याग करना चाहिए । वरना दुष्प्रथा और अंधश्रद्धा का राक्षस मनुष्य को अपने विशाल मुख में गर्त कर जाएगा । इस प्रकार वीरेन्द्र जैन ने सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न कोण को निरुपित करने का प्रयास किया है ।

५.१ सांप्रदायिकता :-

आजादी के बाद भारत में सांप्रदायिकता के नाम पर हिन्दू और मुसलमानों में आए दिन लड़ाई-झगड़े होते रहते थे । जिसमे बहुत सारे निर्दोष लोग मारे जाते है । लेखक ने 'डूब' में भी सांप्रदायिक हत्याकांड़ का करुण चित्रण किया है । 'डूब' के लड़ैई गाँव में हिन्दू और मुसलमान दोनों आजादी मिलने तक भाई भाई की तरह रहते थे । उनमें न कोई बैर था, न कोई ईर्ष्या । आजादी की खुशी समग्र गाँव को समान रुप से हुई थी । इस गाँव में दो-तीन मुसलमान घटिया ऊपर रहते थे । लेकिन ''आजादी की लहर में जब यह सुना कि मुसलमानों के रहते आजादी का कोई अर्थ नहीं, तब उन्हें भी मार डाला गया । मरते-मरते मुसलमान भी अपने निकटतम पड़ोशी रघु साव का बटाढार कर गए । गाँव में मारे गए सभी मुसलमानों के शव पूरे धार्मिक अनुष्ठान और रीति-नीति के साथ दूर जंगल में गड्ढे खोदकर गाड दिए गए और उन

पर बड़े-बड़े पत्थर रख दिए गए, जो आज 'मुसलमानी पथरा' के नाम से जाने जाते है ।''[२] इस प्रकार हिन्दूओं ने मुसलमानों को मारकर आजादी मिलने का शंख फूँक दिया । संप्रदाय के नाम पर एक दूसरे को मारकर किसी के हाथ मे कुछ भी नही आया । मिली तो केवल मौत ! माते को इस हत्याकांड से बहुत ही दु:ख होता है । ''माते को सब मालूम हो गया है कि आजादी क्या आई है और किससे आई है ।''[३]

माते ने गाँव के मनुष्य तो मनुष्य कांकर-पथ्थर तक को एक ही निगाह से देखा है । तभी तो मुसलमानी पथरा देखकर माते थरथरा जाते है, जहाँ किसी समय मुसलमानों को काटकर पथरों के नीचे दबा दिया गया था । जब गाँव मे सरपंच का चुनाव होता है, उस समय माते को फिर से 'मुसलमानी पथरा' की याद आती है- ''उन पत्थरों के पास से गुजरते हुए माते को बहुत अफसोस होता था । अब वे साचते थे कि- काश ये 'मुसलमानी पथरा' न गड़े होते तो गाँव में तेरह वोट और थे ।''[४] सांप्रदायिक हत्याकांड़ में कई निर्दोष मुसलमान बिना वजह ही मारे जाते है । सांप्रदायिकता की ''यह समस्या एक देश के शरीर पर हुए विषैले फोड़े के समान है। इसमें कोई एक संप्रदाय के अनुयायी जिम्मेदार नही है । समस्त प्रजामानस सांप्रदायिक जड़ता, अंधश्रद्धा एवं गलत मान्यताओं का शिकार है । सांप्रदायिकता का विष भारत की दोनों जातियाँ हिन्दू और मुसलमान में बुरी तरह से व्याप्त है । इस समस्या के कारण देश का समुचित विकास अवरुद्ध हो जाता है ।''[५]

५.२ वर्णव्यवस्था और अस्पृश्यता :-

समाज को वर्णव्यवस्था में इसलिए बाँटा गया है, कि समाज का हर कार्य वर्णो के अनुसार विभक्त हो सके। वर्ण के अनुसार सभी जातियों को कार्य बाँट दिए गए है। लेकिन आगे चल कर इसी वर्णव्यवस्था ने समाज में असमानता पैदा कर दी। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि निम्न जाति के लोगों को समाज का उच्च वर्ग हेय और तिरस्कार की द्रष्टि से देखने लगा। खुद की तुलना में उसे भ्रष्ट और पतिन मानने लगे। उनका स्पर्श करना बहुत बड़ा पाप मानने लगे। लेखक ने अपने उपन्यासों में वर्णव्यवस्था की कुरुपता को उभारा है।

''डूब के लड़ैई गाँव में हर एक जाति के लोग बसते है। माते को गाँव के हर जाति के घर का ब्योरा जुबान पर याद है। उसे याद करते हुए वे कहते है, कि लड़ैई मे ''बीस घर बानियों (साव) के, पचपन घर अहीरों के, तीन घर काछियों के, पाँच घर ठाकुरों के, दो घर गड़रियों के, बारह घर चमारों के, एक घर बसोर का, एक घर ढीमर का, चार बामनों के, तीन घर लुहारों के, एक सुनार का, एक चौकीदार का, दो घर सलैयों के, एक धोबी का, तीन घर खवासों के, एक घर बढ़ई का- कुल ११५ घर।''[६] जब कभी गाँव में किसी बात के लिए सब लोग इकट्ठे होते है, उस समय भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को ध्यान में न रखना बहुत बड़ा पाप माना जाता है। और वह सजा का हकदार भी बनता है। जब मास्साव दुविधा में होते है, तो मास्साव की दुविधा का कारण जानने के लिए पूरा गाँव मास्साव के चबूतरे के पास इकट्ठा होता

है । ''मास्साव के चबूतरे के आस-पास सब के सब अपनी-अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार बैठ गए । बामन, बानिया, और हलकाई ठाकुर ऊपर चबुतरे पर । अहीर, सलैया, लुहार कुछ नीचे चबूतरे पर । उनसे कमतर लोग जमीन पर, और उनसे भी कमतर आँके जानेवाला अनथक महेनतकश मगर समाजी विभाजन के अनुसार नीच कर्म के कर्ताधर्ता जमीन पर फैला बिखरा कूडा-करकट एक जगह समेटकर उस पर बैठ गए ।... अवसर चाहे खुशी का हो या गमी का, अपनी श्रेणी को याद न रखना गुनाह जो है ।''[७] गाँव के ये भोले-भाले लोग जब भी कोई आपत्ति या मुसीबत आती है, तो अपनी श्रेणी को याद न रखकर एक-जूट होकर मदद करने मे लग जाते है ।

लेखकने स्थान-स्थान पर अस्पृश्यता का उल्लेख कर हमारी भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी कमजोरी को खोलकर रख दिया है । लेकिन अब हमारे समाज में भी अट्टू साव जैसे लोग है, जो लोगों में परिवर्तन लाने की गलत परंपरा को तोड़ने की कोशिश करते है । जब अट्टू साव शहर से पढ़कर गाँव आते है, तो वह घूमा को बताते है, कि अब तुम्हे इन जमीदादारों से गभराने की आवश्यकता नही है । अब तो सरकार ने लंबरदारी और जमींदारी समाप्त कर दी है । जो खेत में महेनत करता है, खेत को बोता है, उसका मालिक वही महेनतकश है । जमींदार नही । घूमा जल्दी ही इस कानून के लगने का इंतजार करता है । वह सोचता है, कि अब जमींदार उन्हें नीच कहकर सताएँगे नहीं । साव के दाँव-पेंच तले अब उन्हें दब कर रहना नहीं पड़ेगा । अट्टू साव ने गाँववालों को बताया था कि ''अब इस देश में न कोई ऊँची जाति का

है, न नीची जाति का। बिरादरियाँ समाप्त। सब एक बराबर हैं अब। सबको पढ़ने का हक। सबको वोट देने का हक। सबको एक ही अस्पताल से दवा-दारु पाने का हक। सबको मंदिर जाने का हक। सबको एक ही कुएँ से पानी लेने का हक।''[८] अट्टू साव की एसी बातें सुनकर गाँव के लोग इस बात को सच ही नहीं मानते। अट्टू साव तो यहाँ तक कहते है कि- यहाँ के मूल निवासी तो आप लोग है, जो महेनत-मजदूरी करते है। यहाँ की जमीन और आसमान पर सबसे पहला हक भी तुम्हारा ही है। साँव और जमींदार तो बाद में यहाँ आकर बसे। निम्न जाति के लोगों को एसी बातें स्वप्न द्रष्टि के समान लग रही थी। उन्होने 'दाँतों तले अँगुली दबा ली'। अट्टू साव स्वयं साव होकर निम्न जाति के मजदूरों को उनका हक बता रहे है। क्योंकि वे सत्य का साथ देनेवालों में से है। झूठ और प्रपंच का नही। साव बिरादरी के साथ छल-कपट जुडा है। गाँव के लोग कहते है, कि ''अरे ना रे भाई ना। यह तो केवल किस्से-कहानियों में ही मुमकिन है की जनाउर और बकरिया एक घाट पानी पिएँ।... राजा रामचंदरजी के जमाने में हुआ होगा ऐसा।... सब फिजूल बातें है। चुनाव के बखत वे जो शहराती आए थे, वे भी ऐसी ही बाते बखान रहे थे। रानी भी कुछ ऐसा ही कह रही थी। पर कहने और करने में फर्क होता है। हम तो तब मानते साँची जब रानी हमरी बिरादरी वालों के गले लगती, हमरे टोले तक आती।''[९]

अट्टू साव जब गाँववालों को अपनी जाति, हक और अधिकारों को लेकर जागृत करते है, तो यह बात अट्टू साव के पिता मझले साव को बिलकुल अच्छी नही

लगती । वे अट्टू साव को डपटते हुए कहते है कि- ''तू ये बातें गाँववालों को क्यों बतात है ? शहर में छोड़ आया कर ये नए जमाने की नई-नई बातें । तेरी बातों पर यकिन करके कल को किसी चमार या बसोर की मताई तेरी मताई की बगल में खड़ी होकर कुएँ से पानी भरेगी तब क्या अच्छा लगेगा ? तेरी मताई फिर क्या कभी भी उस कुएँ का पानी पी सकेगी ? तब जानता है क्या होगा ? दिवाले (मंदिर) के कुएँ से पानी भरेंगे ये ओछी जाति वाले और तेरी मताई, काकी, आजी मील भर दूर जाएँगी पानी लेने । फिर कल को ये कमीने जमीन पर नहीं, हमरी बगल में चोंतरा पर बैठकर बाते करना चाहेंगे ।''[१०] तब अट्टू साव मझले साव से कहते है कि- मैं तो कई दिनों से इस दिन के इंतजार में हूँ कि सब एक जगह एक साथ समान रुप से बैठे । तब मझले साव ने अट्टू साव के गाल पर तड़ातड़ तमाचे जड़ दिए । मझले साव उन्हें मारते ही जा रहे थे । अपने बेटे को बहुत पीटने के बाद उन्होंने पूछा कि अब तो उन्हें तु कुछ नही बताएगा ना ? तब फिर भी अट्टू साव का जवाब वहीं रहा कि- अवश्य बताऊँगा ! आखिरकार सच के सामने मझले साव का हाथ अब उठ नही पाया । और वहाँ से चले गए ।

निम्न जाति के मजदूर साव या ठाकुर के घर में प्रवेश नही कर पाते थे । और न तो उनका स्पर्श कर सकते थे । जब उन्हें अपने काम के बदले में मजदूरी लेनी होती है, तब ''देहरी के बाहर अपना कपड़ा बिछा देते है । देहरी के दूसरी तरफ से साव या साउन, ठाकुर या ठकुराइन, महाराज या महाराजिन सेर का बर्तन भर-भर

के अनाज फेंकते रहते है ।... इस फेंका-फेंकी में जितना देहरी के जिस तरफ गिर जाए वह उसी का । बहुत से चतुर सयाने तो नापने में इतने माहिर हैं, कि उनके द्वारा फेंका गया अनाज ज्यादा-से ज्यादा उन्हीं के पाले में गिरता रहता है ।''[११] इस काम में मात्र मझले साव के घर पर ही बेईमानी नही होती । वहाँ साउन और अट्टू साव पूरी सावधानी से अनाज ठीक कपड़े पर ही गिरे इसका बराबर ध्यान रखते है । अत: मजूर बोहनी के नाम पर उन्हीं का चारा काटना पसंद करते है । गाँव के साव और ठाकुर कभी भी यह नहीं चाहते, कि कोई निम्नकोटि का या अस्पृश्य आदमी उनके मुकाबले में खड़ा हो । इसलिए ये सवर्ण जाति के लोग हमेशा अस्पृश्यों को दबाते है । डराते-धमकाते भी है, और उन पर अत्याचार भी करते है । ठाकुर देवीसिंह के अत्याचारों का भोग बने बसोरे का इलाज करने के लिए ''अट्टू साव एक घाव पर दवाई लगाकर पट्टी बांधने की तैयारी कर ही रहे थे कि अचानक मझले साव ने उनके पास से डिब्बा झपटा और कुएँ में फेंक दिया । फिर घूमा को डपटकर कहा, उठा अपने भाई को । तेरी इतनी हिम्मत की हमरी खाट पर... चल उठा और ले जा अपने टपरे में ।''[१२] घूमा ने साव का गुस्से से लाल चेहरा और तनी हुई भृकुटियों को देखा । और तुरंत ही काँपते हुए अपने भाई को वहाँ से उठा लिया । बसोरे कि हालत ऐसी दयनीय थी कि, अगर तुरंत उसका इलाज न किया जाए तो उसकी मौत होने की संभावना थी। लेकिन फिर भी मझले साव को उस पर जरा भी दया नही आई । उन्होने ''माचिस की एक तीली जलाई । उससे एक कपड़े के टुकडे को जलाया और जलता हुआ वह

कपड़ा खाट पर फेंक दिया ।... देखते ही देखते खाट धू-धू करके जलने लगी ।''[१३] फिर अट्टू साव के हाथ में रस्सी-बाल्टी थमाते हुए कहा की, जाओ, जाकर नहा आओ । तुमने बसोरे को छूआ है । कितनी निर्दयता ! यहाँ एक मनुष्य की जिन्दगी और मौत का सवाल है, और मझले साव जाति-गत भेदो में से बाहर ही नही आते। अट्टू साव सोचते है कि अनर्थ तो गाँववाले, ठाकुर और दादा करते है इन मासूमों पर। लेकिन अब मैं ज्यादा अनर्थ नही होने दूँगा । एसा कहते हुए अट्टू साव चमरौटे की तरफ दौड़े । वहाँ घर-घर मे यही हाल था । सब के सब घायल थे । तब उन्होने बिना छूत-अछूत की परवाह किए सबको शहर अस्पताल पहुँचाया । लेखक स्पष्ट करते चलते है, कि वह धर्म किस काम का जिसमें मनुष्य निर्दयी और क्रूरतापूर्ण आचरण करने लगे । अपने मानव-धर्म को भूल जाए ।

गाँव में अट्टू साव के बाद माते एक ऐसे आदमी है, जो परंपरा और रुढियों के बंधनों को तोडते है । वे जातपाँत के बँधनों को नही मानते । माते पूरे गाँव को धीरे-धीरे बदलना चाहते है । जब रामदुलारे ने यशस्विनी के साथ विवाह किया, तब गाँव के लोग जात-पाँत को देखने लगे । और कहने लगे कि ''कैसी भी दशा रही हो मास्साव की, मगर यह तो अधर्म ही हुआ न कि रामदुलारे के साथ एक क्षत्रिय जाति की कन्या..''[१४] तब माते डपटते हुए उन्हें कहते है कि ''जात-पात! अरे, रामदुलारे क्या जात-पाँत में समाने की चीज है रे ! वह लड़ैई का बेटा है । सुना नही था अभी कि उसने अपने हलफनामे में क्या हलफिया बयान दिया है सरकार को ?''[१५] माते

रामदुलारे को जाँत-पाँत से परे बताते हुए कहते है कि ''वह ब्राह्मण के वीर्य से जनमा, अहीरन ने उसको सेया, लुहारिन ने दूध पिलाया। सलैया ने अपनी बाखर में शरण दी, बानिया ने उसकी परवरिश की और अब ठकुराईन ने उसे अपना ठाकुर चुना। अब बता, वह है कौन जात का ? बता कि इसमें से कौन जात के नही हुए तेरे-मेरे भगवान।''[१६] लेखक ने माते के विचारों के माध्यम से जात-पाँत के विरोध में आवाज उठाई है।

कैलास महाराज ने रामदुलारे के साथ अपनी पुरानी दुश्मनी निकाल ने के लिए पूरे गाँव में एलान कर दिया कि, रामदुलारे बसोर की औलाद है। वो तो हमारे दादा ने पुण्य कमाने के लिए और उसे पवित्र करने के लिए उसके पीछे हमारा नाम जोड दिया था। वास्तव में वह निम्न जाति का ही है। और रामदुलारे के साथ यशस्विनी ने शादी की है। अत: उसके संपर्क में आनेवाली यशस्विनी भी नीच और अछूत हो गई। अब उसका स्पर्श करना भी पाप है। रुढिचुस्त गाँववाले कैलास महाराज की बातों में आ जाते है। कैलास महाराज ने मंदिर में आनेवाली औरतों को बताया कि ''यदि तुम उस कुएँ का पानी भगवान के लिए लाई, जिससे यशस्विनी पानी भरती है, तो हम कुबुल नहीं करेंगे। जो हमसे झूठ बोली उसे अंतर्यामी तो देखेंगे ही। वे उसे एसे एसे साप देंगे कि पूरा वंश...।''[१७] कैलास धर्म के नाम पर लोगों को बेवकूफ बनाता है। और रामदुलारे तथा यशस्विनी का राह पर चलना दुभर कर देता है। औरतें अपने बच्चों को उसकी परछाई से दूर रखने लगी।

५.३ अंधश्रध्धा :-

अंधश्रद्धा के अंधेरे में मनुष्य इस प्रकार खो जाता है, कि वह अपने आस-पास हो रहे प्रगतीशील कार्यो को नजर अंदाज कर अंधश्रद्धा की खाई में ही फँसता चला जाता है । किसी भी बात में श्रद्धा हाना अलग बात है और अंधश्रद्धा होना बिलकुल अलग ही बात । मनुष्य एक बार अंधश्रद्धा के चंगुल मे आ जाता है, फिर वह उससे कभी छूट नही पाता । इसी प्रकार की अंधश्रद्धा का शिकार हुए है लड़ैई गाँव के लोग। एक दिन गाँववालों ने बरगद के पेड़ के नीचे गेरुआ रंग का पत्थर देखा । उसके पास अगरबत्ती जल रही थी । फिर न जाने किसी को स्वप्न में आकर किसी ने बताया कि यह पत्थर नही है, साक्षात् पथरा बब्बा है । और उन्होंने इस रास्ते से निकलने वाले हर राहगीर की रक्षा का वचन दिया है । ''बदले में वे बब्बा इतना भर चाहते है कि हर आने जाने वाला उनके थान (स्थान) पर नारियल की जगह पर एक पथरा चढा दिया करे । जो ऐसा नहीं करेगा, उस पर कोई भी दैवी संकट आ सकता है- यह चेतावनी देना भी नहीं भूले पथरा बब्बा के सेवक देव, उस स्वप्न या प्रत्यक्षदर्शी को।''[१८] आज तो उस रास्ते पर पत्थरों का अंबार हो गया है । जिसे देखकर कोई भी नया राहगीर चौंक सकता है । उसे आश्चर्य हो या न हो पत्थर तो उसे भी चढाना पड़ेगा । इसी अंधश्रद्धा का शिकार होते है मोती साव । दरअसल बानिया कभी भी उस रास्ते से नहीं चलते । क्योंकि उस रास्ते पर चल कर तो उन्हें भी पथरा चढ़ाना ही पड़ेगा । और 'पथरा बब्बा' को पथरा चढ़ाना मतलब कुदेव की पूजा करना । और

बानिया कभी कुदेव की पूजा नही करता। मोती साव ने एक दिन उस रास्ते से जाने का साहस किया। और डर के मारे उन्होंने भी अपनी बिरादरी के विरुद्ध पथरा बब्बा को पथरा चढा दिया। घूमा मोती साव को 'पथरा बब्बा' के ऊपर पथरा चढाते हुए देख लेता है। और फिर मोती साव को कुदेव की पूजा करने के फलस्वरुप बिरादरी से बाहर कर दिया जाता है।

नन्ना के गाँव में एक बिरादरी पुण्यात्माओं की है। इस बिरादरी में वहीं व्यक्ति जन्म लेता है जिसने पिछले जन्म मे बहुत पुण्य कमाएँ हो। ऐसा सारा गाँव मानता है। इस बिरादरी मे पुत्र या पुत्री के रुप मे जन्म मिलना भी पिछले जन्म के कार्यो पर निर्भर रहता है। इन लोगों का मानना है, कि जिसने अनंत पुण्य किए है वह आत्मा पुत्र रुप में फल भुगतने के लिए इस बिरादरी मे जन्म धारण करती है, और जिसने थोड़े कम पुण्य किए हैं वह पुत्री रुप मे थोड़े समय तक फल भुगतकर अपने ससुराल चली जाती है। इस बिरादरी की पुण्यात्माएँ ''जब तक भव-बंधन से मुक्ति नहीं मिलती, तब तक अगले तमाम जन्म ऐसे ही पुण्याश्रित कुल और गोत्र मे मिलते रहे, इसके प्रति शतर्क रहती है।''[१९] इसलिए वह सतत पुण्य ही करती रहती है। साथ-साथ लौकिक सुख-साधन भी अपने और अपने वंश के उपभोग के लिए संचित करती रहती है। ताकि पुण्यात्माएँ हर तरह की सुख-सुविधाएँ भुगत पाएँ। और भविष्य में जन्म लेनेवाली पुण्यात्माओं को यहाँ जन्म लेने पर अफसोस न हो। ''यह पुण्यात्मा बिरादरी जानती और मानती है कि सबसे ज्यादा पाप जीव-हत्या में है और सबसे

ज्यादा पुण्य जीवों की रक्षा में है ।... जीव हत्या से बचने के लिए यह बिरादरी जो भी संभव प्रयास है उन्हें अमल में लाती है । जो भी संभवित पाप कर्म है, उनसे बचती है । इसलिए यह बिरादरी खेती-किसानी नही करती । चूँकि खेती-किसानी मे जीव-हत्या निहित है । खेत जोतने, खाद सड़ाने, कुआँ से पानी निकालने, जंगली जानवरों से खेती की रक्षा करने, फसल काटने जैसे कामों में जीव-हत्या से बचना असंभव है, सो यह बिरादरी खेती करना पाप है, ऐसा मानती है । इसलिए सभी पुण्यात्माओं के लिए इन कामों पर पाबंदी है । पकाना खाना चूंकि पुण्यों का फल है, इसलिए उस पर पाबंदी नहीं है ।''[२०] लेकिन इन पुण्यात्माओं के बिच बहुत सारी पापात्माएँ भी वास करती है । और कुछ तो घोर पापात्माएँ वास करती है । जिनसे पुण्यात्मा तो ठीक पापात्माएँ भी नफरत करती है । ''कुछ लौकिक कार्यव्यापार यदि इनके बिना भी पूरे हो पाते होते तो पुण्यात्माएँ और पापात्माएँ मिलकर इन शुद्र नामधारी घोर पापात्माओं को कब का कहीं खदेड आई होती ।... इन पापात्माओं ने और घोर पापात्माओं ने चूँकि पिछले जन्मों में पाप ही कमाए हैं सो इस जन्म में पुण्यात्माओं की बिरादरी से इतर बिरादरी मे जन्म धारण का अवसर पाया ।''[२१] समग्र गाँववालों का मानना है कि यदि एसा न होता तो एक आत्मा पुण्यात्मा मे जन्म धारण कर फल क्यों भुगतती हैं, और दूसरी आत्मा पापात्माओं में जन्म धारण कर दु:ख क्यों उठाती ? साथ-साथ गाँववालों का यह भी मानना है कि ''ये पापात्माएँ चूँकि इस जन्म में भी खेती करके, पशुपालन करके, जीव-हत्या में निमग्न हैं, इसलिए इनका अगले भवों में भी पापात्माओं

के कुल गोत्र में जन्म लेना निश्चित है। ठीक उसी तरह, जिस तरह पुण्यात्माओं का पुण्य कार्यो के चलते पुण्यात्माओं की बिरादरी में जन्मना तय है। चूँकि पुण्यात्माओं का सुखी-समृद्ध होना या पापात्माओं का दु:खी दरीद्र होना पिछले जन्मों के फल पर निर्भर है और पिछला जन्म फिर से लिया नही जा सकता, सो इस नियति मे परिवर्तन असंभव है।... जिसने पिछले जन्म में पुण्य किए उसने यह जन्म पुण्यात्माओं की बिरादरी में पाया और जिसने पिछले जन्म में पाप किए उसने यह जन्म पापात्माओं की बिरादरी में पाया।''[२२] पुण्यात्माओं को डर है कि कहीं पापात्माएँ भी पुजा-अर्चना कर अपने भगवान को मना न ले। वरना भगवान पापात्माओं की बात सुनने लगेंगे। इसलिए पुण्यात्माओं ने भगवान को ताले में बंद कर रखा है, और पूजा पाठ इतने खर्चीले बनाए कि पापात्माएँ उस प्रकार की पूजा कर ही न पाए। और न तो पापात्माओं को मंदिर में प्रवेश करने दिया जाता है। ''पुण्यात्माओं की बिरादरी का चलन है- पाप छुपाकर करो, पापी को दबाकर रखो !''[२३] पापात्माएँ, महापापात्माएं और पुण्यात्माएँ कुछ इस प्रकार है- ''पापात्माएँ अहीर, सलैया, नाई, धोबी, बढई, लुहार, गडरिया, बरेदी, मजूर, किसान जैसे अनंत नामों से पहचानी जाती हैं, पुण्यात्माएँ 'शेठ' और महापापात्माएँ 'डाकू' नाम से ख्यात है।''[२४] इस प्रकार पापात्मा, पुण्यात्मा और महापापात्माओं को लेकर इस गाँव में तरह-तरह की मान्यताएँ है। जिसके तहत बहुतों को अन्याय का शिकार बनना पड़ता है।

अरविंद ने बहुत महेनत करके गाँव के दस-बारह लड़कों को बाँध पर काम

दिलवाया था। अरविंद अपनी कामयाबी पर मन ही मन खुश हो रहे थे, कि अचानक एक दिन उन लड़को ने काम पर जाना छोड दिया। गाँव के बामन कैलास महाराज ने अपने निजी स्वार्थ व ईर्ष्या के चलते गाँव में यह खबर फैला दी कि- ''जो बाँध पर काम करने जाएगा, वह पाप का भागी बनेगा। जो बाँध हमे बर्बाद करने के लिए बनाया जा रहा है, उसमें मदद करना घोर पाप है।''[२५] तब अरविंद ने बहुत समझा-बुझाकर उन लड़कों को इस अंधश्रद्धा से बाहर निकाला और काम पर भेजा।

नरेन के गाँव में एसी प्रथा थी कि शादी के बाद वर-वधू जब तक पहाड़ी के मंदिर मे जाकर दर्शन नही कर आते और आकर वधू जब तक सबको खिचड़ी बनाकर नही खिलाती तब तक उसे भी कुछ खाना नही है। प्रभा पहाड़ी पर भूखे पेट चढ़ती है, तो उसे बार-बार चक्कर आ जाते है। और वह बेहोश हो जाती है। उसने दो दिन से कुछ भी नही खाया। प्रभा को बार-बार चक्कर आते देख सभी ने एक मत से कह दिया कि- ''या तो प्रभा को असाध्य रोग है या फिर उस पर किसी प्रतात्मा का साया है। असाध्य रोग के निवारण का दायित्व प्रभा के पिता पर छोड दिया गया और प्रतात्मा से छुटकारा दिलानें की कोशिश यहीं करने का फैसला लिया गया।... प्रतात्मा को भगाने के सभी प्रयास कर लिए गए, पर प्रेतात्मा ने कुछ न बका।''[२६] इस नाटक में प्रभा बहुत ही बदनाम हो गयी। और उसे संकोच भी होने लगा। पहाड से आने के बाद नरेन तो सो गया था। पर उसके सोने के बाद प्रभा पर क्या-क्या हुआ वह तो सिर्फ प्रभा ही जानती है। जब नरेन को इस बात का पता चलता है, तो वह अपनी

अम्मा से जाकर कहता है कि- ''इन टोटकों के चक्कर में उस बेचारी पर जुल्म क्यों ढाए जा रहे है? आप जानती है कि वह तीन दिन की भूखी प्यासी है । ऐसी हालत मे उसे खाना पानी चाहिए न कि झाडा-बुहारी या ओझाओं के लटके-झटके ।''[२७] वास्तव में प्रभा को कुछ नही हुआ था, वह भूखी थी इसी वजह से उसे चक्कर आ जाते थे, और अंधश्रद्धालु लोग समझते है कि उस पर किसी भूत-प्रेत का साया है ।

५.४ तीज-त्योहार :-

हमारी भारतीय संस्कृति में तीज-त्योहारों का बहुत ही महत्व है । और उसमे भी गाँवों में त्योहारों के समय उत्साहपूर्ण वातावरण छा जाता है । समय-समय पर आनेवाले तीज-त्योहार मनुष्य के दु:ख को कम कर नयी ताजगी व स्फूर्ति से भर देते है । हर रोज मेहनत करनेवाले लोगों की थकान तीज-त्योहार की शांति और मनोरंजन से बिलकुल गायब हो जाती है ।

यदि पर्व-त्योहार नही होते तो मनुष्य मानसिक तनाव और संघर्ष तले दबकर हमेशा पीडा की अनुभूति ही करता । अत: आनन्दानुभूति के लिए भी तीज-त्योहारों का बहुत महत्व है । लड़ैई गाँव से जब मास्साव का तबादला कहीं और होता है, तो पूरा गाँव मास्साव को छोडने के लिए उनके पीछे-पीछे चल पड़ता है । मास्साव के आग्रह करने पर गाँव के लोग उन्हें गाँव की सीमा तक छोड़कर वापस लौट गए । लेकिन अनेका और गोराबाई वापस नही गए । वे मास्साव के साथ-साथ चलते गये । मास्साव को बारह कोश चल कर जाना है । बारह कोश से मास्साव को बारह मासा

और उसके त्योहार याद आ गए ।

मास्साव मदरसा मे आने वाले हर छात्र को बारह मासा त्योहार पूछकर उनके सामान्य ज्ञान की जाँच करते थे । लेकिन आज जाते वक्त मास्साव को वे त्योहार याद ही नही आते । तब वे अनेका से पूछते है, कि हमारे गाँव में किस महीने मे क्या होता है बताओ तो सही । तब अनेका आषाढ़ से शुरु करता है । ''आषाढ मे किसान खेत में बखर, खाद और पाटा का काम निबटाते हैं । पानी बरसने पर मक्का, उड़द, रमतिली, फिकार, कोदों, मूँग, धान, ज्वार की बुवाई, मिराई, गुढाई और बिराउनी करते है ।... इसी महीने की भडरिया नवीं को शादियों का लगन समाप्त होता है ।''[२८] फिर महेनत करने के दिन आ जाते है । सो किसी को गाँव से बाहर जाने की फुर्सत नही मिलती । चारों ओर पानी ही पानी छाया रहता है । फिर ''श्रावण में श्रावणी तीज 'नागपंचमी, रक्षाबंधन, और हल छठी । इस दिन औरतें हल का जुता अन्न नहीं खातीं। पसाई के चावल खाती है, या फलफलादी । फिर आती है भुजरियाँ नवें इस दिन पूजा के लिए बोया गेहूँ एक-दूसरे को देते-लेते है । अच्छी फसल की कामना करते है ।''[२९] मास्साव अनेका से इस पर्व की चर्चा करते हुए पूछते है, कि अनेकसिंह, क्या तुम जानते हो कि इस दिन गेहूँ ही क्यो बोते है ? अनेकसिंह मना करता है । तब मास्साव कहते है कि- वास्तव में श्रावण मे कभी भी गेहूँ बोये नही जाते । गेहूँ का समय तो कार्तिके से चैत्र का है । लेकिन फिर भी श्रावण में इसलिए गेहूँ बोये जाते है कि- इस माध्यम से किसानों की अपार शक्ति नापी जाती है । मनुष्य में और उसमे

भी किसानों में ईश्वर ने इतनी शक्ति दी है कि वह बेमौसमी फसल भी ले सकता है। यह किसानों की शक्ति याद दिलाने का दिन है । ''भादों में जन्माष्टमी । दूसरी फसल की तैयारी । जो खेत अब तक खाली पड़े रह जाते है उनमे असिंचित फसल बोई जाती है । उनकी जुताई शुरु होती है । इसी महिने में बानियों के दस दिन के व्रत होते हैं जिनमें वे हरी चीजें नहीं खाते । कहते है कि इन दिनों साग-तरकारी में जीव निवास करते है । फिर डोल ग्यारस हरियाली चीज जिस दिन औरतें उपवास करती हैं । झुले डल जाते है डाल-डाल पर ।''[३०] गोराबाई बताती है कि भगवान शिव को पाने के लिए पार्वती ने जो व्रत किया था, वही व्रत कुँवारी कन्याएँ अच्छा वर पाने के लिए किया करती है । अनेका ने मजाक करते हुए गोराबाई से कहा कि- तुने नही किया होगा यह व्रत! फिर अनेकसिंह अश्विन (क्वांर) को भूलकर कार्तिक के त्योहारों की बात करने लगता है ।- ''कार्तिक में पहली फसल कटती है । ज्वार और तिली दिवाली के बाद, बाकी सब दीवाली से पहले । इस महीने दशहरा, दीवाली, देवठानी ग्यारस आती है । देवठानी ग्यारस के दिन से शादियों का लगन शुरु होता है जो आगे आषाढ तक चलता है ।''[३१] इस वर्णन में अनेका बीच में भैया दूज का त्योहार भूल गया । गोराबाई ने उसे याद दिलाया, तो फिर से रटने लगा कि हाँ वह भी बीच में आएगा । ''अगहन में दूसरी फसल की बुवाई करते है । गेहूँ, चना, मसूर, दलहन, जौ, मटर, धना, जीरा की चौद को पानी देते है ।...''[३२] फिर बारी आती है पूस के त्याहारों की । पूस मे भी यही सब शुरु रहता है । इस महीने में मकर संक्रांति आती

है, जब तिली से स्नान किया जाता है। क्योकि तब बहुत ही ठंडे दिन होते है। ''फिर आता है माध । कभी-कभी मकरसंक्रांति इस महीने में आती है । वसंत पंचमी, शिवरात्री भी इसी महीने में आती है।''[३३] फिर आता है फागुन। इसी महीने में दूसरी फसल कटने लगती है। इस महीने मे चना होते है। होली का त्योहार भी आता है। ''टेसू के फूल बरबस सबका मन मोह लेते है। रंगपंचमी के दिन से पाँच दिन तक फाग-ही-फाग का उत्सव मनाया जाता है और इसी महीने आती है फाग की भैयादूब।''[३४] फिर बारी आती है चैत की। इस महीने में खेत कटता है। सबको गुड-चना बाँटा जाता है । ''नवदुर्गा, रामनवमी, पूर्णिमा को हनुमान जयंती तेरस को महावीर जयंती इसी महीने में आती है।...''[३५] फिर बैसाख आता है । बैसाख मे परशुराम जयंती अर्थात अक्षय तृतीया यानी अक्ती आती है। मास्साव कहते है- कि हमने अभी पिछले महीने ही परशुराम जयंती मनाई। ''अक्ती के दिन सोन पलाश के पत्ते सुखाकर बाँटते है । एक-दूसरे से अपनी गलतियों की क्षमा माँगते है।... इसी महीने डँगरा बोए जाते है। बेर, कैंत तोडकर सुखाए जाते है। अचार, तैंदू, खिन्नी, आम, महुआ इसी महीने बौराते है।''[३६] और अंत में आता है जेठ का महीना। इस महीने मे लोग अपने आपसी काम निबटाते है । ''इसमें अषाढ की तैयारी, चैत की फसल की धुनाई-सफाई, कार्तिक मे अधूरी छूटी मकानों की मरम्मत, पँगते जीमना, पइपाउनी निबटाना। ये ही काम रह जाते है जेठ के।''[३७] इस महीने मे किसानों को थोडा-सा आराम या फुर्सत मिलती है। इस प्रकार वीरेन्द्र जैन ने बारह-मासा त्योहारों

का वर्णन कर हमारे सांस्कृतिक त्योहारों को वाणी दी है ।

५.५ पूजा–पाठ :–

मोती-साव से कुदेव की पूजा करने का बहुत बड़ा अपराध हो चुका था । अत: वे अपनी बिरादरी के देव को मंदिर में जाकर मनाना चाहते है । और क्षमा प्रार्थना करना चाहते है । मोती साव अपनी भूल के प्रायश्चित स्वरुप मंदिर पहुँचते है । वहाँ पूरी बिरादरी के लोगों को इकट्ठा हुआ देखकर उन्हे किसी षडयंत्र की बू आती है । मगर वे अपनी पूजा-प्रार्थना पर ही ध्यान देते है । उन्होंने 'मेरी भावना' का सस्वर पाठ शुरु किया ।-

''जिसने राग–द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का नि:स्पृह हो उपदेश दिया ॥
बुद्ध वीर जिन हरिहर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति–भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रखो ।
विषयों की आशा नहीं जिनके साम्य भाव धन रखते है ।
निज पर के हित साधन में जो निश दिन तत्पर रहते है ।''[३८]

'मेरी भावना' का पाठ करने के बाद मोती साव ने पूजा सामग्री का थाल सजाया । और पूजा करने लगे । लड़ैई गाँव में संध्या समय की पूजा-आरती और लोगों की श्रद्धा का वर्णन वीरेन्द्र जैन ने बखूबी से किया है । इस गाँव में संझा मैया दो बार आती है । जब पहली बार आती है तब सूर्यास्त के बाद बानियों के मंदिर में

आरती और घंट बजने की आवाज आती है । ''इस समय जैन धर्मावलंबी सभी साव परिवार शाम का भोजन (अंचऊ) करके मंदिर में इकट्ठे होते है, आरती करने के लिए, शास्त्र पाठ (वचानिका) के लिए ।''[३९] बिलकुल इसी समय गाँव के खेतों में काम कर रहे किसान और मजदूर अपना कार्य समाप्त कर गाँव की ओर लौटते है । और बरेदी ढोरों को चराकर वापस आता है । इसके डेढ़ घंटे बाद संजा मैया का आगमन दूसरी बार होता है । ''इस बार संझा मैया के आगमन की सूचना देती है वैष्णव मंदिर में भगवान को भोग लगाने से पहले पुजारी द्वारा बजाई जा रही घंटी की टन-टन, टन-टन, टन-टन की आवाज ।''[४०] टन-टन की आवाज सुनकर जिसे भी ठाकुरजी को भोग लगाना होता है, वह मंदिर में आ पहुँचता है । साथ-साथ जिसे परसाद लेकर आरती में शामिल होना है वह भी उसी समय आ पहुँचता है । इस आवाज को सुनकर गाँव के प्रत्येक घरों से स्त्री-पुरुष और बच्चे निकलकर जल्दी-जल्दी मंदिर की दिशा में चलने लगते है । ''ठीक इसी समय बानिया लोग 'जय संजा मैया की' कहते हुए अपने मंदिर की ओर हाथ जोडकर नमस्कार कर सोने का उपक्रम करते है ।''[४१] मंदिर से लौटकर खाना खाने का कार्यक्रम चलता है, या फिर खेत-खलिहान में जाने की तैयारी । जब खेत पर जाना नही होता तो लोग बैठकर गप्पे लड़ाते है, बाद में सो जाते है ।

पुलिस ने मलखान (पूजा बब्बा) को मार-मार कर दोनों पाँवो से अपंग बना दिया था, लेकिन फिर भी मलखान को सिद्ध बब्बा में इतना विश्वास था कि वह

पहाडी चढकर सिद्ध बब्बा की पूजा-आरती करने नित्य जाता है। ''पहाड़ के ऊपरवाले पुराने गाँव के पुराने मंदिर में सिद्ध बब्बा के सामने जोत जलाने अब भी वही जाता था। यह काम स्वेच्छा से बल्कि जिद करके अपने जिम्मे रख छोडा था। उसका विश्वास था कि इससे उसका परलोक सुधरेगा।''[४२] मलखान की धर्मपरायणता को देखकर गाँव के सभी लोग उसे पूजा बब्बा के नाम से पुकारते है।

पंचम उर्फ अकलंफ जिस अनाथाश्रम में रहता है, वहाँ सुबह सबसे पहले आरती होती है। आश्रम के लड़के आरती करने के बाद सभी कार्य करते है। अकलंक उत्तम के साथ सुबह उठकर आरती करने जाता है। दो लड़कों ने आरती की शुरुआत की और अन्य लड़कों ने उनके बोल दोहराए-

''राजा, राणा, क्षत्रपति, हथियान के असवार,
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।
दल-बल, देवी-देवता, मात-पिता परिवार,
मरती-बिरियाँ जीव को, कोऊ न राखन हार।
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान,
कबहूं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।
आये अकेला अवतरे, मरे अकेला होय,
यों कबहूं न इस जीव को, साथी सगा न कोय।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय,
धन-संपति सब प्रगटे थे, पर हैं, परिजन लोय।''[४३]

इस प्रार्थना के बाद उत्तम अकलंक को सुबह का नित्य-क्रम बताने लगा । आश्रम में रहते-रहते अकलंक को एक बहुत बुरा अनुभव हुआ । उसने पाया कि आश्रम में न्याय, हक, अधिकार, कर्तव्य, सत्य जैसी भावनाएँ मर मिटी है । खुद को हुए अन्याय की फरियाद आखिरकार अब वह कहाँ जाकर करे ? तब उसने सोचा कि जो अंतर्यामी है, वह सबकी बातें सुनता है, सबके दु:ख हरता है और सत्य का साथ देता है । ईश्वर की प्रार्थना शुरु होते ही अकलंक ने सबके स्वर से स्वर मिला दिया और तल्लीन होकर प्रार्थना गाने लगा । ''पूजन उसे कंठस्थ थी ही । गाँव में बाई के साथ प्रतिदिन मंदिर में बोलता रहा था । बाई को पढ़ना नहीं आता, इसलिए पहले पढ़कर, फिर कंठस्थ होने के बाद बिना पढ़ें ही बाई को पूजन करने में सहयोग देता आया था वर्षो से ।''[४४] प्रार्थना के वक्त अकलंक के ध्यान में यह बात नहीं रही कि वह अकेला पूजन नही कर रहा, समूह के साथ प्रार्थना कर रहा है । वह पद्य बोलने में इतना तल्लीन हो जाता है कि ''जब पद्य बोलते-बोलते अकलंक को तृप्ति की अनुभूति होती, वह स्वयं ही स्वाहा वाला, अर्ध्य अर्पित करनेवाला मंत्र भी बोलता रहा। शेष लड़कों के पास कुल एक काम रह गया । स्वाहा कहते समय अपना स्वर शामिल करना और वेदी पर पूजा की थाली से अर्ध्य अर्पित करना ।''[४५] समग्र पूजा की आरती अकलंक आँखें बंद करके बोलता रहा । सब उसकी एकाग्रता को देख आश्चर्यचकित हो रहे थे । लेकिन अकलंक को इस बारे मे कुछ भी पता नही था । वह तो स्वाभाविकतापूर्वक पूजा कर रहा था । ''वह आश्रम में है, आश्रम के मंदिर

में है, उसे तो यह भी ख्याल नही रहा था। वह तो मन-ही-मन अपने को गाँव के मंदिर मे पा रहा था। सामने वही भगवान थे और साथ में बैठी थी बाई...।''[४६] मास्टर कृष्णचंद्रजी अकलंक की तल्लीनता देख बहुत ही प्रसन्न हुए। और उन्होंने अकलंक को शाबाशी देते हुए कहा कि- ईश्वर की आराधना मे खुद को भूल जाना श्रेष्ठ स्थिति है। तब अकलंक ने आँखे खोली। सबको अपनी तरफ देखते हुए देखकर अकलंक शर्म का एहसास करने लगा। आँसूओं को रोककर वह जल्दी ही मंदिर की सीढ़ियाँ उतर गया।

पंड़ितजी ने धर्म की आड़ मे अकलंक का शारीरिक शोषण करने का प्रयास किया। तब उनके चंगुल से छुटा हुआ अकलंक बहुत ही दु:खी है। धर्म के पीछे छुपे हुए राक्षस को आज उसने देख लिया। जब मास्टरजी हारमोनियम पर प्रार्थना शुरु करते है, तब अकलंक राजेन्द्र के साथ मिलकर प्रार्थना शुरु करता है।-

''दुख भी मानव की संपति है,
तू क्यों दु:ख से घबराता है।
दुख आया है तो जाएगा
सुख आया है तो जाएगा।
दुख जाएगा तो सुख देकर,
सुख जाएगा तो दुख देकर।
सुख देकर जाने वाले से,

मानव क्यों भय खाता है ।

दुख भी मानव की संपत्ति है,

तू क्यों दुख से घबराता है...।''[४७]

प्रार्थना पूर्ण होते-होते अकलंक का गला भर आया । वह अत्यंत संवेदनशील होकर प्रार्थना गा रहा था । अत: प्रार्थना और भी रसप्रद एवं मार्मिक हो जाती है । ''वह वहाँ होकर भी तब वहाँ था ही नही जैसे । केवल आँखों से झरते आँसू और कंठ से फूटते बोल... ''हे प्रभु, आसरा मोहि तेरा, राख ले अपने चरणों का चेरा...'' उसके होने का सबूत दे रहे थे ।''[४८] मेहमान के रूप में आए सेठ-सेठानीजी अकलंक को एक टक देखते रहे । पूजा करते वक्त अकलंक का विशिष्ट रुप देखकर साश्चर्य सेठजी अकलंक को पूछते है कि, तुम अपने आपको ईश्वर मे इतना ध्यानस्थ कैसे कर पाते हो ? तब अकलंक ने मन ही मन कहा कि इसके लिए दु:ख झेलना पड़ता है, तब ईश्वर को हृदयपूर्वक प्रार्थना कर सकते है ।

५.६ शिक्षा :-

पंचम के मँझले भैया को जिस गाँव में अध्यापक की नौकरी मिली, वहाँ पाँचवी कक्षा तक का ही स्कूल था । अत: मँझले भैया पंचम से छोटे दोनो भाईयों को वहाँ पढ़ाने ले गए । ''सँझले भैया ने ग्यारहवीं, हलके भैया ने नवमी कक्षा पास कर ली । पंचम भी दर्जा पाँच मे पहुँच गया ।''[४९] इस दौरान घर की स्थिति एसी हुई की घर में मौजूद सारा सामान और घर के बर्तन तक बारी-बारी से बिक गए, लेकिन फिर भी

दादा ने अपने बेटो की पढ़ाइँ जारी रखी । घर मे अब दादा और बाई के साथ पंचम रह गया था । उसे भी अब आगे पढ़ना था । लेकिन पढ़े कैसे ? शिक्षा दादा के परिवार की परंपरा है, पर घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने की वजह से अब दादा पंचम को कैसे पढ़ाएँ? ''पंचम से छोटे दोनों भाई मँझले भैया के साथ जा चुके है । वे उन्हीं के साथ रहेंगे, वहीं पढ़ेंगे ।... दर्जा पाँच पास करते ही पंचम को भी गाँव से जाना होगा । कहाँ ? यह अभी तय नहीं है ।''[५०]

दाऊ और भाभी के उपचार में दादा के बहुत पैसे खर्च हो गए, अत: दादा ने तो अब स्पष्ट कर दिया है, कि वे अब किसी भी बेटे को पढ़ा नही पाएँगे । सो अब पंचम की आगे की पाढ़ई खतरे मे है । पंचम को इस वर्ष एसा लग रहा था कि शायद वह पाँचवी कक्षा में पास नही हो पाएगा । क्योंकि ''मदरसा के मास्टरजी प्राय: कक्षा में पढ़ाते ही नही थे। पाँचवी मे कुल दस विद्यार्थी थे । इनमे से नौ और गाँवों के थे। पंचम अपने गाँव से आनेवाला अकेला विद्यार्थी था । पंचम के अलावा शेष नौ के नौ विद्यार्थी मास्टरजी को पाँच रुपया महीना देते थे । सो मास्टरजी उन्हें मदरसा की छुट्टी के बाद पढ़ाने लगे थे । मदरसा का समय मास्टरजी फुलवारी मे पानी सिंचवाने, मदरसा का मैदान साफ करवाने, दौड, कबड्डी या कोई और खेल खिलवाने में खर्च कर देते थे ।''[५१] पंचम ने यह बात अपने दादा से बताई तब दादा ने उसे हर महीने पाँच रुपया देने से साफ इन्कार कर दिया । और साथ मे उसे वह हिदायत भी दे दी कि यदि इस वर्ष पंचम अनुतीर्ण हुआ तो उसे अगले साल दाखिला भी नहीं दिलवाएँगे।

क्योंकि यह बात अब दादा की सामर्थ्य से बाहर थी । ''दादा पंचम की पढ़ाई के प्रति उस तरह चिंतीत नही थे, जिस तरह दाऊ, मँझले, सँझले भैया और हलके भैया की पढ़ाई को लेकर रहते थे ।''[५२] पंचम को आगे पढ़ाना भी है या नही यह भी दादा ने अभी तक तय नही किया था । आखिरकार पंचम ने अपनी पढ़ाई की समस्या का समाधान खोज लिया । उसने अपनी कक्षा के दो लड़को से मित्रता कर ली । और मास्टरजी उन्हे जो पढ़ाते वह सब सुनकर पंचम ग्रहण करने लगा और पढ़ाई का सिलसिला चल पड़ा । ''तीनों में यह समझौता हो चुका था कि इस रहस्य को कोई भी मास्टरजी या किसी भी सहपाठी के सामने उजागर नही करेगा । अपमान में, न अभिमान में । कसम में, न ठसक में । भूल में, न भुलावे में ।''[५३] अगर सँझले भैया को इंटर पास करते ही नौकरी मिल जाए तो पंचम की पढ़ाई जारी रह पाएगी । वरना उसे घर बैठकर दादा को मदद करनी होगी । पंचम दर्जा पाँच में पास तो हो जाता है । लेकिन आगे की पढ़ाई के सारे रास्ते बंद हो जाते है । तब मामा पंचम को अनाथ बनाकर अनाथाश्रम में आगे की पढ़ाई के लिए भेज देते है । जब पंचम उर्फ अकलंक को यह पता चलता है कि पढ़ाई करने के लिए उसे अनाथ बनना पड़ेगा, सारे रिश्ते-नाते छोड़ने होंगे, तो वह एसी शिक्षा को धिक्कारता है । और शिक्षा छोड़ वापस अपने गाँव आना चाहता है, लेकिन उसकी एक नही सुनी जाती । एसी शिक्षा किस काम की जिसके लिए अपने माता-पिता से नाता तोडना पड़े । अपने वजूद को खो देना पड़े...!

लड़ैई गाँव के लोग शिक्षा के प्रति सभान है । वह अपने बच्चों को स्कूल में पढ़ने

के लिए भेजते है । मास्साव समय-समय पर गाँववालों को शिक्षा का महत्व समझाते है । और कहते है, कि शिक्षा हर एक के लिए जरुरी है, अशिक्षित मनुष्य का विकास कभी भी नही होता । मास्ताव को एक स्वप्न है कि उनके गाँव की मदरसा को मिडिल स्कूल मे या हाईस्कूल में तब्दील कर दिया जाए । ताकि आगे की पढ़ाई के लिए बच्चों को कहीं और न जाना पड़े । बच्चे यहीं रह कर पढ़ाई कर सके । मास्साव जिल्ला-शिक्षाधिकारी से मिलने के लिए ''मदरसा के तमाम रजिस्टर, परीक्षा-फल, यहाँ तक कि अपने मदरसा से निकले बच्चे बाद में जहाँ-जहाँ पढ़ने गए उनका पूरा ब्यौरा, अड्डू की डॉक्टरी की पढ़ाई की पक्की रपट, इंजीनियर, ओवरसियर बनने को एकदम तैयार अपने गाँव के बच्चों का पता-ठिकाना, सब साथ लेकर गए थे ।...''[५४] लेकिन मास्साव के रिपोर्ट और अर्जियो का उन पर कोई असर नही हुआ । मास्साव ने शिक्षाधिकारी से यह भी कहा कि, पहले आप ये सारी व्यवस्था स्वयं अपनी आँखों से देख ले, बाद में हमारे मदरसा को मिडिल स्कूल में तब्दील कीजिएगा । मास्साव की ''तमाम दलीले सुनने के, हमारे तमाम प्रमाण देखने के बाद जिल्ला शिक्षाधिकारी बहुत प्रसन्न हुए ।''[५५] उन्होने सब से ज्यादा तारीफ गाँव के लोगों की कि, जो शिक्षा का महत्व समझकर बच्चों को मदरसा में पढ़ने के लिए भेजते है । शिक्षाधिकारी ने मास्साव से खुश होकर कहा कि- हम आपको शिक्षक-दिवस पर इनाम दिलवाएँगे और किसी मिडिल स्कूल में हेडमास्टर भी बनाएँगे । तब मास्साव ने उनसे कहा कि, मुझे कुछ नही चाहिए । हमारे गाँव के बच्चे पढ़ पाए इसलिए मदरसा को मिडिल स्कूल में तब्दील कर दीजिए।

मास्साव की बातें सुनकर शिक्षा-अधिकारी बोले कि, ''हमें आपकी इच्छा पूरी करके बहुत प्रसन्नता होती जगतसिंहजी । हम आपकी भावनाओं की कद्र करते हैं मास्टरजी, मगर क्या है कि हम ऐसा कर नहीं पाएँगे, इसका हमें बेहद अफसोस है ।... आपका गाँव राजघाट बाँध परियोजना मे डूब क्षेत्र में आ रहा है । इसलिए हमे ऊपर से आदेश आया है कि वहाँ से मदरसा हटा लिया जाए और वहाँ नियुक्त अध्यापक का तबादला कहीं और कर दिया जाए...।''[५६] इस गाँव के लोग अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते है । लेकिन सरकार बड़ी-सी परियोजना के तहत बहुत सारे बच्चों के भविष्य के साथ खेल रही है । लोग चाहते है कि हमारे बच्चे और आगे बढ़े । लेकिन सरकार विकास की अँधी दौड में बच्चों को आगे की शिक्षा के लिए अवसर प्रदान तो नही करती, लेकिन बच्चे अपने गाँव में जो सामान्य शिक्षा हाँसिल कर रहे है, उन्हें भी छिनना चाहती है। अब सवाल यह उठता है, कि विकास- योजना के तहत इन बच्चों ने क्या बिगाडा है, जो उन्हें सामान्य शिक्षा देना भी बंद कर दिया जाता है । वास्तव में 'सर्व शिक्षा अभियान' के ढोल पिटे जाते है, और जो पढ़ना चाहते है, उनसे कागज और पेन छिन लिए जाते है... यह कैसा अन्याय है...!

५.७ रीति-रिवाज :-

परंपरा से चले आते रीति-रिवाज चाहे वर्तमान में उचित हो या अनुचित मनुष्य हमेशा उसका अनुसरण करता आया है । आधुनिक युग में भी व्यक्ति रीति-रिवाज के बोज तले इस कदर दबा रहता है कि कभी-कभी तो उसे इस परंपरा में घुटन-सी

महसूस होने लगती है । स्त्रियों के घूँघट में रहने की प्रथा आदिकाल से चली आ रही है । आज भी गाँवों में स्त्रियों को घूँघट में रहना पड़ता है । 'पंचनामा' में बाई ने ''पौर के भीतर कदम रखते ही सिर से पल्लू हटा लिया । अपने दोनों हाथों से पीठ पीछे पौर के दरवाजों को उठकाती बाई को होश नही था कि सिर से हटाया पल्लू कब कमर तक के बदन को उघाड़ता जमीन से आ लगा है ।... बाई को सिर से पल्लू हटाने के अवसर कम ही मिलते है । जब भी घर में कोई पुरुष हो, बाई को न केवल सिर कना होता है, बल्कि घूँघट में रहना होता है ।... बाहर तो बिना घूँघट किए जाया ही नही जा सकता । भले ही दूर-दूर तक रास्ता वीरान हो । किसी पुरुष के प्रकट हो जाने के आसार न हो । बड़े घर की बहूओं को घूँघट में रहना चाहिए । उनका मुख-कमल किसी पुरुष को दिख जाए, यह सुलक्षणा की नहीं, कुलक्षणा की निशानी है।''[५७] गाँव के लोग जानते है कि इस गाँव का कोई पुरुष कुटैबी नही है । दूसरे गाँवों के पुरुष के जो किस्से सुनने मे आते है, वैसे किस्से इस गाँव में घटित नही होते, लेकिन फिर भी किसी सुलक्षणा का चेहरा किसी भी ग्रामवासी की नजरों में चढ़ना चाहिए नही । अगर गाँव का कोई पुरुष किसी स्त्री का चेहरा देख लेता है, तो वह तुरंत अपने हमउम्रों के बीच में यह बताता रहता है, कि साहूकार की स्त्री गोरी-चिट्टी है या काली कलूटी । ''बाई इस मुहिम पर इतनी सावधान रहती है कि पर-पुरुष अपना पुरुष ही नहीं, उनके बेटों को भी बाई का मुख कमल कभी-कभार देखना नसीब होता है ।''[५८] बाई के बेटे पंचम ने भी आज पहली बार बाई के मुख कमल को गौर से देखा ।

नरेन की अम्मा का मानना है, कि पति और पिता का नाम बोलने से उनका अपमान होता है, और पाप लगता है । ''अम्मा स्वयं भी इस संबंध में काफी सतर्क रहती थी । यदि भूल से उनके मुँह से ऐसा कोई शब्द निकल जाए तो उपवास करके प्रायश्चित किया करती थी ।''[५९] एक बार नरेन के घर फोन आता है । फोन में नरेन की पत्नी प्रभा नरेन का नाम लेकर बता रही थी कि नरेन तो घूमने गए है । प्रभा के मुख से अपने पति नरेन का नाम सुनकर अम्मा बहुत क्रोधित हुई । ''प्रभा के मुँह से नरेन का नाम सुन लेना ही अम्मा ने सृष्टि में प्रलय की घोषणा का सूत्रवाक्य समझ लिया ।... पहले तो उन्होने प्रभा की काफी लानत मलामत की और इसके बाद उन्हें यहाँ रहना कष्टकर लगने लगा । पाप का भागी बनने वाले संवाद उन्हे और न सुनने पड़े इसलिए अम्मा जिद कर बैठी कि नरेन उन्हें जल्दी-से-जल्दी रेल में बैठा आए ।''[६०] नरेन को बचपन से ही मालूम है कि अम्मा पिताजी का नाम तो क्या, उनके नाम वाला कोई भी शब्द किसी भी व्यक्ति द्वारा बोला जाना पिताजी का अपमान समझती है । नरेन के पिता का नाम, पारसदास जैन है । अत: ''सभी भाई-बहनों को अम्मा की ओर से सख्त हिदायत रही है कि 'पारस' शब्द जिस किसी भी नाम के साथ जुडा हो उस नाम को अपनी जुबान से न लेने का भरसक प्रयास करें ।''[६१] अम्मा के मुँह से भी यदि कभी ऐसा कोई शब्द भूल से निकलता है, तो वह उपवास करके अपने पाप का प्रायश्चित किया करती है । अम्मा हंमेशा जो भजन गाती है, उसके बोल कुछ इस प्रकार है- ''तुमसे लागी लगन, ले लो अपनी शरण, पारस-

प्यारा, मेटो-मेटो जी संकट हमारा..''[६२] इस भजन को अम्मा बिच में पिताजी का नाम 'पारस-प्यारा' आने की वजह से उसे बदलकर इस प्रकार गाया करती थी- ''तुमसे लागी लगन, ले लो शरण नरेन के बाबू, मेटो-मेटो जी संकट हमारा..''[६३] एक दिन आलोक भैया अम्मा को इस प्रकार गाते हुए देख लेता है, और उनकी बहुत ही हँसी उडाता है । और कह देता है कि ''काकी, नरेन का अर्थ भी पारसनाथ होता है। तुम्हें याद नही पारसनाथ की स्तुति में उनके कई नाम गिनाए हैं, जैसे- नरेन्द्र, फणीन्द्रं, सुरेन्द्रं, अधीशम्...''[६४] आलोक की बात सुनकर अम्मा अब उस भजन में 'नरेन के बाबू' के स्थान पर ऊँ..ऊँ..ऊँ.. किया करती है । तब भी आलोक फिर से हँसी उडाता हुआ कहता है कि अम्मा ऊँ..ऊँ... का मतलब भी तो 'पारस-प्यारा' ही हुआ । आप मन-ही-मन तो बाबूजी का नाम बोलती ही है । तब अम्मा अपने आप को बहुत बड़े धर्म-संकट में पाती है । और बाद में उन्होंने वह भजन गाना ही छोड दिया । और नरेन का मतलब ''पारस'' होने की वजह से उन्होने ''नरेन'' को भी नरेन के बजाय 'बड़ा' कहना शुरु किया । फिर अम्मा कहती है कि ''इसके बाबू को भी क्या सूझी जो इसे अपना नाम देकर मुझे मुसीबत मे डाल दिया । दुनियाभर के नाम खत्म हो चुके थे क्या ?''[६५] जब अचानक पिताजी ने इस बात पर गौर किया कि अम्मा नरेन को ''बड़ा'' कहकर पुकारने लगी है, तब बाबूजी भी खुब हँसने लगे और कहने लगे कि- ''नरेन का अर्थ किसी भी रुप में पारस नही होता । तब कहीं जाकर नरेन पुन: बड़े से 'नरेना' और फिर 'नरेना' से 'नरेन' बन सका ।''[६६] और

यह सब नरेन बचपन से ही देखता चला जा रहा था । अत: नरेन को लगा कि अम्मा के स्वभाव से पति का नाम न लेने का रिवाज छूट नही पाएगा । उन्हें समझाने का अब कोई अर्थ ही नही है।

५.८ आदिवासी संस्कृति :-

आदिवासी संस्कृति ग्रामीण संस्कृति और शहर की संस्कृति से बिलकुल अलग पड़ती है । आदिवासियों के पास न तो शिक्षा-दिक्षा है, न रहन-सहन का ढंग है । लेखक ने आदिवासी संस्कृति के रहन-सहन, विचार, प्रथाएँ और उनकी बोली को बखूबी उभारकर आदिवासी संस्कृति की वास्तविकता से हमारा परिचय करवाया है । आदिवासी संस्कृति समाज और बाहरी दुनिया से कटी हुई होती है, अत: उनके पास विकास की एक किरन भी नही पहुँचती । आज भी उनकी स्थिति बिल-कुल वैसी ही है, जैसी बरसो पहले थी ।

'पार' की आदिवासी संस्कृति का निरुपण लेखक ने इतनी सूक्ष्मता से किया है, कि पाठक उस संस्कृति के रीति-रिवाजों में घूमने लगता है । 'पार' के जीरोन खेरे मे मसूर खेरे के कुछ लोग आए थे । साथ मे आया था उनका मुखिया । मसूर खेरे का मुखिया जवान-गबरु था । ''उसके संग थे कई और जन । कुछ संगाती उम्र में मुखिया से बड़े, कुछ अधबूढे और कुछ हमउम्र । साथ मे थे कई ढोर ड़ाँगर । दुधारु गाएँ, जबर भैसें, दो बैल और गल्लन छिरियाँ-बकरियाँ ।''[६७] मसूर खेरे के मुखिया के आने की वजह से जीरोन खेरे के मुखिया ने पंचायत बुलाई थी । और उनके बुजुर्ग

मुखिया के सिधार जाने पर शोक भी व्यक्त किया । साथ-साथ उनसे जीरोन खेरे में आने का कारण भी पूछा गया । तब मसूर खेरे के मुखिया ने अपनी दुविधा और संकट बताया कि ''भंड़यन ने, डाकुअन ने हमरी नाक में दम कर दिया । आए दिन डाकू कंधा पे बंदूक टाँगे आने लगे । खेरे में धमा-चौकडी मचाने लगे । हर बार जो भी कोई गिरोह आता, हमरी एक दो जनीं, कि मौढ़ियन को हाँक ले जाता । न हम कभी उनका कुछ बिगाड पाए न उन्हें रोक पाए, न हटक पाए ।''[६८] पहले तो डाकू जिस जनीं को उठाकर ले जाता वह महीना, दो महीना बाद वापस लौट आती । लेकिन अब तो टपरा और खेरे से गई जनीं कभी भी वापस नहीं आती है । अब खेरे की हालत यह हुई है कि, जनीं (स्त्रियाँ) कम है और जन (पुरुष) की संख्या अधिक है। मोढी-मोढन (लड़की-लड़के) की भी यही स्थिति है । ''अब संकट यह है कि खेरे में एका कैसे रहे । सारे काम कैसे निबटे ! पकाना-खाना, गोढ़ना-कूटना, बीनना-छानना, छाबना-बटोरनां, सब अल्ल-पल्ल हुआ रहता है ।''[६९] वह जीरोन खेरे के मुखिया को विनंती करता है कि ''हमरे संग आई ये गैया-भैसे, छिरियां, बकरियां तुम रख लो और अपने खेरे की कुछ जनीं हमरे संग पढ़ै दो । तुमरे खेरे में तो न जनीं कम है, न मौढी । तुम्हें मवेशी मिल जाएँगे और हमरा काम सध जाएगा । न जाना चाहे जनीं तो कुछ डोर बँधने की उमरवाली मौढियन को हमरे संग पठै दो ।''[७०] मसूर खेरे का मुखिया गाय बकरियाँ देकर बदले में जीरोन खेरे की स्त्रियाँ लेना चाहता है। भेड़-बकरियों के साथ स्त्रियों की तुलना कर सौदा करना चाहते है । तब जीरोन खेरे

का जागृत मुखिया कहता है कि ''एक जमाना था जब मवेशी के बदले मौढ़ी की मौढ़ी के बदले मवेशी लेते-देते रहे हमरी बिरादरी में। पर कब ? जब इक्का-दुक्का डेरा डालकर रहते रहे, तब। अब यह मुमकिन नहीं। अब नहीं लेखते हम अपनी मौढ़ी को मवेशी बरोबर।... कुनबे की परवरिश, देख-रेख, मान-मर्यादा का ख्याल रखना हमरा पहला धरम है। अब हम आदमियों की नाई जीने का ढंग सीख रहे है। आदमी बनना है तो उनके नेक नियम-धरम अपनाने होंगे कि नहीं !''[७१] जीरोन खेरे का मुखिया बहुत ही जागृत है। वह मसूर खेरे के मुखिया को कहते है कि हम अपने खेरे की स्त्रियों को सैंकडों बरस पीछे की जिंदगी जीने जाने नहीं देंगे। अब हम बदलना चाहते है, बदल चूके है। और तब मसूर खेरे का मुखिया खाली हाथ वापस लौटता है।

जीरोन खेरे में यह नियम है कि मुखिया माई को देह सुख से वंचित रहना है। मुइया के बेटे को अगला गुनिया (सरपंच) घोषित किया जाता है। लेकिन मुइया से देह का ताप सहन नहीं होता। अत: वह अपना जीरोन खेरा छोड़कर मुसर खेरे में चली जाती है। ''मोरे जन को काहे का टोटा। मैं रही, न रही एक-सी। अब आस-औलाद तो मैं दे नहीं सकती थी। कहीं दे न दूँ, इसीलिए तो दस कदम दूर छिटका रहता है मुझसे।... मैं खेरे में रही होती तो देह से हारती ही हारती। अपने जन को भी ले डूबती।''[७२] जब मुइया मसूर खेरे में पहुँची तो ''मूसर खेरे में मुइया का सत्कार ही हुआ। हाथों-हाथ लिया मूसर वालों ने मुइया को।... जीरोन की मुखिया-माई चल कर आई है उनके पास! जीरोन के मुखिया का छैंका लाँध कर। उस खेरे से,

जहाँ का मुखिया एक मौढी तक देने को राजी न था !... अब कहाँ गई जीरोन के मुखिया की नाक ? बंदिश ने फोड दिया न एका! चला था ''राउत से आदमी बनने ! उनके तौर-तरीके सीखने ! अरे, राउत (आदिवासी) हो तो राउतो के-से नियम-धरम चलाओ । राउतों के रिवाज अपनाओ ।''[७३] मूसर खेरे में मुइया के देह की मंशा तो पूरी हुई पर उसे सुख नही मिला । क्योंकि मूसर खेरे के सब पुरुष सब स्त्रियों के है, और सारी स्त्रियाँ सारे पुरुषों की । कोई किसी की पत्नी नहीं, कोई किसी का पति नही । मुइया ने मुसर खेरे को कई संताने दी । लेकिन कौन सा लड़का या लड़की किस पुरुष के है यह तो मुइया भी नही जानती । मूसर खेरे की ऐसी रीति-नितियाँ देखकर मुइया का मन भर गया, उसे फिर से जीरोन खेरा याद आने लगा ।

जब लड़ैई गाँव के मवेशी जीरोन खेरे की डाँग में चारा चरने आते है, तो जीरोन खेरे का मुखिया चिंतित होने लगता है । वह सोचता है कि अगर गाँव के मवेशी आकर हमरी डाँग का चारा चर जाएँगे तो हमरे मवेशी क्या खाएंगे । ''कल को गाँववाले जलावन लेने आने लगेंगे । हमरी डाँग रिता जाएँगे । अब भी जब तक किसी न किसी गाँव के लोगू लकड़ियाँ काट ही ले जाते है । अभी तो डर के मारे कभी-कभार हिम्मत करते है । गैल से जान-चिनार हो जाने पर तो निडर होकर आएँगे, बेधड़क रुख के रुख काटेंगे । तब हम कंद-मूल, फल-फूल, जडी-बूटी, जलावन-छाजन कहाँ से पाएँगे ? हमरी तो डाँग ही आसरा है ।''[७४] मुखिया गाँववालों से डरता है । उसे चिंता है कि कहीं गाँववाले उनकी डांग पर कब्जा कर लेंगे तो वह सब जाएँगे

कहाँ ? उन्होने तो दीन-दुनिया देखी नही । न तो उन्हें बोलने-चालने का ढंग ही आता है । और इतना ही नही गाँव का कोई भी आदमी इन आदिवासियों को भूल से भी गाँव में देख लेता है, तो उन्हें मार-गिराता है । एसी स्थिति में वह जाएँगे कहाँ ? उपर से इन राउतों के पास अपने बदन को ढाँकने के लिए कपड़ा भी नही है । जीरोन के मुखिया कहते है कि हमे खुले बदन रहने का कोई शौक नही है, यह तो हमारी लाचारी है । ''लता कहाँ से लाएँ हम । तुमरे पास बाडू हो तो दे दो । पहन लेंगे । वही लपेट कर तुमरे गाँव में आ जाएँगे । तुमरा जस गाएँगे, तुमरे काम सलटाएँगे ।''[७५]

राउतने जंगलों की चीजें लेकर गाँव में बेचने जाती है । बदले में गाँव की औरतों से राउतने कपड़ा-लत्ता पाती है । राउतने ''चिरौंजी देने, तो कभी गाद देने, तो कभी जलावन देने, तो कभी बीजना, दुकनिया, गांजिया, पिरिया, सूप तो कभी तैंदू, अचार, करौंदे, खिन्नी, मढुआ देने । कभी पनैया-जुतियाँ देने ।''[७६] इन चीजों के बदले में आदिवासी स्त्रियों की इच्छा नही जानी जाती । गाँव की औरतों का जो भी मन हो वह उसे दे देती है । दयनीय स्थिति तो यह है कि आदिवासी स्त्रियाँ गाँव वालों की भाषा भी समझती नही है।

दुनिया ने दूसरा ब्याह करते ही जैसे ही 'हा' भरी मुखिया ने गौड़ बब्बा के स्थान पर मढ़वा गडा दिया । डोर बँधन की (शादी की) उम्र वाली चार लड़कियों की रस्म भी साथ-साथ करने का फैसला किया गया । पूरी चाँद की रात यह रस्म करने का फैसला लिया गया । ''जब तक वह दिन नहीं औाया, खेरे में खूब रास-रंग रहा।

ढोल और गीतों के स्वर आकाश गुंजाते रहे । अंधियाई के सातो पहाड ढोल की आवाज पर थर-थर काँपते रहे । तांड़व करते रहे ।''[७७] सबको जिस दिन का इंतजार था वह दिन भी आ गया । पूरा खेरा गौड़ बब्बा के स्थान पर आ गया । ''मंढ़वा के एक तरफ पछिया, परिया, टिनिया, छिंकिया को बैठा दिया गया । दूसरी तरफ गुरया, मनया और बनया को ।''[७८] यहाँ पर लड़कियाँ है चार और लड़के है तीन । आज ये सभी लड़के और लड़कियाँ जन और जनीं बन जाएँगे । राउतों की इस प्रथा में लड़का ढोल बजाता है, और जो भी लड़की उस लड़के के साथ शादी करना चाहती है, वह अपनी जगहू से उठकर ढोल बजाने वाले लड़के के सामने आकर खड़ी रह जाती है। और यही उसकी जनी बनती है । फिर दोनों साथ-साथ घर लौटते है । रस्म की शुरुआत गुनिया ने ढोल बजाकर की गौड़ बब्बा के पथदा । पर माथा टेका । मुखिया को प्रणाम किया । गुनिया को प्रणाम किया । ढोल को प्रणाम किया । ढोल उठाया । मौढों के गोल के आगे बैठा । ढोल को पाँवों के नीचे चापा । दोनों हाथों में डंडियाँ थामीं । डंडियों को तौल कर देखा । तय किया कि किस डंड़ी को किस हाथ में थामूँ। और ता-तिड़, ता-तिड़...''[७९] तभी पछिया अपने स्थान से उठी और गुरया के सामने आकर खड़ी रह गई । गुरया को भी अपनी पसंदगी की जनी मिलने से प्रसन्नता होती है । इस प्रकार लेखक ने आदिवासी संस्कृति को यथार्थ रुप में आलेखित किया है।

० **निष्कर्ष :-**

निष्कर्षत: प्रत्येक क्षेत्र के समाज के साथ संस्कृति का गहरा नाता जुडा होता

है । प्रत्येक युग के अनुसार समाज की संस्कृति में भी परिवर्तन आता रहता है । साहित्यकार जिस समाज और युग में साँस लेता है, उस समाज और युग की संस्कृति का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में उसके साहित्य पर अवश्य पड़ता है । अत: वीरेन्द्र जैन ने भी अपने युग की भारतीय संस्कृति के दर्शन हमे करवाए है । सांस्कृतिक हत्याकांडो को उभारा है । जिसके फलस्वरुप हिन्दू और मुसलमान दोनों को कुछ भी हाँसिल नही हुआ । अस्पृश्यता और अंधश्रद्धा के द्वारा मासूम लोगों के साथ अन्याय और अत्याचार किए जाते है । वर्णव्यवस्था की चक्की में समाज के निम्न वर्ग के लोग पिसते चले जाते है । अपने क्षेत्र व प्रदेश के तीज-त्योहारों का प्रत्येक मनुष्य को महत्व होता है । वीरेन्द्र जैन ने अपने उपन्यासों में बारह-मासा त्योहारो का बखूबी वर्णन किया है । पूजा-पाठ, विभिन्न रीति-रिवाज, शिक्षा-दिक्षा, एवं ग्रामीण तथा आदिवासी संस्कृति का लेखक ने सूक्ष्मतापूर्वक वर्णन किया है । ग्राम्य संस्कृति के खेत-खलिहान, आदिवासियों का रहन-सहन, विवाह-प्रथाएँ, बोली, पहनावा, खान-पान, विचारधाराएँ, श्रद्धाएँ-अंधश्रद्धाएँ, सरपंच बनने के नियम आदि के उपर प्रकाश डालने का सराहनीय प्रयास किया है ।

संदर्भ–संकेत

१. भारतीय संस्कृति की रुपरेखा, आत्मनिवेदन, डॉ.बाबू गुलाबराय, पृ.१

२. डूब-वीरेन्द्र जैन, पृ.११

३. वही, पृ.११

४. वही, पृ.१३

५. हिन्दी उपन्यास: सामाजिक चेतना, डॉ. रजनीकान्त, पृ.५७

६. डूबी, वीरेन्द्र जैन, पृ.१३

७. वही, पृ.१०१

८. वही, पृ.६५

९. वही, पृ.६५

१०. वही, पृ.६५,६६

११. वही, पृ.६७,६८

१२. वही, पृ.७२

१३. वही, पृ.७२

१४. वही, पृ.२६५

१५. वही, पृ.२६५, २६६

१६. वही, पृ.२६६

१७. पार- वीरेन्द्र जैन, पृ.२३६

१८. डूब- वीरेन्द्र जैन, पृ.२८

१९. पंचनामा- वी.जै. पृ.०९

२०. वही, पृ.१०

२१. वही, पृ.११

२२. वही, पृ.११

२३. वही, पृ.१३

२४. वही, पृ.१४

२५. पार, वीरेन्द्र जैन, पृ.१३६

२६. प्रतिदान, वी.जै., पृ.७७

२७. वही, पृ.७८

२८. डूब, वी.जै., पृ.११७

२९. वही, पृ.११७

३०. वही, पृ.११८

३१. वही, पृ.११८

३२. वही, पृ.११८

३३. वही, पृ.११८

३४. वही, पृ.११८

३५. वही, पृ.११९

३६. वही, पृ.११९

३७. वही, पृ.११९

३८. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.३२

३९. वही, पृ.३६

४०. वही, पृ.३६

४१. वही, पृ.३६

४२. तलाश- वी.जै., पृ.१०८

४३. पंचनामा- वी.जै., ८९

४४. वही, पृ.१०२

४५. वही, पृ.१०२

४६. वही, पृ.१०२

४७. वही, पृ.११२

४८. वही, पृ.११२,११३

४९. वही, पृ.४८

५०. वही, पृ.४९

५१. वही, पृ.६१

५२. वही, पृ.६१

५३. वही, पृ.६२

५४. डूब- वीरेन्द्र जैन, पृ.१०६

५५. वही, पृ.१०६

५६. वही, पृ.१०७

५७. पंचनामा- वी.जै., पृ.४९

५८. वही, पृ.४९

५९. प्रतिदान- वी.जै., पृ.८७

६०. वही, पृ.८६

६१. वही, पृ.८६

६२. वही, पृ.८७

६३. वही, पृ.८७

६४. वही, पृ.८७

६५. वही, पृ.८७

६६. वही, पृ.८८

६७. पार- वी.जै., पृ.१२

६८. वही, पृ.१३

६९. वही, पृ.१३

७०. वही, पृ.१३

७१. वही, पृ.१३

७२. वही, पृ.१६

७३. वही, पृ.१६

७४. वही, पृ.२९, ३०

७५. वही, पृ.३०

७६. वही, पृ.३०

७७. वही, पृ.५४

७८. वही, पृ.५४

७९. वही, पृ.५५

अध्याय–६
वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और आर्थिक चेतना

६.१ प्रकाशन जगत: आर्थिक-शोषण

६.२ लेखकों का शोषण

६.३ भ्रष्टाचार

६.४ मुआवजा बनाम इंतजार

६.५ गरीबी-बेकारी अभिशापरुप

➢ निष्कर्ष

अध्याय–६
वीरेन्द्र जैन के उपन्यास और आर्थिक चेतना

समाज और देश के उत्थान व विकास में अर्थ नींव के रूप में समाया हुआ है। देश की विविध विकास-योजना के अमलीकरण में अर्थ की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । लेकिन आज-कल लोगों ने अर्थ को ही सर्वस्व मानकर अपना ईमान तक बेच दिया है । सरकार और नेता जिसके हाथ में समाज के संचालन की बागडोर है, वह भी पैसो की लालच में अनैतिकता व भ्रष्टाचार कर आम जनता के हक को छीन लेते है । इतना ही नही गाँव के साहूकार मजदूरों को दिन-रात महेनत करवाकर उन्हें मजदूरी भी नही देते । जिसकी वजह से सर्वहारा लोग महेनत करके भी गरीब ही रहते है । अगर समाज में आर्थिक समानता स्थापित करनी है, तो सबको अपनी मेहनत के अनुसार वेतन मिलना ही चाहिए । वीरेन्द जैन कहना चाहते है, कि जहाँ जनता सरकार और साव दोनों के आर्थिक शोषण-चक्र में फँसी हो तो वहाँ समाज के विकास के चाहे कितने ही प्रयास क्यों न किए जाए सब व्यर्थ ही है । साथ-साथ प्रकाशन जगत जो हमेशा सत्य का साथ देनेवाला होता है, वह भी लेखको को किस कदर आर्थिक द्रष्टि से बेहाल कर देते है, इस बात पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। संक्षेप में लेखक ने अर्थ को केन्द्र में रखकर लोगों को जागृत बनाने की कोशिश की है ।

६.१ प्रकाशन जगत: आर्थिक शोषण :-

आनन्दवर्धन प्रकाशन संस्था लोक हितकारी में कर्मचारी के रूप में कार्य करता है । उसका चार महीने का वेतन बाकी है । आनन्द मजदूर दिवस के दिन ही इस कार्यालय में वेतन लेने के लिए आता है । जब वह गैंदालालजी से वेतन के बारे में बात करता है, तब गैंदालालजी कहते है कि ''आपका वेतन! अरे! इस संबंध में तो संचालकजी से बात ही नही हुई । ठहरिए, मैं लेखा विभाग से पता करता हूँ । शायद उनके पास कोई निर्देश आया हो ।''[१] तभी थोड़ी देर बाद गैंदालालजी मुँह लटकाए वापस आ गए । आनंद शीघ्र ही समझ गया कि, शायद अभी तक उसका वेतन तय नही हुआ है । आज भी उसे यहाँ से खाली हाथ ही वापस जाना पड़ेगा । तभी गैंदालालजी आनंद को अपने साथ लेकर संचालकजी से मिलवाने ले गए । संचालकजी ने आनंद के आज तक के कार्य की डायरी को पढ़ा । आनंद के संतोषजनक कार्य पर उन्होने खुशी व्यक्त की । और उसे तुरंत ही वेतन गिनकर दे देने का गैंदालालजी को आदेश दिया गया । वेतन प्राप्त करने के लिए आनंद को दस्तखत करने के लिए कहा गया । लेकिन दस्तखत करने से पहले आनंद ने वाउचर को पढ़ना जरुरी समझा । उसे पढ़ते ही आनंद आश्चर्यचकित रह गया । उसमे लिखा था कि- ''माह नवम्बर, दिसम्बर ७१ और जनवरी, फरवरी, मार्च ७२ के १०९ दिन के वेतन (चार रुपए प्रतिदिन की दर से) मध्ये ४३६ रुपए प्राप्त किए ।''[२] आनंद ने असंतोषजनक वेतन पर विरोध किया और गैंदालालजी से कहा कि ''१५ नवम्बर से ३१ मार्च तक १३७ दिन

बनते थे जबकि वाउचर बता रहा था महज १०९ दिन।''[३] आनंद के हिसाब से १३७ दिन उसके वेतन के बनते थे, जबकि वाउचर मे उसे काटकर १०९ दिन ही बताया है। गैंदालालजी को बताने पर उन्होंने कहा कि ''बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप, मगर हम अस्थायी कर्मचारियों को इतवार और प्रत्येक माह के दूसरे और चौथे शनिवार का वेतन नहीं देते।''[४] क्योंकि उस दिन कार्यालय में अवकाश रहता है, लेकिन फिर भी कर्मचारियों से काम तो करवाया ही जाता है। आनंद को अब पता चलता है, कि वह भी अस्थायी कर्मचारी है। स्थायी नही है। और इस हिसाब से उसे भी इन दिनों का वेतन नही मिलेगा, फिर भले ही उसने कितना भी काम क्यों न किया हो। आनंद एसे आर्थिक शोषण से स्तब्ध ही रह गया। उसने गैंदालालजी से वह पुर्जी देखने के लिए माँगी, जिस पर आनंद के महीने भर के सभी खर्च और श्रम का मूल्य अंकित था। वह पुर्जी कुछ इस प्रकार थी-

''दोस्त के साथ रहता है, किराया देता है- ३० रुपया, आने-जाने में खर्च करेगा- २४ रुपया, खाने-पीने पर खर्च होगा, तकरीबन- ६० रुपया, अन्य खर्चे- ०६ रुपया। चार रुपए प्रतिदिन की दर से वेतन दिया जाए।''[५] महीने के २४ दिनों के हिसाब से पूरे महीने भर की तनख्वाह हुई ९६ रुपए। और आनंद का महीने का खर्च होता है १२० रुपए। आनंद संचालकजी से मिलकर इस अपमानजनक वेतन के बारे मे पूछना चाहता है। वह वाउचर भी नही स्विकारता और मुनमजी से कहता है कि ''मैं इस वेतन को स्वीकार नही कर रहा हूँ, और इस अपमानजनक वेतन पर मुझे

नौकरी भी नही चाहिए । मैं यही संचालकजी को बताना चाहता हूँ और साथ में अब तक के काम का मूल्य लोक हितकारी को दान करना चाहता हूँ ।''[६] इस विरोध के लिए उसे संचालकजी का भी डर नही है । जब उसने तय ही कर लिया है कि उसे यहाँ नौकरी करनी ही नही, फिर डर क्या रखना । वह शीघ्र ही बिना किसी की अनुमति के संचालकजी के कमरे में चला जाता है । आनंद संचालकजी से सवाल पर सवाल कर रहा है । लेकिन संचालकजी के पास आनंद के सवालों का कोई जवाब नही था । वह निरुत्तर और मौन बैठकर आनंद को सुन रहे थे । आनंद कह रहा था कि ''जब उनके हिसाब से मेरा माह-भर का न्यूनतम खर्च एक सौ बीस रुपए है, तो मैं छियानवे और कभी बयानवें रुपए में गुजारा कैसे कर लूँगा ? कि जिस दिन कार्यालय बंद रहता है उस दिन मुझे खाना खाने या मकान में रहने का अधिकार है या नहीं ? कि यदि मेरा नियुक्ति-पत्र अभी तक तैयार नहीं हुआ तो इसमें मेरा जो दोष है उसका दंड मुझे कब और कितना मिलेगा ? कि शनिवार और इतवार को मैं जो काम करता रहा वह अपराध क्षम्य है या नहीं ? या कि भविष्य में मुझे जो पुस्तकालयों में सुबह पाँच बजे और शाम पाँच बजे दो-दो बार जाना होगा, उसके लिए मुझे पैदल यात्रा करनी होगी या दिन के ग्यारह बजे से शाम के पाँच बजे तक यानी जितने समय पुस्तकालय बन्द रहेगा, वहीं घरना देना होगा ? कि सौ रुपए की नौकरी देने के बदले मैं उनका ऋणी हुआ रहूँ या नहीं ?''[७] आनंद की सारी बातें सुन लेने के बाद संचालकजी ने आनंद की वेतनवाली पुर्जी मँगवाई । और सब कुछ देख लेने के बाद

उन्होने आनंद को इस संस्थान में शोध-प्रबंधक के रुप में प्रति माह १२० रुपए वेतन के साथ नियुक्त किया । और वेतन में प्रति वर्ष १० रुपए की वृद्धि करने का आदेश भी दिया । वेतन के अलावा हर रोज का चार रुपया याता-यात पर दिए जाने की बात कही । साथ-साथ छ महीने के बाद उन्हे शोध-सहायक के अलावा संचालकजी का निजी सजीव भी बनाया जाएगा । ''दोनों कार्यभार वहन के दौरान इन्हें वेतन और यात्रा भत्ता के अतिरिक्त अधिकतम ५०० रुपए तक मकान किराया दिया जाएगा । मगर जब इन्हें संचालक के मकान के आस-पास ही मकान लेकर रहना होगा । शेष अन्य कर्मचारियों को मिलनेवाली सुविधाएँ भी इन्हें उपलब्ध होंगी और संस्थान के सभी नियम-उपनियम इन पर लागू होंगे ।''[८] संचालकजी की एसी बातें सुनकर आनंद सोचने लगा कि इस स्थायी नौकरी और अन्य सुविधाओं पर मुझे खुश होना चाहिए या नही । अगर इन सुविधाओं के लिए मैं योग्य था, तो मुझे पहले से ही ये सारी सुविधाएँ क्यों नही दी गई ? और अब जब विरोध किया तो शीघ्र ही वेतन-वृद्धि हो गई । शायद यहाँ माँगनेवाले को ही वेतन-वृद्धि दी जाती होंगी । ''अगर ऐसा है तो संभव है नियमानुसार मैं इससे भी ज्यादा का हकदार होऊँ ? क्या गारंटी है कि मुझे वह सब अब प्राप्य है जो भी इस पद पर काम करनेवाले को देय होता हो ?... अंततः मैंने यही सोचकर मन को तसल्ली दी कि फिलहाल यही सही, बाकी हक भी समय आने पर ले ही लूँगा ।''[९] इस प्रकार आनंद के विरोध पर उसका नये सिरे से वेतन, यात्रा-भत्ता तथा अन्य सुविधाओं का वाउचर तैयार किया गया । आनंद के इस

व्यवहार से कार्यालय के सभी कर्मचारी उससे बहुत प्रभावित हुए । गैंदालालजी सहित सभी कर्मचारी ने आनंदजी से बताया कि एसा करिश्मा यहाँ पहले कभी नही हुआ है। टेकचंद ने कहा कि ''आप आते ही स्थायी हो गए । आपको आते ही सब सुविधाएँ, अच्छा वेतन मिल रहा है । आज पहली बार संचालकजी ने अपने लिए निजी सचिव नियुक्त किया है और हैं... हैं... हैं, आज किसी ने वो कहावत कर दिखाई है कि अब आया ऊँट पहाड के नीचे ।''[१०] सब चाहते थे कि इस कार्यालय में विरोध हो, शोषण के खिलाफ आवाज उठाई जाए । लेकिन विरोध करने से सब डरते थे, कि कहीं यह नौकरी भी न चली जाए । आज कल स्थिति यह है, कि शिक्षित लोगों का भी शोषण होता है । वे जानते है कि उनके वेतन को काट दिया जाता है, लेकिन फिर भी विरोध करने की हिम्मत नही जुटा पाते । इस संस्थान में पीएच.डी. तक कि डीग्री वाले कर्मचारी है, लेकिन वे देखा भर करते है । महीने के अंत में जब फिर से वेतन आया, तब आनंद कहता है कि ''मेरे विरोध के बावजूद मुझे प्रारंभिक दिनों का वेतन १२० रुपए महीने ही दिया गया था । उस समय फिर से विरोध करने का जो मैंने कोई प्रयत्न नहीं किया उसकी वजह यह नहीं थी, कि मैं बाद के दिनों के लिए दिए जाने वाले वेतन से संतुष्ट हो गया होऊँ । दरअसल मुझे लगा था कि संचालकजी ने जिस तरह लिखें शब्दों की रक्षा की है वह अनुभव अपने आप में कम मूल्यवान नहीं है । मगर उनके निजी सचिव के रुप में काम करने का अवसर आते ही मुझे लगा मैं ठग लिया गया ।''[११] क्योंकि आनंद संचालकजी का निजी सचिव चुना गया था । अत:

उसे संचालकजी के निवास-स्थान के पास ही रहना था। अब संचालकजी आनंद से जितना चाहे उतना काम करवा सकते थे। कहीं और जगह रहने पर आनंद कुछ निश्चित समय तक ही काम करता। लेकिन संचालकजी के निवास-स्थान के पास रहने से कार्यालय के अलावा भी सारा समय उसे संचालकजी को ही देना था। अत: आनंद का कार्यभार बढ़ गया था। केवल खाना खाने के लिए लगनेवाला समय ही उसका खुद का था। बाकी सारा समय संचालकजी को समर्पित हो जाता था। ''यानी एक सौ अस्सी रुपए में अठारह घण्टे खटता था। वेतन में हुई आधी वृद्धि सबको दीख रही थी मगर काम के घण्टों में हुई दुगनी वृद्धि...''[१२] आनंद रात-दिन फाईलों के बिच धिरा रहता है। हर विभाग हर रिपोर्ट की अलग फाइल उसे ही बनानी है। इतना ही नही संचालकजी के व्यक्तिगत जमा-खर्च का हिसाब रखने का कार्य भी उसे ही करना पड़ता था। अत: इन सब को देखकर आनंद को लगने लगा कि वह संचालकजी के द्वारा फिर से ठगा गया है। वीरेन्द्र जैन बताना चाहते है कि चाहे कितने भी विरोध क्यों न उठाए जाए, शोषण करनेवाला कभी भी अपने शोषण-चक्र को रोकता नही। वह किसी न किसी तरह शोषण जोंक की भाँति अवश्य करता ही है।

आनंद के पास जगत दादा (कलाकार) का बिल बनाने के लिए आता है। आनंद उनसे परिचित तो नही था, लेकिन उसकी शक्ल-सूरत काफी जानी पहचानी-सी लगी। ''वे यहाँ की किताबों के आवरण बनाया करते थे। यह बिल भी उनके

द्वारा बनाए गए एक आवरण के पारिश्रमिक का था । कलाकार ने अपना पारिश्रमिक आँका था १२५ रुपया । जाने किस आधार पर सहयोगी संचालक सतीशजी ने उसे काटकर लिखा था ११० रुपया । और संचालकजी ने उसे भी निरस्त करके लिखा था- केवल ८० रुपये दिए जाएँ !''[१३] आनंद को इस बिल में कुछ करना नही था, बिल केवल लेखा विभाग को देना था । लेकिन अपने स्वभाव के अनुसार आनंद इस बिल में कुछ काट-छाँट की वजह से परेशान हो गया । उसे यहाँ की रीति-नितियों का बहुत ही विरोध रहा है । वह सोचता है कि सतीशजी के पास ऐसा कौन-सा अद्वेश्य मापक यंत्र है, जिससे उन्हें यह पता चला कि जगत दादा का पारिश्रमिक १२५ नहीं ११० है । और संचालकजी तो उनसे भी दो कदम आगे निकले, उन्होंने तो इनको ८० रुपए देना ही तय किया । दूसरे दिन सुबह वह कलाकार जब अपना पारिश्रमिक लेने के लिए पहुँचा, तो स्थिति देखने योग्य बनी थी । ''वह ठगा गया, झूठा सिद्ध किया गया, एक बार फिर लोक हितकारी को चूना लगाने से वंचित रह गया, जगत दादा चीख-चीखकर अपना विरोध प्रकट कर रहा था और होल में बैठे पचास आदमियों में से एक के भी कान पर जूँ तक नहीं रेंग रही थी । तब एक बार फिर वे पत्थर के बूतों में तबदील हो गए थे ।''[१४] जो अधिकारी किसी भी बिल में से जितनी अधिक कटौती करता है, वह यहाँ उतना ही श्रेष्ठ और योग्य माना जाता है । और जो अधिकारी प्रामाणिकतापूर्वक बिल में कुछ कटौती नही करता वह अधिकारी यहाँ अयोग्य और हेय माना जाता है । इतना ही नहीं बल्कि कोई भी

अधिकारी जितनी कटौती करता है, उससे कहीं अधिक कटौती संचालकजी करते है। अत: महेनतकश व्यक्ति यहाँ से शोषण और छल-कपट के अलावा और कुछ भी लेकर नहीं जाता ।

६.२ लेखकों का शोषण :-

आनंद एक प्रकाशन में अपने उपन्यास को प्रकाशित करवाने के उद्देश्य से पहुँचता है । प्रकाशक से मिलने पर उसने बताया कि, आप अपनी पांडुलिपि यहाँ रखकर जाईए, मैं इसे पढ़ लूँगा और बाद में निर्णय लूँगा कि इसे प्रकाशित करवाया जाए या नहीं । आनंद बलभद्रजी के यहाँ अपनी पांडुलिपि छोड़कर चला आता है । शाम को आनंद के मित्र को जब यह पता चलता है, कि आनंद बदलभद्रजी के यहाँ अपनी पांडुलिपि छोडकर आया है, तो आनंद का मित्र बताता है कि ''यार, जाने से पहले हमसे पूछ तो लिया होता । अब तो समझो कि वह किताब उनके किसी दोस्त के नाम से आएगी ।''[१५] इससे पहले भी कई बार बदलभद्रजी ने ऐसा ही किया था। किताब होती है, किसी और लेखक की और उन्हें छापते है अपने किसी दोस्त के नाम से । उनका वह दोस्त बिना कुछ किए एक किताब का लेखक बन जाता है । और वह लेखक जिसकी यह किताब है, उसे तो यह पता भी नहीं होता कि उसकी किताब प्रकाशित हुई भी या नहीं । जब मूल लेखक इस पर आपत्ति उठाता है, तब बहुत देर हो जाती है । आनंद का मित्र उसे बलभद्रजी के शोषण के बारे में आगे बताता हुआ कहता है, कि ''इसकी आदत है लेखक किस्म के लोगों को नौकरी पर रखने की

क्योंकि लेखक जो होता है वह बुद्धिजीवी होता है । भावुक होता है । भावनाओं की कद्र करता है । ये साहब चूँकी लेखकों की इस कमजोरी को जानते है इसलिए जानबुझकर लेखक किस्म के लोगों को काम पर रखते है, ताकि उनका जमकर शोषण कर सके । और वे बेचारे शर्म के मारे, केवल इस संकोचवश कि कहीं उनके विरोध से बलभद्रजी का अपमान न हो जाए, कहीं उनके दिल को ठेस न पहुँचे, अपना शोषण होने देते है । चूँकी विरोध को कहीं तो प्रकट होना ही हुआ तो बलभद्रजी के बजाय साहित्य में, उनकी रचनाओं में उसका शमन होता रहता है । मगर जिस लेखक मुलाजिम की मैं बात कर रहा हूँ, उसके लिए जब शोषण असह्य हो गया तो उसने बजाय कागज काले करने के बलभद्रजी का मुँह काला करने की ठानी ।''[१६] लेखक भावनाओं के प्रवाह में इतना डूब जाता है, कि वह अपना शोषण होते हुए देखकर भी चुप रह जाता है । विरोध कहीं और नहीं तो उनके खुद के साहित्य में उभर कर आते है ।

आनंद एक अन्य प्रकाशन में अपना उपन्यास छपवाने के संदर्भ में जाता है । तो वहाँ पहले से ही खडे एक नवयुवक ने आनंद का रास्ता रोका । और अपनी पुस्तक के संदर्भ में प्रकाशक की शोषण-नीति की गाथा कह सुनाई । ''उसने बताया कि ऊपर जो मोटा प्रकाशक है, उसने इस लेखक की एक पुस्तक छापी । पुस्तक छपे काफी समय हो गया मगर न तो उसने कोई अनुबंध किया, न पुस्तक ही दी । कहता रहा अभी तो पुस्तक प्रेस में पड़ी है । फिर बोला कि मेरे पास प्रेसवाले का भुगतान करने के लिए रुपया नहीं है, तुम अदा कर दो ।''[१७] फिर बाद में प्रकाशक ने लेखक

को बहलाने के लिए कहा कि, पुस्तक तो अभी रिलीज ही नही हुई है । अगर तुम्हारे पास थोडी बहुत प्रतियाँ आ जाएगी, तो मेरी मार्केट खराब हो जाएगी । बाद में जब पुस्तक रिलीज हो गई तो प्रकाशक ने बहाना बना दिया, कि पुस्तक तो बिक ही नही रही है । ''बेचारा लेखक पुस्तक मित्रों को देने, अपने पास रखने को लालायित था, उसकी यह चाहना स्वाभाविक थी । अंतत: उसने एक मित्र के जरिए पचीस प्रतियाँ खरीद ली ।''[१८] और प्रकाशक को खबर नहीं लगने दी कि इसके माध्यम से लेखक ने ही पुस्तके खरीदी है । बाद में प्रकाशक को रंगे हाथों पकड़ने के लिए लेखक प्रकाशक से मिलने आया । जैसे ही प्रकाशक ने अपना बना बनाया जवाब लेखक को दे दिया कि- पुस्तक बिक ही नही रही है, तो लेखक ने शीघ्र ही पचीस किताबों की कैशमेमों की फोटो प्रति प्रकाशक के सामने रख दी । तब प्रकाशक हैरान ही रह गया। प्रकाशक के शोषण का पर्दाफाश हो गया । तब लेखक के उस साथी मित्र ने प्रकाशक को बताया कि ''आपने इतनी प्रतियाँ राजा राममोहन राय लाइब्रेरी योजना में, इतनी केन्द्रीय हिंदी निदेशालय में, इतनी साहित्य अकादमी में, इतनी दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में, इतनी अमेरिकन लाइब्रेरी में और इतनी मुझे बेची है । इसके अलावा भी बेची ही होगी । अब आप सीधी तरह पूरा हिसाब दीजिए ।''[१९] साथ-साथ प्रकाशक को कानूनी कार्यवाही करने की धमकी भी दी । तब प्रकाशक अवाक् ही रह गया । और फटाफट लेखक के सामने उनकी पुस्तकों का पूरा हिसाब रख दिया । लेकिन फिर भी प्रकाशक अपने मूल स्वभाव से बाज नहीं आया । उसने साफ-साफ बता दिया कि वह

पाँच प्रतिशत से ज्यादा रॉयल्टी नही देगा। तब लेखक को प्रकाशक के द्वारा जो भी रॉयल्टी मिली, उसे स्वीकार्य करने के अलावा और कोई चारा नहीं था। इस प्रकार उस नवयुवक लेखक ने इस प्रकाशन संस्थान में उसके साथ हुए शोषण-चक्र को उजागर कर आनंद को सतर्क करने का प्रयास किया। ताकि उसकी तरह आनंद के साथ भी वही छल-कपट न हो।

आनंद को एक अन्य लेखक की आपबीती सुनने को मिलती है। आनंद एक प्रकाशन के प्रकाशक के पास अभी जाकर बैठा ही था, कि वह किसी अन्य व्यक्ति के साथ बात-चीत कर चले भी गए। आनंद को प्रकाशक का एसा व्यवहार अरुचिपूर्ण लगा। तभी वहाँ बैठे एक लेखक ने आनंद को बताया कि इस प्रकाशक ने उनकी एक पुस्तक छापी है। ''पुस्तक की पाँच सो प्रतियाँ की खरीद एक प्रदेश में हुई है। जब खरीद का आदेश इन्हें मिला तो वे लेखक के पास आए। उसे यह शुभ समाचार दिया और बोले कि पुस्तकों के बिल के साथ एक प्रमाणपत्र भी भेजना है, कि हमने आपको रॉयल्टी नकद दे दी है। अब इस समय मेरे पास इतनी बड़ी रकम है नहीं और बैंक बंद हो चुके है। और हमें हर हाल में आज ही यह रसीद भेजनी है। इसलिए आप ऐसा कीजिए, ये एक-एक हजार रुपए के दो बियरर चेक हैं एक परसों की तारीख का और दूसरा उससे दो दिन बाद की तारीख का। कल मैं बैंक की स्थिति भी देख लूँगा। यदि रकम उसमें नही हुई तो कल या तो पूरे दो हजार रुपए जमा करवा दूँगा या एक हजार कल और एक हजार परसों जमा करा दूँगा ताकि आपको कोई परेशानी

न हो ।''[२०] लेखक प्रकाशक की बातों में आ जाता है । लेखक ने रसीद लिखकर दे दी कि उन्हें रॉयल्टी मिल गई है । लेखक जब बैंक पहुँचा तो उसे पता चला कि प्रकाशक ने तो पूरा खाता ही उठा लिया है । जब यह स्थिति देखकर लेखक प्रकाशक से मिलने गया तो प्रकाशक ने अपनी गलती स्विकार तो नहीं की उपर से लेखक को लापरवाही दिखाकर यह कह दिया कि, यह तो आपकी रॉयल्टी के चेक हैं, इन्हें संभालकर रखिएगा । लेखक को लगा कि प्रकाशक ने तो उसके साथ धोखा किया है। बिना रॉयल्टी दिए पुस्तकों की बिक्री का सारा पैसा प्रकाशक हजम कर गया । और लेखक छला हुआ सा ठन-ठन गोपाल ही रह गया । तब लेखक ने भी प्रकाशक को सबक सिखाने की ठान ली। ''अगले ही दिन वह बैंक का प्रमाणपत्र, चेक और शिकाय-पत्र लेकर अखबार के दफ्तर में जा पहुँचा । अखबारवालों ने उसकी शिकायत छाप दी ।''[२१] अखबारवालों की शिकायत पढ़कर राज्य-सरकार ने भी प्रकाशक को धमकी भरा पत्र लिखा कि आपके द्वारा लिखी गई रसीद निरस्त की जाती है । और अगर उस लेखक द्वारा लिखी हुई दूसरी रसीद हमें नही मिलती तो आपके द्वारा भेजी गई सारी पुस्तकें आपके खर्चे से वापस भेज दी जाएगी । और स्थिति अगर नही सुधरेगी तो हम भविष्य मे भी आपकी पुस्तके नहीं खरीदेंगे । ''यह पत्र मिलना था कि प्रकाशक के होश गुम । वह दौड़ा-दौड़ा लेखक के पास गया । गुहार लगाई कि मेरे चेक वापस दे दो और नकद रकम ले लो ।''[२२] इस प्रकार लेखक का शोषण करने निकलनेवाला प्रकाशक खुद अपने बनाए हुए जाल में फँस गया । लेखक के साथ छल

और कपट के इरादे बनानेवाले प्रकाशक को लेखक ने नानी याद दिला दी । वीरेन्द्र जैन ने वर्तमान प्रकाशन जगत का पूरा चिट्ठा खोलकर रख दिया है । आज-कल तो लेखक को यदि अपनी पुस्तक प्रकाशित करवानी भी है, तो लेखक को अपनी पुस्तक प्रकाशन का सारा खर्च उठाना पड़ता है । और कुछ प्रकाशक तो ऐसे है, कि ''वे रुपया जिस लेखक से लेते है, पुस्तक उसी की छापे जरुरी नहीं । कभी इनके यहाँ से पांडुलिपि खो जाती है, कभी कागज नही उपलब्ध होता, तो कभी प्रेस दगा दे देता है । लेखक बेचारा चक्कर लगाता रहता है । और वे उसकी पूँजी के दम पर अपने मित्रों, परिचितों, रिश्तेदारों, कुत्तों, बिल्लियों की किताबे छापते रहते है ।''[२३] और लेखक को अपनी पुस्तक का एक रुपया भी नही मिलता । वह बेचारा अपनी हर रोज की जरुरतों को पूर्ण कर पाए इतना भी इन प्रकाशकों के द्वारा उसे नहीं मिलता । और प्रकाशक लेखक के दम पर लाखों रुपए कमा लेते है । जबकि लेखक महेनत करके भी रह जाते है खाली के खाली । प्रकाशकों को लेखक को रॉयल्टी देना बिल-कुल अच्छा नही लगता । अत: ''वे बस रॉयल्टी मुक्त लेखकों की रचनाएँ छापते है । यानी ऐसे लेखकों की जिनकी मृत्यु को पचास वर्ष से ज्यादा हो चुके हो । ऐसी पुस्तकों में न तो किसी को कुछ देना होता है, न हिसाब रखना होता है, न कोई आपत्ति करनेवाला... और लाभ की पूरी-पूरी गारंटी, क्योंकि उन स्वनाम धन्य लेखकों का बिकना तो अवश्यंभावी है ही ।''[२४]

६.३ भ्रष्टाचार :-

आनंद को कांताजी के प्रतिबद्ध प्रकाशन में एक कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया जाता है । एक महीने बाद जब वेतन का दिन आया तब उसे बताया गया कि विक्रय निदेशक की गैरमौजूदगी की वजह से अभी तक उसका वेतन तय नही किया गया है । यह जानकर आनंद को बहुत ही आश्चर्य होता है । आनंद को बताया जाता है, कि फिलहाल तुम्हे तीन सौ रुपया महीना दिया जाएगा । ''इसे मैं वेतन नहीं अग्रिम भुगतान मानूँ ऐसा आग्रह था कांताजी का । मैंने लेखा विभाग से जाकर तीन सौ रुपए ले लिए ।... दूसरे दिन कांताजी ने मुझे अपने केबिन में बुलाया और पचास का नोट मेरी तरफ बढाते हुए कहा, ''इसे रख लो मगर किसी से इसका जिक्र मत करना । यह में अपनी तरफ से दे रही हूँ। आगे से हर महीने की दूसरी तारीख को तुम मुझसे पचास रुपए ले जाया करना ।''[२५] लेकिन आनंद ने पचास रुपए लेने से साफ इन्कार कर दिया । वास्तव में कांताजी हर कर्मचारी को वेतन के अलावा अलग से पचास रुपए इसलिए देती है, कि उनके इस ऋण तले दबकर कर्मचारी उनके खिलाफ कभी न तो कुछ बोले और न तो कभी वेतन बढ़ाने की माँग ही करे । पर आनंद इस ऋण तले दबना नही चाहता । उसे तो उतने ही रुपए चाहिए जितना उसका वेतन तय किया गया है । जब विक्रय निर्देशक वर्माजी आ जाते है, तो आनंद को उसका वेतन पूछते है । तब आनंद बताता, है कि वेतन आपके आने पर तय किया जाएगा एसा उससे कहा गया है । अभी तो महीने के तीन सौ रुपए दिए जा रहे है । बाद में वर्माजी से

आनंद को पता चलता है कि- यहाँ तो सब को वेतन के अलावा अलग से रुपए दिए जाते है। आनंद सोचता है कि अगर सबको रुपए देने ही है तो वेतन में मिलाकर क्यों नही दिए जाते ? अलग क्यों दिए जाते है ? तब वर्माजी बताते है, कि ''वेतन वेतन होता है। यह उपहार है। वेतन के अतिरिक्त। ताकि देर-सबेर तक काम करने पर कोई अतिरिक्त न माँगे। किसी के काम से नाखुश होने पर बन्द किया जा सके। वेतन के साथ तो ऐसी छेड़छाड़ नहीं हो सकती न !''[२६] तब आनंद गुस्सा होते हुए कहता है, कि यह तो वही लोक हितकारी वाला नुस्खा अपनाया गया। आखिरकार सब प्रकाशन संस्थान एक जैसे ही है। अंदर से उन सबकी नींव अनैतिकता, भ्रष्टाचार और आर्थिक शोषण से ही भरी हुई है। वर्माजी आनंद को अधिक वेतन दे पाने की अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहते है कि ''तुम्हे वेतन तो ज्यादा नही मिल पाएगा फिलहाल। संपादन विभाग में होते तो ज्यादा मिलता। दरअसल हमारे विभाग में तो सब मैट्रिक इंटर पास लौंडे हैं। फिर भी मैं कोशिश करुँगा और तुम्हें काम भी ऐसे ही सोपूँगा जिनसे हम तुम्हारी योग्यता का फायदा उठा सके।''[२७]

सूर्योदय प्रकाशन के प्रकाशक दीपकजी सूर्योदय के समानांतर एक और प्रकाशन शुरु करने का फैसला लेते है- जिसका नाम रखते है चंद्रोदय प्रकाशन। चंद्रोदय प्रकाशन में एसे ही लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित की जाएगी जिनका खर्च लेखक स्वयं वहन कर सके। दीपकजी की एसी बातें सुनकर आनंद ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहाँ कि- ''ऐसे और भी लेखक है क्या है''[२८] आनंद के लिए यह जानकारी ही नई है,

कि लेखक खुद अपनी पुस्तक छपवाने के लिए पैसे भी देता है। दीपकजी आनंद से कहते है कि ''तो सुनिए हैं, और दूसरी तरह के लेखकों की तादाद से कहीं ज्यादा है। और आपसे भी भविष्य में यदि कोई लेखक पुस्तक की बात करे तो यह शर्त पहले तय कर लेना।''[२९] आनंद को अभी भी दीपकजी की बातों पर विश्वास नही होता। दीपकजी कहते है, कि ''ऐसे ढेरों प्रकाशन संस्थान है यहाँ जिनके व्यवसाय का मुख्य आधार ही यह है। उनमें उनकी पूँजी नहीं केवल श्रम लगता है, और न तो उन प्रकाशकों को कोई जानता है, न लेखकों को।''[३०] दीपकजी के पिता अरिहंतजी इस शर्त पर नई पुस्तक लिखने पर राजी हुए थे कि उनकी पुस्तक की दस हजार प्रतियाँ छापी जाएँ। लेकिन दीपकजी ने इस शर्त से इस वजह से इन्कार कर दिया, कि एक तो वे पैसे दे नहीं रहे थे। उनके खुद के पैसे लगाने थे। दूसरे उनका मानना था कि अरिहंतजी कभी इतने बिके ही नही कि दस हजार प्रतियाँ निकाली जाए। उन्होने दो हजार से ज्यादा छापने पर इन्कार कर दिया। तब निराश होकर अरिहंतजी ने लिखना बंद कर दिया। दीपकजी ने पैसों को केन्द्र में रखकर एक लेखक का खून कर दिया। भ्रष्टाचार के बहाव में वह कर लेखक की भावनाओं को उखाड फेंका। पैसों के सामने संवेदनाएँ कोई महत्व नही रखती। आनंद विरोध करते हुए कहता है कि ''यों भी आप अरिहंत के नए उपन्यास, पुराने उपन्यास, राजनीतिक, सामाजिक-वगैरह वगैरह करके कई हजार छापते ही है। मेरा अनुमान है कि जब यह संख्या पाँच छ: हजार तक पहुँच ही जाती होगी तो एक दम नया उपन्यास दस हजार भी बिक जाता।''[३१] दीपकजी

की आँखो पर अपनी पूँजी और पैसों की पट्टी इस कदर बँधी हुई है, कि आनंद के लाख समझाने पर भी उन पर कोई असर नही हुआ । तब आनंद खुद इस प्रकाशन और नौकरी दोनों को छोड़कर चला जाता है । क्योंकि दीपकजी के भ्रष्टाचार और अनैतिक आचरण में वह सहभागी बनना नही चाहता ।

प्रतिबद्ध प्रकाशन का कर्मचारी शांतिलालजी प्रकाशन में चलते शोषण और भ्रष्टाचार का विरोध करते हुए कहते है, कि ''जो सहता है उसी को दबाया जाता है। हम क्यों सहें? हम लूले-लँगड़े हैं, कोढ़ी-अपाहिज है, इनकी दया पर जिंदा है । हाड़-तोड महेनत करते हैं, इन्हें तिजोरी भर कमाकर देते है तब मुट्ठीभर हिस्सा ले पाते है। यहाँ नहीं तो कहीं और खट लेंगे । फिर क्यों दबे ?''[३२] आनंद शांतिलालजी की बातों से सहमती प्रकट करता है । कांताजी ने लेखकों के रॉयल्टी स्टेटमेंट बनाने का काम शुरु करते ही आनंद को बुलाया । कांताजी ने आनंद को स्टेटमेंट की जानकारियाँ दी। साथ-साथ लेखकों के साथ उनके नीजी संबंध कैसे है यह भी वह आनंद को बताती जाती है । और किसे कितना भुगतान दिया हुआ है यह भी साथ में बताती है। कांताजी रॉयल्टी स्टेटमेंट में ''जिनके साथ चेक लगे होते उनसे और कोई पुस्तक देने का आग्रह करने को कहती, जिनके साथ चेक नहीं होता था उनसे रॉयल्टी अभी न दे पाने की कोई न कोई वजह लिखने को कहती । जिनकी बिक्री कम होती उन्हे यह आश्वासन कि हम पूरे प्रयास कर रहे हैं ।''[३३] आनंद कई दिनों तक लेखकों को पत्र लिखवाने में व्यस्त रहा । इन दौरान आनंद को एक जबरदस्त और विद्रोही पत्र पढ़ने

को मिला । यह पत्र उस लेखक का था जिसको पिछले वर्ष भी रॉयल्टी नहीं दी गई थी और इस वर्ष भी कोई बहाना बनाकर अपनी असमर्थता प्रकट की गई थी । तब उस विद्रोही लेखक ने कांताजी पर व्यंग्य करते हुए लिखा कि- ''कांताजी, आपका कृपापात्र पाकर कोई आश्चर्य नही हुआ । रोयल्टी की जगह प्रकाशक की विवशताओं से परिचित होने का अवसर मुझे पहले भी कई बार मिला है । आपने तो शालीन ढंग से अपनी असमर्थता प्रकट की है । छोटे प्रकाशक तो इस मौके पर बाकायदा रोने ही लगते है । वे जब बताते है कि उनकी हालत कितनी खराब चल रही है, तो कई बार मन में दया का सागर उभड़ आता है । लेखक सोचता है बेचारे ने न जाने कब से हरी सब्जी तक नहीं खाई होगी । जाने दोनों समय का भोजन भी इसे नसीब होता होगा या नहीं । देखो, किस कदर हमारे विचार फैलाने के काम में जुटा है बिना भूख-प्यास, माया-लोभ की परवाह किए । मन करता है कि उसे घर ले आएँ । पत्नी से अच्छे-अच्छे पकवान बनाने को कहें और अपने सामने बिठाकर तृप्त होने तक खिलाते रहे । मगर उसके दफ्तर में इस बीच आ चुके नए फर्नीचर, बाहर साफकिल की जगह खडे स्कूटर और इसी बीच बदल चुके उसके निवास्थान के पते से मालूम देता कालोनी का स्तर ऐसा करने से रोक देता है ।

मैं तो इस बात को लेकर चिंतीत हूँ कि ऐसे में आपका क्या हाल हो रहा होगा ? कैसे चला रही होंगी आप इतना खर्चीला संस्थान ? मेरी आर्थिक स्थिति सचमुच इतनी अच्छी नहीं कि मैं आपनी चाहकर भी मदद कर सकूँ । पुस्तक देकर ही

मदद कर सकता था, लेकिन लगता है उससे भी आपका खास भला होनेवाला नहीं।''[३४]

इस पत्र को पढ़कर कांताजी ने शीघ्र ही आनंद को आदेश दिया कि इनकी रॉयल्टी का चेक बनाकर भेज दिया जाए ।

६.४ मुआवजा बनाम इंतजार :-

आधुनिक युग में अमानवीकरण के किस्से इतने बढ गए हैं कि संघर्ष, आस्था, विश्वास जैसे शब्द केवल शब्द ही रह गए है, अगर कुछ है तो वह है कोरा आत्मछल। ऐसे समय में वीरेन्द्र जैन के उपन्यास सहज और स्वाभाविक ढंग से एक बार फिर यथार्थ तक पहुँचने में हमारी मदद करते है । माते को हर समय एक पंक्ति गुनगुनाने की आदत-सी पड़ गई है ।-

''जब माता मारे बच्चे को,

तो वह किससे फरियाद करे,

जब राजा ही अन्यार करे,

तब प्रजा किसको याद करे''[३५]

इस पंक्ति में राजनैतिक-अनैतिकता, छल, भ्रष्टाचार, पाखंड़ और विनाशलीला की ओर लेखक ने तीखा प्रहार किया है। हर बार गाँववालों को मुआवजे के नाम पर धोखा दिया जाता है । निर्मल साव ने हर गाँव में मुआवजा लेने जाने की सूचना पहुँचाई । महीनाभर हो गया पर चिड़िया का एक बच्चा तक न पहुँचा मू-अर्जन

अधिकारी के हजूर में। क्योंकि ''मुआवजें के नाम पर पहले बहुत बड़ा धोखा खा चुके है न वे लोग। सो इस खबर को भी वे एक छलावा ही समझ रहे होंगे। अब वे वहीं रहेंगे चाहे फिर सचमुच डूब का पानी ही क्यों न आ जाए सिर पर।''[३६] बाद में ''निर्मल साव ने फिर गाँव-गाँव जाकर समझाया लोगों को कि हे मूर्खो, हम पर विश्वास करो। हम सच कह रहे हैं। सरकार सचमुच अब तुम्हारे गाँव उजाडेंगी। तुम्हे मुआवजा देना चाहती है सरकार।''[३७] जब चंदेरी के मुआवजा-कार्यालय से लौटे लोग मुआवजे का कागज कैलास महाराज को बाँचने देते है, तो सुननेवाले के पाँवो के नीचे से जमीन ही खिसक जाती है। ''इसमें लिखा है कि इस जमीन पर कोई टपरा या बाखर नहीं है। यह जमीन खेतिहर नहीं, रियायशीं है। इस जमीन पर सिंचाई का साधन नहीं है। यह भूमि असिंचित है। अब यहाँ जमीन नहीं, नदी है। यहाँ कोई कुआँ नहीं है। यहाँ केवल चारा होता है। यह भूमि इक फसली है! कैलास महाराज के बाँच देने पर अविश्वास की बात ही कहाँ रह जाती है। मगर लोग हैरान के हैरान? यह हुआ कैसे ? हो कैसे सकता है ? अगर हमारी जमीन पर टपरा नही है, तो क्या चौपाल में रहते है ? अगर हम इतनी जमीन में रहते है, तो खाते क्या इँटे है ? जब हमारी जमीन की सिंचाई नहीं होती तो अन्न कैसे उपजता है ?''[३८] सरकार ने सिंचित भूमि को असिंचित साबित कर दिया। तब भू-स्वामियों का खून गर्म तो होना ही था। सरकार की अमानवीयता, संत्रास और क्रूरता के विरोध में आवाज उठना भी स्वाभाविक है। गाँववाले कहते है कि ''हमारा पूरा खानदान ढोरों का है कि आदमियों का ? नहीं

चाहिए हमे मुआवजा । बना लो कहीं और जाकर बाँध । हम आगे भी चारा खा लेंगे। यह क्या माँजरा है ? यह कैसी ठगी है ? सरकार होकर ठगती है?''[३९]

निर्मल साव उस समय गाँववालों से हमदर्दी होने का ढोंग भरते हुए और सरकारी मुलाजिमों के प्रति नफरत दिखाते हुए कहते है, कि ''सरकार ने सिंचित-असिंचित भूमि के नाम से यहाँ की तमाम जमीनें दो हिस्सों मे बाँट दी है । असिंचित भूमि का मुआवजा तय किया है प्रति बिघा छ: सौ रुपया और सिंचित का सोलह सौ। अब जैसा कि तुमने देख ही लिया है, अपने यहाँ कि ज्यादातर जमीनें दिखाई है असिंचित । यह बिल्कुल गलत बात है । मगर सवाल यह है कि सरकार से झगडे कौन ? उसे हकीकत बतलाए किस विधि से ?''[४०] अंत में यह तय हुआ कि ''सब तरह की जमीनों का मुआवजा सोलह सौ रुपए प्रति बिघा दर से मिलेगा । हाँ, बदले में उन बाबुओं को प्रति बिधा छ: सौ रुपया हम अपनी गाँठ से देंगे ।''[४१] साव और सरकारी मुलाजिम दोनो मिलकर मुआवजे की रकम से भी धूस खाना नही छोडते और किसानों को उल्लू बनाकर दंड़ा दिखाकर शोषण करते है । दरखास्त के साथ प्रति बिघा छ: सौ रुपया भी रखने के लिए कहा गया । मगर सबसे बड़ी समस्या है, कि कलदार लाए कहाँ से ? तब साव लोगों ने ढाढस बँधाया कि ''नही है रकम हाथ मे तो क्या हुआ! हम क्या मर गए है अभी ? जितनी चाहिए हमसे लो । गहना-गुरिया, बाखर-टपरा, कुआ-पेड़ गिरवी रखो और लो । इनका मुआवजा थोड़ेई मिलता है अभी ।''[४२]

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि एल.ओ.ओ. दफ्तर में बाबू तो बाबू चपरासी तक ऐसे पेश आता है, जैसे उसके सामने कोई शाह नहीं- चोर, देशद्रोही या भिखारी खडा हुआ हो । ''चपराशी को डपटकर या चिरौरी करके कोई खुश किस्मत या बहादूर किसान किसी तरह भीतर दफ्तर मे पहुँच भी जाए तो वहाँ बैठे बाबू उसे घंटो जमीन पर बिठाए रखने पर आमादा । उनकी निगाह हरदम वही तलाशती रहती कि- यह मूरख खाली हाथ आया है या कुछ लाया भी है ?''[४३] चारों ओर से लूटे गए किसान और मजदूरों के पास अब शेष बचा ही क्या होगा जो सरकारी मुलाजिम भी उन्हें नौंच-नौंच कर लूटना चाहते है । सरकारी मुलाजिम निर्दोष भू-स्वामियों को तंग और प्रताडित करने में कोई कसर नहीं छोड़ते । उपर से इन पर एसे झूठे इल्जामात लगाए जाते है जैसे भूमि-पूत्र कभी सोच भी नहीं सकता । सरकारी मुलाजिम उन्हे गुस्सा होते हुए कहते है, कि ''हमें मालूम है कि तुम्हे फलाँना साव की रकम देनी नीकलती है । फिर बिना उस साव को लिये कैसे आए तुम यहाँ । तुमने सोचा होगा कि साव को पता नही लगेगा और तुम रकम पा जाओगे । फिर मुआवजा लेकर भाग जाओगे देहात छोड़कर और साव रह जाएँगे तुमरी बाट जाहते कि हाथ मलते । अरे हमने तो सुना था कि गाँव के लोग बहुत भोले एहसानमंद होते हैं । मगर तुम तो गाँव के नाम पर बट्टा लगाने की मंशा बना बैठे । जरा सोचो, जो कई पीढियों से तुम्हारा पालन-पोषण कर रहे हैं, तुम्हें सुख-दु:ख में मदद पहुँचाते रहे हैं । आज उऋण होने का मौका आया तो तुम उन्हीं को छता बता देना चाहते हो !''[४४] सरकारी कर्मचारीयों

ने साव के बिना किसानों को मुआवजा देने से साफ इन्कार कर दिया । किसानों को अगर मुआवजा लेना है तो साव को साथ लाना ही होगा । और साथ मे आया हुआ साव किसान को मिले मुआवजे का आधे से अधिक हिस्सा लेकर अपने आपको खुश महसूस करेगा ।''अंतत: लाचार भू-स्वामी जा पहुँचे अपने-अपने साव की शरण में । साव ले जाएँगे उन्हें अपने साथ अपने घर । वहाँ फैलायेंगे उसका तमाम हिसाब । इतना घूस मे दिया, इतना पिछला निकलता या तुझ पर, इतना ब्याज पिछली रकम पर, इतना घूसवाली रकम पर इतने के तेरे गहने जो तूने हमे बेचे थे, हम वापस कर रहे है ताकि तेरे बहू-बेटियों के काम आए था कल को जब यह रकम खर्च हो जाएगी तब हमारे पास फिर से गिरवी रखने या बेचने के काम आएँ । रकम का क्या है, आज आई, कल खर्च हो गई है कि नही? तो यह सब मिलाकर हुई इतनी । तुझे मुआवजें में मिली है रकम इतनी । मुआवजे की रकम मे से हमारी उधारी चुकाने के बाद बची इतनी ।''[४५]

इस प्रकार डूब क्षेत्र के लोग साव और सरकार दोनों से छले गए । मुआवजा मिला भी तो पैसो के नाम पर रह गए ठन-ठन गोपाल । मगर कुछ ऐसे भू-स्वामी भी है, जो साव की शरण में नहीं जाना चाहते । एसे भू-स्वामियों को मुआवजा न दे पाने के हजार कारण बता दिए जाते है । भू-स्वामी की हर दलील की काट है इनके पास। जैसे कि- ''तुम वही आदमी हो जो बता रहे हो स्वयं हो, हम कैसे मान ले ? कल को कोई और आकर कहने लगे कि- मैं हूँ फलाना सिंह, तब ? तब हम कहाँ

से लाकरे देंगे उसे उसका हक । कहाँ खोजेंगे तुम्हे ?''[४६] किसानों को कभी साव तो कभी सरपंच को, कभी हदा तो कभी भाई को साथ लेकर आने के लिए कह कर मुआवजा कार्यालय से अपने घर वापस भेज दिए जाते है । ''तुम अपने गाँव के सरपंच को लेकर आओ । जी सरपंच ही नही, पंचायत ही नहीं हमरे गाँव में ।... तो हम क्या करे ? पंचायत बनाओ ! सरपंच चुनो!''[४७] किसानों को मुआवजा कार्यालय में आते देखकर उन्हें दुत्कारा जाता है । ''अरे, तुम फिर आ गए ? नही सरकार, हम तो पहली दफा आए हैं । ओहो, तुम सब के सब एक से क्यों दिखते हो ? सरकार हम सब एक ही तो है ।''[४८] इस प्रकार इन्हे हर बार मुआवजा-कार्यालय से दुत्कारे जाने पर अब साव की शरण मे जाने के अलावा और कोई रास्ता उनके पास नही बचता। मुआवजा पाने के इंतजार में इनकी आँखे तरसती रहती है, कि अब मुआवजा मिले कि हमरे सारे कर्ज मिट जाए । लेकिन उनकी आँखों का इंतजार कभी खत्म नही होता । ''अब हर फसल पर सरकारी मुलाजिम कानून का दंडा लेकर हाजिर हो जाते है । कहते है खेत सरकार का है । तुमने जबरन कब्जा करके बोया । निर्मल साव भी उनकी हाँ में हाँ मिलाते है । कहते है फसल मे से आधा हिस्सा सरकारी मुलाजिमों को दो, क्योंकि खेत सरकार का है । नहीं देंगे तो ये सिपाही-दरोगा लेकर आ जाएँगे । पूरी फसल उठा ले जाएँगे । जेल भिजवा देंगे ।''[४९] किसानों को डंडे का डर दिखाकर मुआवजा भूल जाने के लिए कहा जाता है । ''यह भी बर्दास्त । फिर एक दिन बाँध का तटबंध टूट गया । बाँध का पानी गाँव-गाँव में भर गया । फसल डूब गई

। घर द्वार डूब गया । उधर सरकार कहती है, कि उसने तो पूरा मुआवजा देकर पहलेई गाँव खाली करवा लिए थे । हम किसके द्वार पर जाकर रोए । किसे बताए कि यह झूठ है । जाने किसको क्या दिया सरकार ने मुआवजा । यहाँ तो अभी ऐसे भी हजारों है, जिन्हें खेत तक का मुआवजा नहीं मिला ।''[५०] इस तरह किसानों और मजदूरों को मुआवजे के नाम पर फूटी कौड़ी तक नही मिलती। केवल झूठी आश लगाए बैठे रहते है । और आरंभ से लेकर अंत तक मुआवजे के इंतजार मे उनकी आँखें तरसती ही रहती हैं...।

६.५ गरीबी-बेकारी अभिशाप रुप :-

लेखक ने अपने उपन्यासों में उच्च सामंती वर्ग तथा निम्न मध्यमवर्गीय कृषक और मजदूर वर्गीय समाज को चित्रित किया है । जिसमे साहूकारों और जमीदारों के द्वारा किसानों और मजदूरों की गरीबी और बेरोजगारी का फायदा उठाकर उनसे हाड-तोड मेहनत करवाते है । और मजदूरी के नाम पर दिया जाता है कूड़ा-करकट। मजदूरों का कहना है कि ''बानियों का चारा काटने की जो मजूरी मिलती है वह ठाकुरों से नही मिलती । खास करके ठाकुर देवीसिंह तो मजूरी देते ही नही ।''[५१] परिणामस्वरुप चाहे कितनी भी मजदूरी क्यों न करें, इन किसान-मजदूरों को मुँह जुठारने लायक अन्न भी नही मिलता है। और उन्हें भूखे पेट ही सो जाना पड़ता है।

ठाकुर देवीसिंह के द्वारा चमरोटे को तलवार से लहू-लुहान कर मौत के घाट उतार दिया जाता है । माँसहीन-शक्तिहीन हाड़-चाम पर लाठी और तलवार के घाव

करने का कारण यही था, कि इन बेरोजगारों ने अपनी मजदूरी के बदले में कलदार माँगे थे । शोषण, अत्याचार, अप्रामाणिकता, लूट, गुलामी और बेरोजगारी के विषचक्र में फँसे किसान और मजदूरों की घुँटन को, उनकी गरीबी, बेहाली और भूख की तड़फ को लेखक ने पूरी प्रामाणिकता के साथ उभारकर देश की अधिकांश गरीब जनता की असह्य गरीबी और दारुण दशा की ओर इशारा किया है ।

बाँध परियोजना में साहूकारों की जमीन को छोड़कर गरीब किसान और मजदूरों की जमीनें ले ली गई । जिससे खेत का काम बंद हो गया । भू-स्वामियों से उनकी जमीनें छीनकर विस्थापित कर उन्हें बाँध पर काम पर भी नहीं रखा जाता । उपर से तेन्दु पत्ते का रोजगार भी छिन लिया जाता है । जिससे बेरोजगारी की समस्या उभरकर सामने आती है । मोती साव ने इस कहावत को अपना जवीन-मंत्र बनाया है कि- ''बानिया सब कुछ आसानी से छोड सकता है पैसे के सिवा, वह भी सूद का पैसा ।''[५२] साहूकार किसानों से सस्ते दामों में जमीन खरीदकर दुगुने दामों में सरकार को जमीन बेचते है । इस क्षेत्र के किसान सूद का कर्ज कभी उतार ही नहीं पाते । कर्ज के तले किसान इस कदर दबे है कि मरने के बाद अपनी संतान को भी विरासत के रुप में कर्ज देकर ही मर जाते है । लेखक ने अपने उपन्यासों में साहूकारों की गीध-सी शोषण वृत्ति और गरीबों को लूटकर धनिक बनने की लोभवृति के दर्शन करवाए है । सरकार और साव दोनों मिलकर गरीबों का खून चूसते है । विकास-योजना में गरीब और भी ज्यादा गरीब बनते गए । किसानों की पसीनें की बूँदों का

कोई मूल्य नही आँका गया । विकास देश का और बलि गाँव के किसान और मजदूरों की ।

इस क्षेत्र के किसान और मजदूर को विस्थापित कर उनसे उनका घर, खेत, टपरा, रोजगार सब कुछ छीन लिया जाता है । जिससे वे अनाज के एक-एक दाने के मोहताज बन जाते है । आदिवासी जंगल से अपना गुजरान चलाते है । लेकिन वहाँ भी सरकार के हस्तक्षेप के कारण उनको अब गाँव और शहर में मजदूरी के लिए दर-दर भटकना पड़ता है । वहाँ इन बेजुबानों का जमकर शोषण होता है । जीरोन खेरे के राउतों को तन ढाँकने के लिए कोई कपड़ा भी नही मिलता । जीवीत रहने के लिए आधा पेट भोजन मिल जाता है, वह भी गाँव की रोटियों से । लेखक ने आधुनिक दशक की गरीबी और बेरोजगारी की समस्या को पाठक के सामने रखकर जीवन की पीडा और दर्द को अंकित किया है ।

'पंचनामा' के अकलंक की आर्थिक स्थिति इतनी बुरी है, कि उसे छोटी-सी उम्र में नौकरी करने के लिए जाना पड़ता है। लेकिन नियम के अनुसार १८ साल से पहले नौकरी पर रखना कानूनन जूर्म है । अत: दुकानदार अकलंक को नाम बदलकर और उसकी उम्र भी गलत बताकर उसे काम पर रखता है । जब वेतन लेते समय उसे यह सब पता चलता है, तो उसे अपनी काम करने की मजबूरी और गरीबी पर तरस आता है । अपने जीवन का पहला वेतन सामने देख ''अकलंक का चेहरा खिल गया। वेतन के रुपये हाथ में आते ही हाथ काँपने लगे । कही रुपये गिर न जाएँ, कहीं हँसी

का पात्र न बनना पड़े... यों उस पर हँसनेवाला यहाँ कोई था नही । अकलंक यहाँ सबसे छोटा है । इतना छोटा कि नौकरी पर रखना कठिन हो । नौकरी पर रखना गुनाह । फिर भी अकलंक को ऐसा लगा कि रुपये गिरे तो हँसेंगे सब लोग । उसने झटपट रुपये जेब में रख लिए ।''[५३] मैनेजर के कहने पर जब अकलंक ने रुपए गिने तो डेढ सौ रुपए के स्थान पर केवल ९० रुपए ही निकले । जब आनंद ने विरोध उठाया तो मैनेजर ने कह दिया कि, तुम्हें सेठजी ने इतना ही वेतन देने को कहा है । गरीब अंतत: गरीब इसलिए रहते है, क्योंकि उनके परिश्रम का पूरा मूल्य उन्हें नहीं दिया जाता । अकलंक के साथ भी बिलकुल यही हुआ । अकलंक ने सोचा कि लड़ने-झगडने की तो उसमे क्षमता है नही, और अगर वह सेठजी से निवेदन करेगा तो भी सेठजी रुपए तो देगा नही । अत: उसने सोचा की अब घी टेढी ऊँगली से ही निकालना पड़ेगा । उसने सेठजी से कहा कि, ''सेठजी, मैंने कई दुकानदारों से जरुरत का सामान उधार लिया था । सबको बताया था कि मैं आपकी दुकान मे नौकरी करने लगा हूँ । डेढ सौ रुपए वेतन मिलेगा । वेतन मिलते ही उधारी चुका दूँगा... मुझे यदि खबर होती कि नब्बे रुपये पाऊँगा तो मैं उतने रुपये का ही सामान खरीदता । अब यदि मैं दुकानदारों से यह कहूँगा तो वे यकीन नहीं करेंगे । वे मुझे झूठा समझेंगे ।... यदि मुझे इस महीने का वेतन अग्रिम...''[५४] इस प्रकार अकलंक ने सेठजी से अग्रिम वेतन लेकर अपने श्रम का मूल्य ले लिया । और फिर दुकानदार को बिना बताए ही अकलंक नौकरी छोड़ दुकान को अंतिम नमस्कार कर चला गया ।

नौकरी छोड़ने के बाद अकलंक के सामने एक नई समस्या आ गई, कि अब उसकी पढ़ाई का खर्च कहाँ से निकलेगा ? अब वह पढ़ नही पाएगा । दूसरी नौकरी इतनी जल्दी तो मिलेगी नही, अत: उसका गुजारा होगा तो कैसे होगा ? अकलंक को अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई देने लगा । शायद उसके भाग्य मे मजदूरी ही लिखी है, पढ़ना नहीं ।

० **निष्कर्ष :-**

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हमारा समाज गरीबी, बेकारी, शोषण और भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में इस प्रकार फँस गया है, कि अब उससे बाहर निकलना कठिन हो गया है । जब तक देश आर्थिक द्रष्टि से समृद्ध नही हो जाता, तब तक देश का विकास नही हो पाएगा । आर्थिक शोषण मजदूरों के साथ-साथ पढ़े-लिखे लोगों का भी होता है । गाँव में किसान और मजदूरों को अपना योग्य वेतन नही मिलता । उसी प्रकार शहर में बड़े-बड़े प्रकाशनों में काम करनेवाले लेखकों को भी अपने श्रम का योग्य मूल्य नही मिल पाता । अत: उसके लिए अपना गुजारा करना बहुत ही कठीन हो जाता है । अमीर वर्ग जोंक की भाँति गरीबों का शोषण करते है । अत: गरीब आदमी हंमेशा गरीब ही रहता है । चाहे कितनी ही मजदूरी वह क्यों न करे ।

संदर्भ-संकेत

१. शब्द-बध, वीरेन्द्र जैन, पृ.२०

२. वही, पृ.२२

३. वही, पृ.२३

४. वही, पृ.२३

५. वही, पृ.२४

६. वही, पृ.२४

७. वही, पृ.२५

८. वही, पृ.२६

९. वही, पृ.२७

१०. वही, पृ.२८

११. वही, पृ.२८, २९

१२. वही, पृ.३२

१३. वही, पृ.२९

१४. वही, पृ.२९

१५. वही, पृ.९३

१६. वही, पृ.९४

१७. वही, पृ.१०१

१८. शब्द-बध, वीरेन्द्र जैन, पृ.१०१

१९. वही, पृ.१०१

२०. वही, पृ.१०२

२१. वही, पृ.१०३

२२. वही, पृ.१०३

२३. वही, पृ.१००

२४. वही, पृ.१००

२५. वही, पृ.१११

२६. वही, पृ.११८

२७. वही, पृ.११९

२८. वही, पृ.८४

२९. वही, पृ.८४

३०. वही, पृ.८४

३१. वही, पृ.८५

३२. वही, पृ.१२४

३३. वही, पृ.१२५

३४. वही, पृ.१२५,१२६

३५. डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.२४०

३६. वही, पृ.२२८

३७. वही, पृ.२२८

३८. वही, पृ.२२९,२३०

३९. वही, पृ.२३०

४०. वही, पृ.२३०,२३१

४१. वही, पृ.२३१

४२.	वही, पृ.२३२

४३.	वही, पृ.२३२

४४.	वही, पृ.२३३

४५.	वही, पृ.२३४

४६.	वही, पृ.२३५

४७.	वही, पृ.२३५

४८.	वही, पृ.२३६

४९.	चार, वीरेन्द्र जैन, पृ.१२४

५०.	वही, पृ.१२५

५१.	डूब, वीरेन्द्र जैन, पृ.६७

५२.	वही, पृ.२०

५३.	पंचनामा, वीरेन्द्र जैन, पृ.२०४

५४.	वही, पृ.२०६

अध्याय–७

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में युग–चेतना: समग्र मूल्यांकन

आधुनिक दशक के उपन्यासकारों में वीरेन्द्र जैन का योगदान सराहनीय है। वह अपने उपन्यासों के माध्यम से अपनी बात जनता तक पहुँचाते है। और उन्हें अपनी स्थिति से अवगत करते हुए सचेत करते है। उन्होंने अपने उपन्यासों में कुछ पात्र एसे चुने है, जिसमें स्वयं लेखक का व्यक्तित्व ही छलकता दिखाई देता है। कभी-कभी तो एसा लगता है, कि उन्होने अपने जीवन के अनुभव जैसे के तैसे केवल नाम परिवर्तन करते हुए अपने उपन्यासों में दर्ज किए है। जैसे कि लेखक के उपन्यास 'सबसे बड़ा सिपहिया', और 'शब्दबध'। इन दोनों उपन्यासों में जो आनंद का पात्र है, उसमें स्वयं लेखक का व्यक्तित्व छलकता हुआ दिखाई देता है। इसके अलवा 'डूब' उपन्यास के माते जिनके दाँतों में आरंभ से लेकर अंत तक विकास की सुपाडी फँसी रहती है। वह लेखक के विद्रोही व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। 'पंचनामा' का पंचम उर्फ अकलंग उर्फ आनंद लेखक के बचपन के कड़वे अनुभवों का चिट्ठा हो एसा प्रतित होता है। उनके अधिकतर उपन्यासों में नायक का नाम- आनंद ही रखा गया है।... शायद इसके माध्यम से लेखक यह भी बताना चाहते है कि- यह सारे अनुभव करनेवाला व्यक्ति एक ही है, जो आनंद के पात्र के रुप में प्रस्तुत किया गया है।

जैनजी के उपन्यासों में स्थान-स्थान पर जागृति की दिशा में अंगूली निर्देश मिलता है। उनके पात्र शोषण का भोग बनकर मात्र देखा भर नही करते, बल्कि अपने साथ हो रहे शोषण एवं अन्याय का प्रतिकार करते हुए भी नजर आते है। उसमें चाहे स्त्री वर्ग हो, मजदूर वर्ग हो, कृषक वर्ग हो, या गाँव की आम जनता। उनके हृदय में चेतना की चिनगारी तो पड़ी हुई है ही। आवश्यकता है परिस्थिति के अनुसार खाद-पानी मिलने की। जैसे ही मौका मिलता है, कि यह चिनगारी आग का गोला बनकर आततायी को जलाकर भस्म कर देती है। गोराबाई, मुइया, फुलिया, सावितरी, अक्कल और यशस्विनी अपने नारी रुप में शक्ति स्वरुपा है। वह अन्याय का प्रतिकार करना जानती है। तो साथ-साथ मास्साव, अड्डूसाव, रामदुलारे और माते सूक्ष्मद्रष्टा बनकर लोगों को अपनी स्थिति के प्रति सचेत बनाकर विरोध के लिए तैयार करते है।

'सुरेखा-पर्व' में अनाथाश्रम में पल कर बड़ी हुई विद्या की कहानी है। जिसमें सुंदर और सुशिक्षित विद्या की शादी बाजा बजाने वाले विनय के साथ कर दी जाती है। लेकिन विनय हंमेशा जिम्मेदारीयों से बचकर अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति में ही लगा रहता है। विद्या को विनय से जिस प्रेम की अपेक्षा थी, उस प्रेम के स्थान पर उसे हंमेशा धृणा और तिरस्कार ही मिला। अत: जीवन की समस्याओं से तंग आकर अंत में विद्या उसी अनाथाश्रम में फिर से वापस चली जाती है, जहाँ से वह आई थी। 'उसके हिस्से का विश्वास' उपन्यास की कथा लेखक ने प्रथम पुरुष 'मैं' सर्वनाम को लेकर आत्मकथात्मक शैली में लिखी है। जिसमें कबीर के द्वारा छली गई भोली-

भाली और मासूम कविता की संवेदनाएँ, व्यथा और पीड़ा को उड़ेलने का भरसक, प्रयास वीरेन्द्र जैन ने किया है। 'प्रतिदान' उपन्यास का नरेन्द्र परंपरागत रुढियों का विरोधी चरित्र है। उसका यह मानना है, कि दहेज एक सामाजिक दूषण है। वह इसी शर्त पर शादी करने के लिए तैयार होता है कि वह लड़कीवालों से एक रुपए का भी दहेज नहीं लेगा। नरेन की पत्नी प्रभा नौकरी करती है, और घर को भी संभालती है। वह एक समझदार पत्नी है। अपने पति के प्रेम का वह प्रतिदान जीवन-भर देती है।

'डूब' वीरेन्द्र जैन की एक सशक्त कृति है। जिसमें लेखक ने यथार्थ का निरुपण कर समाज और राजनीति की अनैतिकता का पर्दाफाश किया है। उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश की सीमा रेखा पर बेतवा नदी पर राजघाट नामक बाँध बनाने की योजना रखी जाती है, कि वह क्षेत्र 'डूब' क्षेत्र में आ जाता है। अपनी ही जमीन से उखड़ने का दर्द इसमें व्यक्त किया गया है। 'पार' उपन्यास 'डूब' का अनुसंधान ही है। जिसमें आदिवासी संस्कृति का रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं समस्याओं का निरुपण किया है। दलित वर्ग की स्त्रीयों के उपर लादे जाते विविध नियम तथा सरपंच चुनने में भी स्त्री को शारीरिक सुख से वंचित रखने का नियम लादा जाता है। गाँववाले आदिवासियों का शोषण कर उन्हें समाज से दूर ही रखने का प्रयास करते है। 'सबसे बड़ा सिपहिया' में आनंद जो एक पत्रिका में उपसंपादक है। आनंद को पुलिस विभाग से हुए अनुभव इसमें निरुपित किए है। पुलिस तंत्र की अप्रमाणिकता,

भ्रष्टाचार, गुंड़ागीरी, अनैतिकता, छल-कपट एवं षडयंत्रों से समाज को अवगत कराना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। 'शब्दबध' में वीरेन्द्र जैन ने प्रकाशन जगत के भ्रष्टाचार और शोषण का पर्दाफाश किया है। किस तरह प्रकाशक लेखकों पर गीध-सी द्रष्टि गडाएँ उनकों नोंचने पर तैयार रहते है, इसका वास्तविक चित्रण कर पाने में लेखक समर्थ रहे है। 'तलाश' उपन्यास आत्मकथात्मक एवं पत्रात्मक शैली में लिखा गया है। कथा कहनेवाला पात्र है बीरन। गाँव में डाकूओं का त्रास बहुत ही बढ़ गया है। अत: गाँववाले खास करके साहूकार खुद को असुरक्षित महसूस करते है। लेकिन गाँव में पूजा बब्बा जैसे लोग आज भी मौजूद है, जो पूरे गाँव का रक्षण करते है। तथा जीवन में निष्ठा व प्रमाणिकता अपनाते है। 'पंचनामा' का पंचम सुखी व समृद्ध नायक वंश का वंशज है। लेकिन परिस्थिति वश उसे अनाथाश्रम में रहकर पढ़ना पड़ता है। माता-पिता तथा परिवार के होते हुए भी उसे अनाथ बनकर जीना पड़ता है। अनाथाश्रम में हो रहे भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता को उजागर करना लेखक का उदेश्य है।

इस प्रकार वीरेन्द्र जैन की कृतियाँ अपनी अलग ही पहचान लेकर चलती है। उनके साहित्य की उत्कृष्टता को ध्यान में रखते हुए उन्हें सम्मानित कर बहुत सारी कृतियों पर पुरस्कार भी दिए गए है। जिनमें-वागीश्वरी पुरस्कार- १९८८, साहित्यिक कृति पुरस्कार-१९९०, प्रेमचंद महेश सम्मान- १९९१, बाल-साहित्य पुरस्कार- १९९२, भारतीय वीरसिंह देव पुरस्कार १९९३, श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार- १९९५, बाल-

साहित्य पुरस्कार- १९९६, सुभाषचन्द्र बोस स्मृति सम्मान- १९८९ और निर्मल पुरस्कार- १९९७ का समावेश होता है । जो अपने आप में एक सराहनीय बात है ।

लेखक जिस देश, प्रदेश या युग में साँस लेता है, उस युग की एक-एक धडकन तथा चहल-पहल को वह अपने साहित्य में निरुपित किए बिना नही रह सकता । अत: प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में अपने युग की सारी वास्तविकता उनके साहित्य में आ ही जाती है । क्योंकि समाज की विद्रूपताओं का, ट्रेजेडी का तथा समस्याओं का सीधा संबंध साहित्य के साथ जुडता है । और साहित्यकार समाज की बातों का सूक्ष्मतापूर्वक निरुपण कर उस यथार्थ को अपने साहित्य में लिखकर समाज को प्रेरणा और सीख देने का काम करता है । समाज उत्कृष्ट साहित्य को पढ़कर उसमें से अपनी समस्याओं का समाधान पाता है । इस प्रकार दोनों के बीच आदान-प्रदान निरंतर चलता ही रहता है । प्रत्येक युग की अपनी-अपनी नजर होती है । और उसी के अनुसार उस युग के साहित्य का निर्माण होता है ।

साहित्य में जनता का हित व कल्याण छुपा हुआ होना चाहिए । जो समाज को विनाश के कगार तक पहुँचा दे उसे साहित्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती । समाज का विकास करना या विनाश करना साहित्यकार के हाथ में है । कलम में बहुत ही शक्ति है । अत: साहित्यकार को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए । किसी भी राष्ट्र में चेतना जागृत कर जन-जन के हृदय में विद्रोह और क्रांति का स्वर भड़काने में और स्वतंत्रता दिलाने में उस राष्ट्र के साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण रहता है । स्वतंत्रता

से पूर्व प्रेमचंद की कृति 'सोजेवतन' को जलाकर राख कर दिया गया था, क्योंकि वह कृति तीव्र राष्ट्रभक्ति की भावना से भरपूर थी । अंगेजों को डर था कि कहीं यह कृति जनता तक पहुँच गई तो पूरे देश में क्रांति और विद्रोह की लहर छा जाएगी ।

साहित्य में साहित्यकार का भोगा हुआ यथार्थ होता है । वह अपने आस-पास जो देखता है, उसी यथार्थ को उसी रुप में अपने साहित्य में अंकित करता है । मानव जीवन का संपूर्ण चिठ्ठा हमे साहित्य में मिल जाता है । वही साहित्य उत्कृष्ट है, जिसे पूर्ण करने पर मनुष्य कुछ सोचने पर मजबूर हो जाए और उसे सीख प्राप्त हो । साहित्य में मात्र कल्पना की उडान नही होनी चाहिए । परंतु वास्तविकता की कठोर भूमि होनी चाहिए । साहित्य में जितनी अधिक वास्तविकता होगी वह उतना ही अधिक मनुष्य के करीब पहुँच पाएगा । प्रेमचन्दजी कहते है कि- ''साहित्य उस रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की हो, जिसकी भाषा प्रोढ़ और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो । साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की गयी है, पर मेरे विचार से उनकी सर्वोतम परिभाषा जीवन की आलोचना है । चाहे वह निबन्ध के रुप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के रुप में । उसे हमारे जीवन की व्याख्यान करनी चाहिए ।''

प्रत्येक युग का अपना अलग महत्व होता है । युग की कोई निश्चित अवधी या समय-मर्यादा नही होती । जिस युग में जो प्रवृति, परिस्थितियाँ या विचारधाराएँ विशेष महत्व रखती है, वह युग उसी के नाम से विशेष पहचाना जाता है । जैसे कि गुप्त युग,

मौर्य युग...। कभी-कभी प्रसिद्ध साहित्य के नाम पर आधारित युग का नाम दिया जाता है । इसी तरह जिस कालखंड में जो साहित्यकार विशेष प्रवृतियाँ, परिस्थितियाँ अथवा आंदोलन महत्व पा जाता है, उसी के अनुसार युग भी बदल जाता है । और नामकरण भी धारण कर लेता है । जैसे की किसी विशेष साहित्यकारों के नाम पर आधारित युग का नाम-भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग... इत्यादि । साहित्य की विभिन्न विचारधारा और वाद के अनुसार छायावादी युग, प्रगतीवादी युग, प्रयोगवादी युग... इत्यादि । आंदोलन के आधार पर... गांधीयुग...। इस प्रकार एक युग की समाप्ति पर और दूसरे युग की शुरुआत पर कोई निश्चित सीमारेखा नही होती । संस्कृत में धार्मिक मान्यताओं के अनुसार हम सब चार युगों के परिचित हैं- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग।

साहित्य और युग-चेतना एक ही सिक्के के दो पहलू है । युग-चेतना का जन्म साहित्य की कोख से होता है । साहित्य की जमीन से विविध विधाओं का जन्म होता है- जैसे कि- उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना... इत्यादि । युग-चेतना के विभिन्न कोण विभिन्न दिशाओं में अग्रसर होते है । युगचेतना सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक चेतना के आयामों मे विभाजित होती है । अपने समय की प्रत्येक क्षेत्र की गतिविधियाँ युग-चेतना कहलाती है । वीरेन्द्र जैन ने भी अपने युग की सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक गितिविधियों की ओर लोगों को जागृत करने का अपनी तरफ से सराहनीय प्रयास किया है ।

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में युग-चेतना को सामाजिक संदर्भ में देखे तो- उसमें

स्त्रियों का शोषण, बलात्कार एवं मानसिक संत्रास विशेष ध्यानाकर्षक है । हमारी भारतीय संस्कृति में एक उक्ति बहुत ही प्रचलित है कि- ''यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:'' अत: जहाँ स्त्रियों की पूजा की जाती है वहाँ देवता वास करते है । लेकिन सदियों से हम देखते आ रहे है, कि चाहे कैसा भी युग क्यों न बदले हर युग में स्त्रियों की स्थिति तो बिल-कुल वैसी की वैसी ही रहती है । केवल कहने भर के लिए वह पुरुष के समानांतर हुई है । बाकि शारीरिक शोषण एवं बलात्कार का भोग तो उसे आज भी बनना पड़ रहा है । निर्मल साव एक ऐसा पाशविक इन्सान है, जो स्त्रियों को बहला फुसलाकर दूर जंगल में मिलने का वादा करता है । फिर उन्हें भगाकर ले जाता है । और शहर ले जाकर उन स्त्रीयों को बेच देता है । और गाँव में आकर उन स्त्रियों के भाग जाने की झूठी खबर देता है । स्त्रियाँ ही नही इस क्षेत्र में तो बच्चियाँ भी बेची जाती है । उन्हें बड़े-बड़े अफसरो के उपभोग का साधन मात्र माना जाता है । इतना ही नही बल्कि शारीरिक शोषण का भोग बनी औरतें यदि थाने में रपट लिखवाने के लिए जाती है, तो उस सुरक्षित स्थान पर भी स्त्रियों की कोई सुरक्षा नही है । वहाँ भी पुलिस कर्मी एवं डी.ओ. युवतीयों के उरोंजो और कमर पर हाथ रगडकर शरीर सुख का मजा तब तक लेते रहते है, जब तक उनका मन नहीं भरता । एसी स्थिति में युवती डी.ओ. का स्पर्श पाकर अंदर तक सिहर उठती है, मगर वह कुछ कर नही पाती । जहाँ स्त्री स्वयं दूसरी स्त्री की दुश्मन हो वहाँ औरतों की हालत कभी सुधर नही पाती । एक बुढ़िया हररोज एक सुंदर स्त्री को डी.ओ. के सामने

पेश करती है, और बदले में पुलिसवालों से बहुत सारा रुपया प्राप्त करती है । इतना ही नही, परंतु बुढ़िया सुंदर औरतों को डरा धमकाकर उनसे धंधा करवाती है । देश और समाज के रक्षक ही जब भक्षक बन बैठे हो, तो लाचार, बेबस, शारीरिक एवं मानसिक त्रास का भोग बनी हुई औरतें अब किसके पास जाकर अपनी सुरक्षा की माँग करें...!

'प्रतिदान' में प्रभा की स्थिति भी बिलकुल वैसी ही है । प्रभा ने जिस परिवार के लिए अपने आप को मिटा दिया, उसी परिवार का सभ्य उसके देवर ने गर्भवती प्रभा के पेट में इस कदर लात मारी की जिससे अब कभी भी वह माँ नही बन पाएगी। सबकुछ समर्पित करने पर भी स्त्री को बदले में मिलती है मात्र पीड़ा, उपेक्षा और न खत्म होनेवाला दर्द । उसके लिए न घर में सुरक्षा है, न घर के बाहर की दुनिया में। औरतों को चारों और से शोषण के सिकंजे कसने के लिए हंमेशा तैयार ही रहते है । इस चक्रव्यूह से पूर्णत: निकल पाना उसके लिए कठिन है ।

हमारे समाज में स्त्री-उत्पीड़न और बलात्कार के किस्से आए दिन बनते है । पुरुष की पाशविकता का शिकार बनी स्त्री को समाज तिरस्कृत करता है । उसके प्रति सहानुभूति जताने के बजाय उलटे उसके प्रति दोषारोपण किया जाता है । उसमें भी अनाथाश्रम में पली-बढ़ी लड़की को तो हेय की द्रष्टि से ही देखा जाता है । कोई भी लड़का अनाथाश्रम की लड़की से शादी करने के लिए तैयार तो हो जाता है, लेकिन शादी के बाद जब वह लड़की गर्भवती बनती है, तो वह लड़का अपनी जिम्मेदारी से

भागने लगता है । एसी लड़की का पति फिर बाद में उसे छोडकर चला जाता है या तो उससे नाजायज काम करवाता है । अनाथाश्रम की सुशिक्षित लड़की विद्या का पति विनय जब विद्या गर्भवती बनती है तो वह उससे भागने लगता है । वह नही चाहता था, कि बच्चा जन्म ले । अत: बच्चे के पेट में रहते हुए विनय ने विद्या के साथ राक्षसों की तरह कई बार संभोग किया, ताकि बच्चा गिर जाए । फिर भी बच्चे ने जन्म लिया, तो वह मासपिण्ड के अलावा कुछ भी नही था । तब विनय ने विद्या पर आरोप लगाते हुए कह दिया कि- यह बच्चा मेरा नही है, किसी और का है । पति द्वारा अपमानित एवं तिरस्कृत विद्या अब अपने आप को पवित्र साबित कैसे करे ? जब विद्या दूसरी बार गर्भवती बनती है, तो विनय फिर से उसी तरह गर्भ गिराने का प्रयास करता है, जैसा की पहली बार किया था । लेकिन सचेत विद्या अब विनय को अपने बिस्तर पर आने ही नही देती । अत: विनय कभी भी विद्या को पीट देता है । जब दूसरा बेटा जन्म लेता है, तो विनय गुस्से में उस बच्चे को मार देता है । तब लाचार औरत विद्या निश्चय करती है, कि अब मैं इस नरपशु के साथ नही रहना चाहती। और ट्रेजेडी तो देखो की समाज के त्रास से थकी हारी विद्या अंत में उसी अनाथाश्रम में वापस चली जाती है, जहाँ से वह आई थी ।

इसी तरह कई निर्दोष स्त्रियाँ समाज के अत्याचार, शोषण एवं पाशविकता की वजह से सगर्व सीर ऊँचा रखकर जी नही पाती । कमरे की चार दिवारों के बीच उसे शारीरिक व मानसिक यातनाएँ ही मिलती है । वह स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ

है । अत: उसे हंमेशा पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा जाता है । ''डूब'' में कैलास महाराज की कामुक द्रष्टि चन्द्रभान अहीर की लड़की अक्कल पर पड़ती है । वह दूपहर मे मंदिर में ठाकुरजी को भोग चढ़ाने आती है, और कैलास महाराज उस पर बलात्कार करते है । जब अक्कल के पिता कैलास को अपनी बेटी के साथ शादी करने के लिए कहते है, तब कैलास महाराज जाति-पाँति पर उतर आते है । उन्हें निम्न जाति की लड़की को अपनाने में शर्म आती है । कैलास को निम्न जाति की लड़की के साथ बलात्कार करते वक्त शर्म नही आई, और अब उसे अपनाने में शर्म आ रही है ।

लेखक स्पष्ट करना चाहते है, कि समाज के दोहरेपन और खोखलेपन में स्त्री-वर्ग चक्की की तरह पीसता चला जाता है । अक्कल के बाद अब कैलास की कामुक द्रष्टि गोराबाई पर भी गडी है । उसने दो आदमियों को गोराबाई के पीछे लगा दिया, और सोचा कि जब ये दोनों गोराबाई को भोग ले तो उसके आँखों देखा साक्षी होने के नाते जब चाहेगा तब उसकी गोर और गदराई काया पा सकेगा । लेकिन कैलास अपने ही चक्रव्यूह में फँस जाता है । गोराबाई स्वयं अपने शील की रक्षा करती है ।

समाज की हर परंपरा व रीति-रिवाज मात्र स्त्री को लेकर ही है । पुरुष परंपरा से मुक्त होता है । जीरोन खेरे का मुखिया एक बेहतर सरपंच पाने के लिए मुइया और फुलिया को देह-सुख से वंचित रखते है । क्योंकि इस खेरे का नियम है कि मुखिया माई को आजीवन दैहिक सुख से वंचित रखा जाता है । मगर मुइया एवं फुलिया से देह का ताप सहन नही होता । अत: मुइया अपने देह के ताप को मिटाने के लिए खेरे

से भाग जाती है । सावितरी की स्थिति भी बिलकुल यही है । सावितरी दीपू से प्रेम करती है और उससे शादी भी करना चाहती है । लेकिन सावितरी के माता-पिता उसका रिश्ता कहीं और तय कर देते है । हमारे समाज में लड़कियों को अपना जीवनसाथी चूनने की पूर्ण स्वतंत्रता नही दी गई है । माता-पिता अपनी लड़की के लिए जो वर मान्य करे उसके साथ ही उसे शादी करनी पड़ती है । सावितरी ने दीपू को पसंद किया तो पूरी बिरादरी सावितरी और दीपू को मार डालने के लिए तैयार हो जाती है । लेकिन सावितरी और दीपू परंपरा को तोडकर अपनी बात एवं निर्णय पर डटे रहते है ।

प्रभा शादी करके जिस परिवार में जाती है, उस परिवार में एक परंपरा है, कि जब तक वधू पहाडी पर जाकर दर्शन नही कर आती, और अपने हाथों से सबको खीचडी बनाकर नही खिला देती तब तक वह अपने मुँह में एक कौर तक नही रख सकती । पहाड़ी पर चढ़ते वक्त भूखी और प्यासी प्रभा अधमरी होकर बेहोश हो जाती है । उसने तीन दीन से कुछ भी खाया-पीया नही है । फिर भी रुढिचुस्त समाज प्रभा की ऐसी हालत पर तरस नही खाता । और उस पर भूत-प्रेत का साया होने की शंका व्यक्त करते है । इतना ही नही प्रभा को मेक्सी में देखकर उनकी सास सबके सामने प्रभा को नीचा दिखाने के लिए टोकती है । स्त्रियों के लिए एक ही पहनावा परंपरा से चल रहा है साडी । वह काम-काज में अपनी सहूलियत के लिए अगर दूसरे कपड़े पहनती भी है, तो उसे धृणा व तिरस्कार का पात्र बनना पड़ता है । शादी होने के बाद

लड़की के लिए उसकी सास जो पहनावा उसके लिए तय करे वही उसे पहनना पड़ता है। उसकी खुद की कोई पसंद-नापसंद कोई मायने नही रखती। शादी के बाद उसे परंपरा के बँधनो में इतना बाँध दिया जाता है कि उसका वजूद ही मिट जाता है।

सरकार और साहूकार के शोषण और अत्याचार की आग में पूरा कृषक समाज एवं मजदूर वर्ग फँसा हुआ है। लड़ैई गाँव में कृषक एवं मजदूरों की व्यथा तो देखों कि- ये लोग दिन-रात कड़ी धूप में काम करते है, फिर भी उन्हें दों वक्त की रोटी भी नशीब नही होती। इस गाँव के साहूकार तो मजदूरों को काम करने पर मजदूरी के नाम पर कूड़ा-करकट दे देते है। नकद कलदार तो कभी इन मजदूरों को मिलते ही नही। अट्ठू साव के जागृत करने पर जब पूरे चमरौटे ने ठाकुर देवीसिंह से अपनी मजदूरी माँगी, तो ठाकुर का तीसरा नेत्र खुल गया। इस क्षेत्र में मजदूरी माँगना सबसे बड़ा गुनाह जो है। मजदूरी माँगने के सजा स्वरुप ठाकुर रात में चमरौटे के टपरा में घूसे और मजदूरों के उपर लाठी और तलवारों से वारकर उन्हें बुरी तरह से घायल कर दिया। माँसहीन हाड़ों पर पड़ती लाठी की आवाजें सुनने वाला वहाँ कोई नहीं था। चारों और हाहाकार मच जाता है। घूमा ठाकुर का विरोध करने दौड़ा तो ठाकुर ने घूमा के भाई बसोरे के उपर तलवार से वार कर मार डाला। इन मजदूरों का गुनाह सिर्फ इतना था, कि इन लोगों ने अपने हक और अधिकार की मजदूरी माँगी थी। काम के बदले में मजदूरी माँगना क्या इतना बड़ा गुनाह है, कि उन्हें अपनी जान से भी हाथ धोना पड़े ? इस क्षेत्र के लोग शोषण के दल-दल में इस कदर फँसे हुए है

कि वह जितना बाहर निकलने की कोशिश करते है, उतने ही अंदर धँसते चले जाते है। लेखक स्पष्ट करते चलते है, कि- जो अत्याचार का विरोध करते है, उन्हें ठाकुर जैसे दरिंदे समूल नष्ट करने पर उतारु हो जाते है। वे निहत्ये मार सहने के अलावा और कर भी क्या सकते है ?

साव और सरकार दोनों एक-दूसरे से मिले हुए है। विकास-योजना के तहत जमीनें मात्र किसानों की ही गई, साव की नहीं! यह कैसा अन्याय है । उपर से सरकार ने किसानों की सिंचित भूमि को असिंचित साबित कर दिया और मुआवजा कम दिया। सरकार भी अशिक्षित किसानों के साथ छल-कपट कर उन्हें लूटने का प्रयास करती है। चारों और से छले गए लूटे गए, निर्दोष किसान आखिरकार जाए तो कहाँ जाए? किसानों को अपनी जमीन, मकान और अपने गाँव से विस्थापित कर दिया जाता है। अपनी जमीन से उखड़ने का दर्द वे सह नही पाते। अपने गाँव व मकान को छोड़ पाना उनके लिए असह्य हो जाता है। गाँव के मुखिया माते सरकार की अनैतिकता एवं विनाश लीला को देखकर बोखला उठते है, और चिल्लाते है कि कोई हमें बताता क्यों नहीं कि हमें कहाँ बसाया जाएगा ? किसानों से उनकी जमीनें छीनकर उनके पुनर्वास का कोई इंतजाम नही किया जाता। न तो मुआवजा ही दिया जाता है। उपर से उन्हे सारी सुविधाएँ देना भी बंध कर दिया जाता है। एक क्षेत्र के विकास के लिए दूसरे क्षेत्र के बहुत सारे लोगों को उजाडा जा रहा है। यह कैसी विकास योजना है...!! 'डूब' क्षेत्र में आनेवाले हर गाँव को शिक्षा देना बंद कर दिया

जाता है। उपर से तेंदु पत्ते का व्यवसाय भी बंद हो जाता है। बाँध-निर्माण में मजदूरी पर भी इन्हें नहीं रखा जाता। और इन लोगों का मुख्य व्यवसाय खेत काम तो इनसे छीन ही लिया जाता है। अत: इस क्षेत्र का किसान जो अन्न उगाकर सबको खिलाता है, वह स्वयं अनाज के एक-एक दाने का मोहताज हो जाता है। इतना ही नहीं लोग अनंत इंतजार में बैठे है कि कभी न कभी तो हमारी स्थिति सुधरेगी। लेकिन बरसो बीत जाते है फिर भी बाँध का काम आगे नही बढता। तब समाचार मिलते है, कि अब यहाँ बाँध नही अभ्यारण्य बनाया जाएगा। ताकि पशु बेखटके रह सके! अरे! मनुष्य की किंमत पर पशुओं के लिए सुविधा बनाई जाती है। क्या गरीबों की जिंदगी का कोई मूल्य ही नही है। आदिवासियों को भी जंगल से भगा दिया जाता है। और वहाँ की जमीन पर निर्मल साव अपना कब्जा जमाना चाहते है।

प्रेम का प्रकाश अत्यंत उज्ञवल व पवित्र होता है। निर्मल और शुद्ध प्रेम शरीर से परे होकर सीधा हृदय से जुड़ता है। परंतु कभी-कभी प्रेम की आड़ में बरसों से अतृप्त कामवासना सक्रिय हो जाती है। उसे सही और गलत का ध्यान भी नही रहता। वासना के प्रवाह में वह अपनों को भी विनाश की खाई में धकेल देता है। विद्या की मम्मी अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति अपने दामाद विनय से करती है। वह यौनवृति में इतनी अंधी हो जाती है, कि उसने विनय के साथ कई बार संभोग भी किया। जब भी विद्या की मम्मी अतृप्ति-सी महसूस करती तो वह अपने दामाद को महीनेभर के लिए दिल्ली बुला लेती। एक बार विद्या अपने पति विनय और मम्मी को

बुरी हालत में संभोग करते हुए कमरे में देख लेती है। विद्या को अपनी माँ के कर्मो पर शर्म व धृणा आने लगती है। वह सोचती है, कि यह अतृप्ति है या आदत ? जो अपनी बेटी के घर को बर्बाद करने पर तुली हुई है। दिल्ली से आने पर जब विनय के कूल्हों में दर्द होने लगता है, तब विद्या उससे कहती है कि- लगातार महीने भर औरत के साथ संभोग करोगे तो यही होगा ! विद्या से एसी बात सुनकर विनय उसे पीट देता है। विनय को विद्या से जरा-सा भी प्रेम नही है। वह केवल अपने शरीर की भूख मिटाने के लिए ही विद्या के साथ सोता है।

विनय की अतृप्ति इतनी हद तक बढ़ जाती है, कि वह जहाँ ब्लाउज का नाप लेने गया था, उस लड़की को पटाकर अपने शरीर की भूख मिटाने का प्रयास करता है। लेकिन वहाँ अचानक कोई आ जाता है। विनय जल्दी से संभल नही पाता, क्योंकि उसकी इच्छापूर्ति अब भी नही हुई थी। अत: गाँववाले विनय को बहुत मारते है, और उसकी काफी थूँ-थूँ भी हुई।

अनाथाश्रम के अध्यक्ष भी लड़कियों के प्रति सहानुभूति जताने के नाम पर उसके अंग-प्रत्यंगो को सहलाकर अपनी अतृप्त वासना को तृप्त करने का प्रयास करते है। पुलिस अधिकारी रपट लिखवाने आई युवती के जवान जिस्म को देखकर लार टपकाने लगते है। उसके अंदर वासना का कीड़ा जागृत हो जाता है। प्रेम के नाम पर स्त्रियों का केवल उपयोग किया जाता है। जवान और सुंदर जिस्म को देखा नही कि पुरुष में पाशविकता जन्म ले लेती है। आवश्यकता है काम-वासना रहित पवित्र प्रेम और स्नेह की।

शादी-ब्याह के मामले में भी लड़कियों से कभी राय नही ली जाती । लड़के वालों के सामने उसे पकवान सजी थाली की तरह पेश किया जाता है । लड़कियों को सजा-धजाकर काँच की गुड़ियाँ की तरह पेश करना उसके नारीत्व का अपमान है । सुंदर व सुशील लड़की को हर कोण से देखा व परखा जाता है । उसमें कितने गुण और दोष है, सब जाँचा जाता है । लेकिन खुद के लड़के मे कितने गुण है, यह कोई नही देखता । विद्या की शादी उसकी मम्मी ने उससे बिना पूछे ही तय कर दी । पढ़ी-लिखी विद्या को विनय ने बहुत सारी बातें झूठी और बेबुनियाद बताई तथा छल से शादी की । सारा भंड़ा फूटता है शादी के बाद...! अब विद्या जाए भी तो कहाँ जाएँ..!

प्रभा को हर लड़के के द्वारा नापसंद इसलिए किया जाता है... कि उसके पिता की हेसियत लड़केवालों को दान-दहेज देने की नही थी । जबकि नरेन एक एसा लड़का है, जो अपनी शादी में एक रुपए का भी दहेज लेना नही चाहता । वह दहेज को सामाजिक दूषण मानते हुए उसका विरोध करता है । यह बात उसके पिताजी एवं परिवारवालों को नापसंद आती है । नरेन के मना करने पर प्रभा दहेज में कुछ भी नही लाती, जिसकी वजह से ससुराल में कोई भी व्यक्ति उससे ठीक ढंग से बात तक नही करता । 'सुरेखा-पर्व' में विद्या दहेज मे बहुत सारी चीजें लाई है । जिसकी वजह से उसका पति नरेन बहुत खुश है । दहेज-प्रथा समाज का खतरनाक शत्रु है । दहेज लेकर ससुराल में आनेवाली लड़की सर्वगुन संपन्न बन जाती है । और बिना दहेज के सुंदर एवं सुशील लड़की में भी कई कमियाँ निकालकर उसे परेशान किया जाता है ।

और उसे आजीवन उपेक्षा का भोग बनना पड़ता है । दहेज-प्रथा की आग में न जाने कितनी ही लड़कियाँ जल कर राख हो गई । मगर फिर भी उसमें सुधार के कोई लक्षण आज भी नजर नही आते ।

आदिवासियों की विवाह प्रथा कुछ अलग है । जीरोन खेरा में जब लड़की-लड़का विवाह योग्य हो जाते है, तब गौड़ बब्बा के स्थान पर मढ़वा गड़ा दिया जाता है । विवाह में तीन लड़के और चार लड़कियाँ होती है । लड़का आकर ढोल बजाता है, और जिस लड़की को वह लड़का पसंद होता है, वह अपने स्थान से उठकर उस लड़के के पास आ जाती है । इस तरह लड़कियों को अपना वर चुनने की स्वतंत्रता दी जाती है ।

समाज में जब अन्याय, जुल्म और शोषण हद से ज्यादा बढ़ जाए तो उसका विरोध अवश्य करना ही चाहिए । अपने हक एवं अधिकारों के लिए लड़ना मनुष्य को सीखना चाहिए । लेखक भी यही बात बताते है और अपने उपन्यासों में कुछ पात्र एसे चुने है, जो स्वयं जागृत है और अन्य लोगों को भी जागृति की दिशा में ले जाते है। शोषण-चक्र जब हद से ज्यादा बढ़ जाए तो मनुष्य के सीने में दबी चीनगारी भडक कर आग का गोला बन जाती है । और यही बात वीरेन्द्र जैन के हर पत्रि में नजर आती है । चाहे वह अट्टू साव हो या माते । चाहे वह गोराबाई हो या मास्साव । या फिर रामदुलारे और यश ही क्यों न हो । सबके सीने में समान रुप से चेतना प्रज्जवलीत है ।

आजकल निर्दोष एवं भोले-भाले लोगों से छल-कपट एवं षडयंत्रों का प्रमाण बढ़ गया है । 'पंचनामा' के पंचम को छल से अनाथाश्रम में भर्ती करवा दिया जाता है । और उसके नाम का प्रमाणपत्र भी छल से गलत बनवाकर अनाथाश्रम में मामा द्वारा पेश किया जाता है । पंचम नही जानता की यह सब क्या हो रहा है, लेकिन वह इतना अवश्य जान गया कि अब उसका वजूद ही इस दुनिया से मिट गया है । पंचम के स्थान पर उसे अकलंक बना दिया जाता है । 'उसके हिस्से का विश्वास' में भी कबीर कविता को अपने प्रेम जाल में फँसाकर उसकी जिंदगी के साथ खिलवाड करता है ।

गाँव में डाकूओं का त्रास इतनी हद तक बढ़ गया है, कि गाँववालें अपने आप को असुरक्षित महसूस करते है । साल भर की महेनत की कमाई डाकू आकर एक ही बार मे ले जाते है । इतना ही नही घर में घूसकर धाकधमकी देकर उन्हें मार भी डालते है । लोग पुलिस के पास जाकर अपनी सुरक्षा की माँग भी नही कर सकते । क्योंकि पुलिस स्वयं डाकू वेश में आकर लोगों को लूटने का काम करती है । समाज में स्थान-स्थान पर अनीति, भ्रष्टाचार, व अप्रामाणिकता का राक्षस अपना मुँह खोले बैठा है । जो लोगों को स्वाहाँ करने पर तुला हुआ है । चाहे गाँव हो या बड़ा शहर उसमें एक भी जगह एसी नही है, जो भ्रष्ट न हो चुकी हो । तो एसी स्थिति में अनाथाश्रम कैसे बाकी बच सकता है ? पंचम उर्फ अकलंक जिस अनाथाश्रम में रहता है, उसके अधीक्षक आश्रम के कुछ लड़कों को अपने हाथ का हथकंड़ा बनाते है । और

आश्रम के पैसे खा जाते है ।

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों का राजनीतिक चेतना के संदर्भ में मूल्यांकन करे तो- यह बात सामने आती है कि राजनैतिक मूल्यों में किसी भी युग में कभी भी कोई परिवर्तन नही आता । चाहे वह आदिकाल की शासन-व्यवस्था हो या आधुनिक युग की शासन-व्यवस्था । जैसे ही सत्ताधारी नेता या सरकारी कर्मचारियों को अपना पद प्राप्त होता है, वैसे ही उनके तेवर बदलने लगते है । और सत्ता के मद में अँधे होकर चंद रुपयों की लालच के लिए अपने इमान को भी बेचने में पीछे हट नही करते । आजादी मिलने के बाद इस देश के लोगों में आशा की किरन छा जाती है कि- अब हमारा शासन होगा और विकास भी होगा । अब गरीबी, बेकारी, शोषण, भ्रष्टाचार और अत्याचार से मुक्ति मिलेगी । नई-नई विकास-योजनाओं के तहत हमारा विकास होगा। लेकिन इस देश के लोगों की आशा जल्द ही निराशा में बदल जाती है ।

बाँध परियोजना के तहत उतर-प्रदेश और मध्यप्रदेश की सीमारेखा पर राजघाट पर बाँध बनाने की योजना शुरु होती है । जैसे ही बाँध का काम शुरु होता है, यह पूरा क्षेत्र 'डूब' क्षेत्र में आ जाता है । अत: लोगों से उनके घर, मकान, खेत छीन लिए जाते है । बच्चों से उनकी मदरसा और मजदूरों से मजदूरी छीन ली जाती है । उपर से किसान एवं मजदूरों को बाँध पर काम भी नही दिया जाता । हाडचाम से बने मजदूर अब जिंदा लाश की तरह लाचार-बेबश इधर से उधर भटक रहे है । लेकिन उनकी गरीबी व बेकारी की तरफ ध्यान देनेवाला एक भी नेता या सरकारी कर्मचारी

नही है ।

बाँध पर पानी छिके जाने की वजह से गाँव में बार-बार पानी की बाढ आती है, और अपने साथ पूरे गाँव को बहाकर ले जाती है । खड़ी फसल का विनाश हो जाता है । बहुत से लोग और जानवर मर जाते है । तब सरकार झूठ बोलती है कि- हमने इन लोगों को मुआवजा देकर कहीं और बसाया है । वास्तव में न तो मुआवजा दिया गया है, न तो कहीं और बसाने का इंतजाम किया है । सरकार और साव दोनों मिलकर गाँववालों को लूटते है । अप्रामाणिकता व भ्रष्टाचार कर किसानों को ठन-ठन गोपाल बना दिया जाता है । पानीपुरा गाँव में तो पानी का एक मात्र साधन थी नहर। उसे भी मुहाने से बंद कर दिया जाता है तो पानीपुरा का एक-एक व्यक्ति पानी की बूँद के लिए तड़प-तड़प कर मर जाता है । सरकार गाँव उजाड़ने नही आई गाँव स्वत: ही उजड़ गया ।

बाँधवालों ने जगह-जगह गहरे गड्डे खोद दिए है, जिसमे किसी भी मवेशी या आदमी के गिर कर मर जाने का डर लगा रहता है । गाँव में चारों और इतने खड्डे खोद दिए है, कि बाहर के लोग गाँव में नही आ सकते और गाँव के लोग बाहर नही जा सकते । बाहरी समाज से यह गाँव कटकर रह जाता है । यह विकास है या विनाश! चंद लोगों के विकास के लिए बहुतों का विनाश किया जा रहा है । माते एसे विकास पर आरंभ से अंत तक थूँकते चले जा रहे है और गुस्से से युक्त होकर कहते है कि- ''लाबरी है जा सरकार, महालाबरी, महाझूठी, सरकार झूठी!''

बाँध-योजना की तरह सरकार ने अब नसबंदी का अभियान भी शुरु किया है। जिसमें सरकारी कर्मचारियों के द्वारा गाँववालों के साथ क्रूर और धिनौना व्यवहार किया जाता है । हीरासाव अपने निजी स्वार्थवश गाँव के आदमियों को मुआवजा देने के नाम पर छल से शहर ले जाते है । और जबरदस्ती उनकी नसबंदी करवाई जाती है । सरकार आबादी से परेशान है, अत: जनन-नश काट कर सरकार बढ़ती हुई आबादी से मुक्त होना चाहती है । लेकिन नसबंदी के अभियान में लापरवाही की वजह से गाँव के सात युवक मर जाते है । कर्म सरकार के साव के और दुर्दशा इन बेजुबानों की । निराश हुआ सारा समूह जब गाँव में वापस आता है, तब वास्तविकता जान कर माते सरकार की संवेदनहीनता पर और क्रूरता पर व्यंग्य करते है । गाँव के निर्दोष, निरक्षर, नि:सहाय लोगों को साव और सरकार दोनों ने मिलकर अपने स्वार्थ का मोहरा बनाया । हीरासाव ने जो नीति गाँववालों के साथ अपनाई उसे ही थोड़ी फेर बदल कर निर्मल साव ने भी आदिवासियों के साथ अपनाई । सरकारी कर्मचारी ने निर्मल साव को दो हजार आदमी को नसबंदी करवाने के हेतु उन्हे बहला फुसलाकर लाने का काम सौंपा । निर्मल साव उनसे झूठ बोल कर चंदेरी ले जाते है । उनके साथ यह सब क्या हो रहा है यह किसी को पता नही चला । जब बहुत महीनों के बाद किसी के भी घर में बच्चा नही जन्मा तब निर्मल साव का कपट सबको समझ में आ गया । खेरे का मुखिया परेशान हो जाता है, कि अगर एसा हुआ है तो हमारे खेरे का विकास रुक जाएगा । छल की आखिर पराजय होती है । छल करके भी सरकार

गाँववाले और खेरेवाले के आगे हार गई। फिर से हर घर में किलकारियाँ सुनाई देने लगी। अनैतिकता के सामने नैतिकता की जीत गई। लेखक ने असंभव कार्य को भी संभव बताकर निर्दोष सर्वहारा वर्ग का विजय घोष किया है।

भ्रष्टाचार और अनैतिकता क्षेत्र एवं विभाग में फैल गई है। पुलिसतंत्र भी इससे बाकी नही बचा। आनंद के घर चोरी हो जाने की वजह से वह रपट लिखवाने थाने में आता है। लेकिन कोई भी पुलिस अधिकारी उसकी रपट दर्ज ही नही करता। आनंद एक पुलिस कर्मचारी से दूसरे कर्मचारी तक अपनी बात कहता रहता है, लेकिन उसकी बात पर कोई ध्यान ही नही देता। अंत में आनंद को पता चलता है, कि उसके साथ एसा व्यवहार क्यों किया जा रहा है। वास्तव में उसने पुलिस का चाय-पानी के पैसे नही दिये थे, ना ही तो वह सिगरेट वगैरह का इंतजाम कर रहा था। अत: थानेदार इस इंतजार में था कि आनंद कुछ चाय-नास्ते का इंतजाम करे तो बाद में उसकी रपट लिखी जाए। लेकिन प्रामाणिक आनंद जान-बूझकर उन्हें एक रुपया भी नही देता। अत: आनंद की रपट न लिखकर उसे परेशान किया जाता है। आनंद शाम तक थाने में बैठा रहता है और पुलिस द्वारा आम जनता के साथ हो रहे व्यवहार को भी देखता है। ताई के साथ रपट लिखवाने आई युवती के साथ भी पुलिस का व्यवहार भद्दा और शर्मनाक है। पुलिस युवती को छेडनेवाले शराबी को पकडने के बजाय खुद शराबी बनकर युवती के साथ सोने का षडयंत्र रचते है। थानेदार शराबी के रुप में युवती की जवानी का मजा उठाना चाहते है।

एक वृद्ध बमुश्किल से चोर को पकड कर थाने में लाता है । और रपट लिखवाकर चोर को अंदर करना चाहता है । यह चोर उचक्का वृद्ध को रास्ते भर मार डालने की धमकी देता रहा । जैसे ही वृद्ध उसे थाने में लाकर अपनी बात प्रस्तुत करते है, थानेदार वृद्ध को बिना बताए ही चोर से रिश्वत लेकर छोड देते है । और एलान करते है कि वह चोर नहीं बल्कि एक शरीफ आदमी था । वृद्ध अब डर के मारे काँपने लगता है । एक तो वृद्ध के पैसे गए, उपर से चोर ने जान से मार देने की धमकी दी है, सो वृद्ध की जान का भी खतरा है । और इधर चंद रुपयों के लिए थानेदार ने वृद्ध की जिंदगी के साथ खिलवाड किया । जब वृद्ध गुस्से से लाल होकर सिपाही को सारी बातें बताता है, तो वह कहता है कि इसमें क्या है ? आप रपट दर्ज करवा दिजीए, हम उसे फिर से पकड लेंगे । अब वृद्ध पुलिस पर विश्वास नहीं करता और वह रोता हुआ वहाँ से बिना रपट लिखवाए ही चला जाता है । वृद्ध के जाने के बाद सब मिलकर जोरों से हँसते है और रिश्वत में मिली रकम का बँटवारा करते है। पुलिस सिवाय गुंड़ागीरी के और कोई काम नही करती ।

सत्ता प्राप्ति के साथ नैतिकता, कर्तव्य-पालन एवं प्रामाणिकता जुडती है । मगर सत्ता हासिल होते ही कर्मचारी अपने कर्तव्य को भूल कर अकर्मव्यता एवं पाशविकता पर उतर आते है । पुलिस के लिए एक सामान्य रपट लिखना भी बड़ी महेनत का काम है । वहाँ किसी भी व्यक्ति का कोई मूल्य नही है । घंटो तक थानेदार का इंतजार करने पर भी आनंद को न तो थानेदार से मिलवाया जाता है, और न तो उसकी रपट दर्ज

की जाती है । शाम तक अपमान के घूँट एवं पुलिस का वहशीपन इतनी हद तक बढ जाता है, कि आनंद काँपकर वहाँ से भाग जाता है । पुलिस तंत्र को देखकर आनंद को अब लगने लगा कि यहाँ तो अंधेर ही अंधेर है । यहाँ किसी की भी सुनी नही जाती। हाँ, जिनकी जेब पैसों से भरी हुई हो उसकी ही यहाँ मदद की जाती है । गरीबों के लिए पुलिस कोई काम नही करती । आनंद जैसे ही पुलिस की वास्तविकता से परिचित होता है, वह पुलिस की प्रशंसा का जो इंटरव्यू छापना चाहता था उसे छापने से उसने अब इन्कार कर दिया । क्योंकि सरासर गलत बातें वह कैसे प्रकाशित कर सकता है ? अंत में जब पुलिसवालों को पता चलता है कि जिसके साथ उन्होने बुरा व्यवहार किया था वह पत्रकार है, तो पुलिस के तेवर ही बदल जाते है । और डी.ओ. भी केवल आनंद को खुश करने के लिए दिखावे के लिए अपने स्टाफ को धमकाने का ढोंग करता है । क्योंकि अगर आनंद ने नाखुश होकर कुछ इधर उधर का छाप दिया तो समाज में पुलिस तंत्र की बदनामी होने का डर था । अधीक्षक से लेकर सचिव, आई.जी. और सामान्य सिपाही तक सभी कर्मचारी भ्रष्ट हो चुके है, और आपस में मिले हुए है । सिपाही डंड़े की चोट पर रिश्वत में स्कूटर और फ्रिज लेकर अपने घर में बसाते है । चाय-लस्सी के ग्लास की परंपरा तो कभी खत्म ही नही होती । कभी गाय के दूध की लस्सी तो कभी भैंस के दूध की । लेखक ने अंगुलि-निर्देश किया है कि- सामान्य जनता कि जिनके पास पुलिस को रिश्वत मे देने के लिए कुछ नही है, उन्हें पुलिस की अवहेलना, नृसंशता और डंडे का शिकार ही बनना पड़ता है।

वह थाने में आकर भी सुरक्षित नही है । थानेदार के सामने बड़े-बड़े डाकू भी छोटे पड़ जाते है ।

आनंद पुलिस की प्रशंसा के स्थान पर उसको हुए अनुभव की वास्तविकता एवं दुर्व्यवहार को जब अपनी आपबीती के रुप में छापता है, तो पुलिस का तीसरा नेत्र आनदं को भस्म करने के लिए खुल जाता है । पुलिस ने आनंद को अपने षडयंत्रों के चक्रव्युह में एसा फँसाया कि जिससे बाहर निकलना आनंद के लिए कठिन हो जाता है । आनंद जब अपनी दक्षिण यात्रा पूर्ण करके वापस लौट रहा था, तो रात में अचानक पुलिस द्वारा भेजे गए आदमियों ने उसे बेइंतहा पीट दिया । और बाद में उसी आदमियों के द्वारा उसे अस्पताल भी भेज दिया जाता है । अस्पताल में पुलिस अपना असली चेहरा आनंद के सामने लाती है और कहती है कि- देखा पुलिसीया दाव ! और अगर आगे भी तुने इसी तरह चूँ-चपड़ की तो अंजाम अच्छा नही होगा । इतना ही नही पुलिस ने डॉक्टर को रिश्वत देकर आनंद के खिलाफ गलत रिपोर्ट बनवाई कि- आनंद रात में शराब के नशे मे चूर था और इसी वजह से खड्डे मे गिर कर चोट आई है । एसी रिपोर्ट सुनकर आनंद के पूरे शरीर में क्रोध की बिजली कोंध उठती है। जबकि आनंद तो कभी शराब ही नही पीता । पुलिस ने आनंद के मित्र को ही चोर ठहरा कर आनंद को मानसिक त्रास देने का प्रयास भी किया । इतना कम था कि- आनंद के बयान को बदलकर आनंद के विरुद्ध मे ही उर्दू मे दूसरा बयान बनाया जाता है । जिस पर पुलिस ने छल से आनंद के हस्ताक्षर भी करवा लिए थे । लेकिन उन्हे

पता ही नही चला कि यह सब पुलिस ने किया कब ? यह पूरा पत्र उसके बिलकुल खिलाफ था । जिससे उसकी थूँ-थूँ भी हो सकती थी । तब आनंद सोचने पर मजबूर हो जाता है कि- क्या पुलिस इस हद तक गिर सकती है? क्या आम जनता को मदद करने के बजाय उसे परेशान कर षडयंत्रों का शिकार बनाना ही इनका काम है ? अगर एसा ही है तो इस देश को ऐसे निठल्ले पुलिस-तंत्र की कोई आवश्यकता नही है । इनके लिए ईमान, निष्ठा और कर्मज्यता कोई माइने नही रखता...।

राजनीति में हो रहे हथकंडे और अनैतिकता भी देखने योग्य है । जब सरकार स्वयं अपनी प्रजा पर कहर ढाएगी तो प्रजा आखिरकार कहाँ जाकर अपना दु:खडा रोएगी । नेताओं को चुनाव के समय केवल वोट लेने की जल्दी होती है, लेकिन जैसे ही चुनाव खत्म हो जाते है, जनता को उनके दर्शन दुर्लभ हो जाते है । जनता के द्वारा चुने गए नेता ही उस पर अत्याचार करते है । जब भी नेता के हवाई-जहाज आकाश में उड़ते नजर आते है, तब माते को एसा लगता है कि अब जनता के उपर संकट आएगा । माते व्यंग्य करते हुए कहते है कि- फिर मंडरा रही है चीलगाडिया (हवाई जहाज) आसमान में...'' और गुनगुनाने लगते है कि-

''जब माता मारे बच्चे को
तो वह किससे फरियाद करे ?
जब राजा ही अन्याय करे,
तब प्रजा किसको याद करे ?''

जिस प्रकार सरकार और साव गाँववालों पर अत्याचार करते है, उसी प्रकार गाँववाले भी आदिवासियो के उपर अत्याचार करते है। गाँववाले आदिवासियों को गाँव में घूसने तक नही देते। उन्हे गाँव की सीमा में देखा नही कि लाठी से ढेर किया नही। बेचारे जंगल से बाहर निकलने में भी डरते है, कि किसी ठाकुर की नजर में चढ़ न जाए। एसे में आदिवासियों का विकास कैसे हो पाएगा ? क्या उन्हे अपने क्षेत्र से बाहर निकलने का कोई हक नही ? उन्हे देश के विकास में भागीदार नहीं बनाया जा सकता ? क्या वे मनुष्य नही है ? अगर उन्हे भी अपनी जिंदगी जीने का हक है, तो फिर उन्हें गाँव से क्यों खदेड दिया जाता है। जंगल से प्राप्त होनेवाली चीजें भी गाँववाले ले जाते है, पर बदले में कुछ देते नही। अत: उन्हे पैसों के नाम पर कुछ भी नही मिलता।

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों का सांस्कृतिक चेतना के संदर्भ में मूल्यांकन करे तो- प्रत्येक देश या राष्ट्र की अपनी अलग संस्कृति होती है, और अपनी संस्कृति के अनुसार मनुष्य का जीवव व्यवहार होता है। मनुष्य को परंपरा से प्राप्त आचार-विचार, श्रद्धा-अंधश्रद्धा, रीति-रिवाज, प्रथाएँ-दुष्प्रथाएँ, धर्म, जाति, खान-पान, पहनावा, नृत्य, कला, उत्सव, तीज-त्योहार, संगीत, वस्तु, सिद्धांत व मान्यताएँ इत्यादि का समावेश संस्कृति के अंतर्गत होता है। लेखक जिस संस्कृति में रहता है, उसका प्रभाव उसके साहित्य में अवश्य प्रतिबिंबित होता है। वीरेन्द्र जैन ने भी स्वतंत्रता के बाद की भारतीय संस्कृति का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन कर उसका यथार्थ निरुपण अपने साहित्य

में किया है ।

लेखक ने ''डूब'' में सांप्रदायिक हत्याकांड का करुण निरुपण किया है । सांप्रदायिक भेद-भाव हमारे संकुचित मानस की उपज है । जिसकी वजह से बहुत सारे निर्दोष लोगों की जान चली जाती है । आजादी के बाद लड़ैई गाँव में भी सांप्रदायिक हत्याकांड होता है । आजादी से पहले इस गाँव में हिन्दू और मुसलमान दोनो भाई-भाई की तरह रहते थे । लेकिन इन लोगों ने जैसे ही सुना कि मुसलमानों के रहते आजादी का कोई मतलब नही है, तो गाँव के सारे मुसलमानों को मार दिया गया । खून की नदियाँ गाँव में बहने लगी । किसी के हाथ में कुछ भी नही आया । और मासूम लोगों की हत्याएँ हो गई । कोई भी राष्ट्र, धर्म या संप्रदाय यह नही कहता कि दूसरी जाति के लोगों को मार डालो । लेकिन जब भी सांप्रदायिकता की लहर उभरती है, तो धर्म या राष्ट्र की दुहाई ही दी जाती है । हमें हर धर्म, जाति और संप्रदाय का सन्मान करना चाहिए । तभी तो एक श्रेष्ठ और शांति-दायक राष्ट्र का निर्माण हो पाएगा। कबीर सही ही कहते है कि-

''कह हिन्दू मोहि राम पियारा,
तुरक कहे रहिमाना ।
आपस में दोऊ लरि मरे,
मरम न काहू जाना ।''

हत्याकांड़ के बाद गाँव में सभी मुसलमानों के शव धार्मिक अनुष्ठान के साथ

निकालकर जंगल में खड्डे खोदकर गाड़ दिए गए । जो 'मुसलमानी पथरा' के नाम से जाने जाते है । इस गाँव में एक मात्र जागृत व्यक्ति माते है । माते को इस हत्याकांड से बहुत ही दुःख होता है । उन्हें एसा लगता है जैसे कि उनके भाईयों को मार दिया हो । सांप्रदायिकता की समस्या हमारे देश की मूल समस्या है । आज भी संप्रदाय के नाम पर आए दिन लड़ाई-झगडे होते रहते है, जिसमें मुट्ठीभर लोगों के स्वार्थ ही निहीत रहते है। जिसे मासूम जनता समझ नही पाती ।

आधुनिक युग में इतनी प्रगति करने के बाद भी हम वर्णव्यवस्था की खाई में से बाहर नही निकले है । समाज में वर्णव्यवस्था इसलिए है, ताकि सभी जाति के अनुसार उनके काम तय किए जा सके । लेकिन कालांतर में यह सामाजिक असमानता बनती चली गई । समाज को उच्च और निम्न वर्गो में बाँट दिया गया । समाज के उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों को हेय और तिरस्कार की द्रष्टि से देखने लगे । यह तिरस्कार इतनी हद तक बढ़ गया कि इन लोगों का स्पर्श करना भी उच्च जाति के लोग पाप समझने लगे । अस्पृश्यता समाज का सबसे बड़ा कलंक है । ईश्वर ने भी किसी के साथ कोई भेद नही रखा, तो हम तो सामान्य मनुष्य है । सूरज की धूप और बरसात सारे मनुष्य को समान रुप से मिलते है । सभी के खेतों में फाल समान रुप से ऊगती है । राम ने अस्पृश्य शबरी के हाथों से उसके झूठे बैर खाए थे ।

लड़ैई गाँव में सभी जाति के लोग बसते है । जब किसी बात के लिए सारा गाँव इकट्ठा होता है, तो सभी लोगों को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार अपने-अपने

स्थान पर ही बेठना पड़ता है । इस देश की अगर कोई कमजोरी हैं, तो वह है जाति-भेद एवं अस्पृश्यता । लेखक बताना चाहते है, कि छूत-अछूत के भेद को मिटाना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है । अट्टू साव एक जागृत पात्र है, जो गाँव के लोगों को और खास करके घूमा को यह बात बताते है, कि- अब इस देश में बिरादरीयाँ समाप्त कर दी गई है । सब समान है । सबको एक ही कुएँ से पानी भरने को, मंदिर जाने का, पढ़ने का, और वोट देने का समान अधिकार है । निम्न जाति के लोगों को अट्ट की बाते स्वप्न-द्रष्टि के समान लग रही है । अट्टू साव स्वयं साहूकार है, लेकिन फिर भी वह निम्न जाति के लोगों को उनके हक और अधिकारो के लिए जागृत कर रहे है । क्योंकि वह अपने गाँव में परिवर्तन व प्रगति लाना चाहते है । लेकिन अट्टू के पिता को यह बात बिलकुल पसंद नही आती । अत: वे अट्टू को डपट देते है, कि बंद कर तेरी ये बकवास । अगर ओछी जाति के लोग तेरी माँ के पास आकर पानी भरेंगे, तो हम कहाँ जाकर पानी भरेंगे ? ये लोग हमारे साथ उठने, बैठने लगेंगे, जो हमे पसंद नही है । लेकिन फिर भी अट्टू साव अपनी बात पर डँटे रहते है । तब अट्टू के पिता उनके गाल पर तमाचे जड़ देते है । और उन्हें बेइतहा पीट देते है । फिर भी वह अपने निर्णय से परे नही हटते ।

गाँव के साहूकार और ठाकुर कभी भी यह नही चाहते कि कोई निम्न कोटि का या अस्पृश्य आदमी उनके मुकाबले में खडा हो । इसलिए ये सुवर्ण-जाति के लोग हमेशा अस्पृश्यों को दबाते है । डराते-धमकाते है । और उन पर अत्याचार भी करते

है। ठाकुर के अत्याचार का भोग बने बसोरे का इलाज अट्टू साव अपने घर की खाट पर कर रहे थे। यह द्रश्य देखकर उनके पिता झट-पट आए और बसोरे को खाट से हटा दिया। और अट्टू साव को बसोरे का इलाज भी नही करने दिया, क्योंकि वह अछूत है। फिर खाट को जलाकर अट्टू साव के हाथों में बाल्टी और रस्सी थमाकर नहाने जाने का आदेश दे दिया। बसोरे जीवन-मृत्यु के बीच की घड़िया गिन रहा है, और अट्टू के पिता छूत-अछूत के भेद में पड़े है। हमे यह कभी भूलना नही चाहिए कि- सबसे बड़ा धर्म मानव-धर्म है। हम अगर मानव को भूलकर ईश्वर को खुश करने का प्रयास करेंगे तो हमारी प्रार्थना कभी भी सफल नही होगी।

किसी भी बात में श्रद्धा होना अलग बात है, और अंधश्रद्धा होना बिलकुल अलग ही बात। मनुष्य एक बार अंधश्रद्धा के चंगुल में फँस जाता है, फिर वह उससे कभी छूट नही पाता। इसी प्रकार की अंधश्रध्धा का शिकार हुए है, लड़ैई गाँव के लोग। किसी ने यह अफवाह पूरे गाँव में फैला दी कि बरगद के नीचे जो पथरा है, वह पथरा नही बल्कि पथरा बब्बा है। इस राह से निकलने वाले हर व्यक्ति को पथरा बब्बा को पथरा चढ़ाना होगा। अगर वह एसा नही करेगा तो बहुत अनिष्ठ होगा। तब से लेकर आज तक हर राहगीर उस पथरा बब्बा को पथरा चढ़ाता है। आज वहाँ पथरों का बड़ा सा ढेर बन गया है। एक बार मोती साव उस रास्ते से निकले। बानिया कभी कुदेव की या दूसरे देव की पूजा नही करता। लेकिन मोती साव को पथरा बब्बा को पथरा चढ़ाना पड़ा। सो कुदेव की पूजा हुई। यह बात सारे गाँव में

फैल गई और उन्हे बिरादरी से बाहर कर दिया गया।

नन्ना के गाँव में एक बिरादरी पुण्यात्माओं की है । इस बिरादरी में वही व्यक्ति जन्म लेता है, जिसने पिछले जन्म में बहुत पुण्य कमाएँ हो, एसी मान्यता है । बाँध पर काम करने के लिए गाँव के किसी भी व्यक्ति को मजदूर के रुप में नहीं रखा जाता। तब अरविंद बहुत महेनत करके गाँव के दस-बारह लड़को को बाँध पर काम दिलवाता है । लेकिन कैलास महाराज ने अपने निजी स्वार्थ-वश पूरे गाँव में यह खबर फैला दी कि- जो बाँध पर काम करने जाएगा, वह पाप का भागी बनेगा । दूसरे ही दिन लड़के काम पर जाना बन्द कर देते है । बाद में अरविंद ने बहुत समझा-बुझाकर उन लड़कों को काम पर भेजा । 'प्रतिदान' की प्रभा भी अंधश्रद्धा का शिकार हुई है । तीन दिन से भूखी-प्यासी प्रभा को जब बार-बार चक्कर आ जाते है, और वह बेहोश हो जाती है, तो सब कहने लगे कि इस पर प्रेतात्मा का साया है । और उस पर टोटके किए गए । यह सब देखकर नरेन कहता है, कि उसे टोटको की नही, बल्कि अनाज और पानी की आवश्यकता है ।

तीज-त्योहार मनुष्य के दु:ख को कम कर नयी ताजगी व स्फूर्ति देते है । हर रोज महेनत करने वाले लोगों की थकान तीज-त्योहार की शांति और मनोरंजन से बिलकुल गायब हो जाती है । इसलिए त्योहारों का हमारे देश में बहुत महत्व है । यदि पर्व-त्योहार नही होते तो मनुष्य मानसिक तनाव और संघर्ष तले दबकर हमेशा पीडा की अनुभूति ही करता । अनेका मास्साव को साल भर के तीज-त्योहार याद दिलाता

है। जिसमें बारह-मासा त्योहारों का वर्णन मिलता है। भारत के हर त्योहार उसमें बुन लिए गए है।

मोती साव से कुदेव की पूजा करने का बहुत बड़ा अपराध हो जाता है। अत: वे अपनी बिरादरी के देव को मंदिर में जाकर मनाते है, उनकी पूजा-प्रार्थना हृदयपूर्वक करते है। 'मेरी-भावना' का सस्वर पाठ-

''जिसने राग द्वेष कामादिक जीते

सब जग जान लिया...।''

लड़ैई में भी संध्या के समय की पूजा-आरती का वर्णन मिलता है। इस गाँव में संजा मैया दो बार आती है। जब पहली बार आती है, तो सूर्यास्त के बाद बानियों के मंदिर में आरती और घंट बजने की आवाज आती है। और बाद में बानिया अंथऊ करते है। इस आरती के डेढ घंटे बाद संजा मैया का आगमन दूसरी बार होता है। और वैष्णव मंदिर में भोग लगा कर आरती की आवाज टन...टन...टन... आती है। मलखान को सिद्ध बब्बा में इतनी श्रद्धा है, कि पुलिस द्वारा उसे मार कर दोनों पाँवों से अपंग बना दिए जाने पर भी वह सिद्ध बब्बा के स्थान पर जाकर ज्योत जलाना नही भूलता। 'पंचनामा' का पंचम उर्फ अकलंक जिस अनाथाश्रम में रहता है, वहाँ सुबह सबसे पहले आरती होती है।-

''राजा, राणा, क्षत्रपति, हथियान के असवार मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार...।''

अकलंग गाँव में अपनी माँ के साथ अफ्सर पूजा पाठ किया करता था । अत: उसे प्रार्थना कंठस्थ हो गई थी । समग्र पूजा की आरती वह आँखे बंध करके बोलता रहा । प्रार्थना करने में वह इतना तल्लीन हो गया था, कि उसे पता भी नही चला कि वह किस स्थान पर है । पंड़ितजी धर्म की आड़ में अकलंक का शारीरिक शोषण करते है । तब दु:खी अकलंक ईश्वर की शरण में जाकर प्रार्थना शुरु करता है-

''दुख भी मानव की संपति है,

तू क्यों दुख से घबराता है...।''

वह अत्यंत संवेदनशील होकर गा रहा था । अंत: उसका गला भर आया । पंचम बहुत ही पढ़ना चाहता है, और शिक्षा प्राप्त कर कुछ बनना चाहता है । लेकिन पंचम जैसे ही पाँचवी कक्षा में आता है, तो उसके पिता की आर्थिक स्थिति कुछ इस कदर बिगडी की अब वह उसे पढ़ा पाए एसी स्थिति न रही । तब अकलंक को अनाथाश्रम में अनाथ बनाकर पढ़ने के लिए भेज दिया जाता है । गाँव के सभी लोग पढ़ाई के प्रति सचेत है । हर घर के बच्चे पढ़ाई प्राप्त करने के लिए मदरसा में जाते है। लेकिन बाँध-योजना में मदरसा बंद करने पर गाँव के लोग विरोध करते है । और सोचने लगते है कि- हमारे बच्चे पढ़ेंगे कहाँ ? क्या उनका विकास नही होगा ?

परंपरा से चले आते रीति-रिवाज चाहे वर्तमान में उचित हो या अनुचित मनुष्य हंमेशा उसका अनुसरण करता है । आधुनिक युग में भी व्यक्ति रीति-रिवाज के बोज तले इस कदर दबा रहता है, कि कभी-कभी तो उसे इस परंपरा में घुटन-सी महसूस

होने लगती है । स्त्रियों के घूँघट में रहने की प्रथा आदिकाल से चली आ रही है । आज भी गाँवों में स्त्रियों को घूँघट में रहना पड़ता है । पंचम की माँ भी सिर पर पल्लू किया करती है । नरेन की अम्मा का मानना है, कि पति और पिता का नाम बोलने से उनका अपमान होता है, और पाप लगता है । प्रभा ने जब अपने पति नरेन को नाम से बुलाया तो प्रभा की सास ने उसे बहुत बुरा-भला कहा और पाप लगने की घोषणा भी कर दी ।

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों का आर्थिक चेतना के संदर्भ में मूल्यांकन करें तो- आज-कल अर्थ का महत्व प्रत्येक देश व समाज में बढ़ गया है । क्योंकि जीवन और व्यवहार के हर एक कार्य में अर्थ नींव के रुप में समाया हुआ है । अत: लोग नौकरी-व्यवसाय एवं महेनत-मजदूरी करके रुपए प्राप्त करते है । लेकिन समाज में चंद लोग एसे भी है, जो इन महेनत करने वालों को उनकी महेनत से बहुत कम वेतन देते है। लेकिन 'शब्द-बध' का आनंद एसे वेतन का जमकर विरोध करता है । वह जिस प्रकाशन संस्थान में नौकरी के लिए चुना गया है, वहाँ पर महीना पूर्ण होने के बाद अभी तक उसका वेतन भी तय नही हुआ है । जब यह बात आनंद को पता चलती है, तो वह आश्चर्य चकित रह जाता है । फिर भी जब महीने के काम को ध्यान में रखते हुए उसको जो वेतन दिया जाता है, वह उसे बताए गए वेतन से बहुत कम था। उसने १३७ दिन काम किया था और वाउचर बता रहा था १०९ दिन । उसके काम के दिनो मे से प्रत्येक माह के दूसरे और चौथे शनिवार और इतवार तथा छुट्टियों के

दिनो का वेतन काट दिया जाता है । जबकि वास्तव में आनंद इन अवकाश के दिनों में भी सुबह पाँच बजे से लेकर शाम तक काम करता था । उसके महीने भर का न्यूनतम खर्च था- १२० रुपए । जबकि उसे वेतन के रुप में दिए जा रहे है- ९६ रुपए । आनंद इस अपमानजनक वेतन को स्विकार नही करता । और संचालकजी के पास जाकर अपनी महेनत का मूल्य माँगता है । वह कहता है कि मुझे छुट्टियों के दिनों में खाना खाने का या मकान में रहने का कोई हक नही है ? अवकाश के दिनों में हाड़-तोड़ महेनत करता रहा क्या उस वेतन का वह अधिकारी नही है । मौन बैठे संचालकजी से नौकरी छोड़ कर जाने की बात वह कहता है, और अब तक का वेतन इस संस्थान को दान में दे देता है । तब संचालकजी मुनमजी को बुलाकर आनंद का नये सिरे से वेतन आँकते है । और उसे अपना नीजी सचिव भी चुनते है । जिसमे मकान भत्ता सहित सारे खर्च संस्थान उठाएगी एवं वेतन अलग से । तब आनंद को यह नई नौकरी स्विकार करते हुए भी डर लग रहा है कि- इस पद पर भी शायद उसके साथ कोई छल-कपट न किया गया हो! अथवा तो संचालकजी द्वारा शोषण का भोग न बने । लेकिन होता यही है । क्योंकि शोषण करने वाला व्यक्ति अपनी जोंक-सी वृत्ति कभी छोड़ नही सकता । संचालकजी ने आनंद को जो नई नौकरी दी थी, उसमे यह शर्त है कि उसे संचालकजी के निवास-स्थान के पास ही रहना है, और वेतन १८० रुपए । अब २४ घंटों में से केवल दो वक्त खाने-पीने का समय ही आनंद का अपना समय था, बाकि का सारा समय संचालकजी को समर्पित हो जाता था ।

वह चौबीस घंटे फाईलों के बीच घीरा रहता था । वेतन में हुई आधी वृद्धि सबको दिखाई दे रही थी, पर काम के घंटों में हुई दुगुनी वृद्धि किसीको नही दिखाई दी । तब आनंद को यह महसूस हुआ कि- उसे फिर से संचालकजी द्वारा ठगा गया है, प्रत्यक्ष नही परोक्ष रुप में उसे शोषण का भोग बनाया गया है । आज-कल स्थिति यह है कि- यदि कर्मचारी को काम करना है, तो उसे शोषण का भोग बनकर भी काम तो करना ही होगा । क्योंकि चाहे किसी भी स्थान पर क्यों न जाए, वह स्थान बिल-कुल शोषण मुक्त तो होता ही नही । अगर आपको नौकरी करनी है, पैसे कमाने है तो सबकुछ देखकर भी अनदेखा करना ही पड़ेगा।

आनंद के पास एक कलाकार का बिल बनाने के लिए आता है, उस बिल में बहुत काँट-छाट की गई थी । कलाकार ने अपना पारिश्रमिक आँका था- १२५ रुपए। सहयोगी संचालकजी ने उसके वेतन को काट कर लिखा था- ११० रुपए । और संचालकजी तो उससे भी दो कदम आगे निकले । उनके पास न जाने एसा कौन-सा अद्रश्य मापक यंत्र था कि- उन्होने कलाकार का पारिश्रमिक बिल-कूल काट कर लिखा था- ८० रुपए दिए जाए । आनंद अपने स्वभाव के अनुसार इस काट-छाँट से परेशान और क्रोधित हो जाता है । जब कलाकार अपना पारिश्रमिक लेने आता है, तो वह चीख-चीख कर विरोध करता है । संचालकजी द्वारा ठगा गया कलाकार मायूस होकर वापस लौटता है । इस संस्थान में जो कर्मचारी किसी भी व्यक्ति के वेतन में जितनी अधिक कटौती करता है, उसे वहाँ उतना ही श्रेष्ठ व योग्य ठहराया जाता है।

जो कर्मचारी वेतन में कोई काट-छाँट नही करता उसे यहाँ बिल-कुल अयोग्य माना जाता है ।

आनंद जिस प्रकाशन में अपने उपन्यास की पांडुलिपि छोड़कर आया है, उस प्रकाशन में किताब होती है किसी और लेखक की और उसे छापते है, अपने किसी दोस्त के नाम से । और उस प्रकाशक का मित्र बिना कुछ किए लेखक बन जाता है। और जो मूल लेखक होता है, उसे तो यह बात पता भी नही चलती । अरे! प्रकाशक तो लेखक को इस बात का भी पता चलने नही देता कि उसकी पुस्तक प्रकाशित हुई भी है या नही । जब बाद में उसे पता चलता है, और वह विरोध करता है तब बहुत देर हो चुकी होती है । एसे प्रकाशक लेखक किस्म के लोगों का जमकर शोषण करते है । उन्हें नौकरी पर भी इसलिए रखा जाता है, क्योंकि वह भावुक एवं बुद्धिजीवी होता है । वह भावनाओं के प्रवाह में बहकर शोषण का विरोध नही कर पाता । तब लेखक अपने साहित्य में विरोध प्रगट कर देता है । जैसे-तैसे आनंद उस प्रकाशन से अपनी पांडुलिपि छुडाकर दूसरे प्रकाशन में पहुँचता है, तो वहाँ पहले से ही खडे एक नवयुवक लेखक ने उसे सचेत किया । उस लेखक ने अपने साथ हुए अन्याय को उजागर करते हुए कहा कि- इस प्रकाशक ने उसकी एक पुस्तक छापी । पुस्तक छपने के काफी समय बाद भी प्रकाशक यही कहता रहा कि अभी पुस्तक छपी नही है, उसको छापने के पैसे नही है, पुस्तक बिक नही रही है- जैसे बहाने बनाकर वह लेखक को पुस्तक की एक प्रति भी नही देता, न तो पैसे देता है । फिर वह लेखक

अपने मित्र की मदद से उस प्रकाशक का भंडा फोडता है और कानूनी कार्यवाही करने की धमकी भी देता है । तब उस प्रकाशक ने फटाफट सारी पुस्तकों का हिसाब उस लेखक के सामने रख दिया । लेकिन फिर भी प्रकाशक अपने स्वभाव से बाज नही आता । उसने साफ-साफ बता दिया कि- वह पाँच प्रतिशत से ज्यादा रॉयल्टी नही देगा । इस प्रकार लेखक की कदर करना कोई नहिं जानता, नही तो उनके मान-सन्मान की रक्षा होती है । लेखक चाहे कितना ही सर्वश्रेष्ठ क्यों न हो, एसे प्रकाशकों की बदौलत उसे भूखे मरने के दिन आते है । और वह प्रकाशक बिना कुछ किए लेखकों की पुस्तक पर लाखों रुपए कमाते हैं । यह कैसा शोषण-चक्र है ! यहाँ महेनत करने वाले के हाथ में कुछ भी नही आता। और आराम से बैठने वाला- लाखों रुपए कमा लेता है । यह कैसी आर्थिक असमानता!

आनंद जिस प्रकाशन संस्थान में काम करता है, वहां कर्मचारी को वेतन के अलावा अलग से पचास रुपए इसलिए दिए जाते है, ताकि भविष्य में वह किसी भी बात का विरोध न करे ! और उनके इस ऋण तले दब कर वेतन बढ़ाने की माँग न करे । आनंद को भी इसी तरह अलग से पचास रुपए दिए जाते है, लेकिन वह अपने वेतन के अलावा एक रुपया भी अलग से लेना नही चाहता । उसका मानना है कि अगर देना ही है तो वेतन के रुप में दे । अंतत: सारे प्रकाशन संस्थान एक से है । अंदर से उन सबकी नींव अनैतिकता, भ्रष्टाचार और आर्थिक शोषण से ही भरी हुई है। निष्ठावान आनंद प्रकाशन संस्थानों की अप्रामाणिकता देखकर एक के बाद एक प्रकाशन

संस्थान की नौकरी छोड़ता चलता है । सारे प्रकाशन संस्थान भ्रष्ट हो चुके है...! उसे किसी भी संस्थान में नैतिकता के दर्शन नही होते ।

सूर्योदय प्रकाशन के प्रकाशक अपने नये प्रकाशन में एसे ही लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित करना चाहते है, जिनका खर्च लेखक स्वयं वहन कर सके । आनंद को दीपकजी की बातों पर विश्वास नही होता कि क्या एसे लेखक है, जो पैसा भी देते है । उसने तो पहले कभी एसी बात नही सुनी ! दीपकजी अपने पिता अरिहंतजी की पुस्तके इसलिए प्रकाशित नही करना चाहते, क्योंकि वह पैसे नही दे रहे थे, उपर से वह इतने कभी बीके नही है । अत: दीपकजी को उनमें घाटा जाने की संभावना है । वे शीघ्र ही अपने पिता को दस हजार प्रतियाँ छापने से साफ इन्कार कर देते है । अत: अरिहंतजी लिखना बंद कर देते है । दीपकजी ने सिर्फ पैसो के लिए एक लेखक को मार दिया । उसकी कलम को कैद कर दिया । दिपकजी की आँखों पर अपनी पूंजी और पैसों की पट्टी इस तरह बँधी हुई है कि आनंद के लाख समझाने पर भी उन पर कोई असर नही हुआ । तब आनंद स्वयं इस प्रकाशन और नौकरी दोनों को छोड कर चला जाता है । क्योंकि वह दीपकजी के भ्रष्टाचार और अनैतिक आचरण में सहभागी बनना नही चाहता । प्रतिबद्ध प्रकाशन का कर्मचारी भी अपना विरोध प्रकट करते हुए कहता है कि हम इन्हें महेनत करके तिजोरी भर-भर के देते है, तब जाकर ये हमें मुट्ठीभर वेतन देते है । हम लूले-लंगड़े थोडे ही है जो इनसे दब कर जीए । कांताजी तो लेखकों का जमकर शोषण करती है । वह लेखको को रॉयल्टी देने मे हमेशा बहाना

बनाती रहती है । और वह बेचारे शर्म के मारे बार-बार अपनी रोयल्टी भी माँग नही पाते । इसी दौरान एक लेखक ने कांताजी के यथार्थ की बखिया उधेड़ते हुए एसा जबरदस्त पत्र लिखा कि तुरंत कांताजी ने उस लेखक को रॉयल्टी भेज दी ।

सरकार 'डूब' क्षेत्र के लोगों को विस्थापित कर मुआवजें के नाम पर कुछ भी नही देती । उपर से सरकारी कर्मचारी किसानों की सिंचित भूमि को असिंचित साबित कर घूस में किसानों के पैसे हडप जाते है । जब भी किसान अपना मुआवजा लेने मुआवजा कार्यालय में जाते है, तो उन्हें साव के पास खदेड दिया जाता है । उन्हे साव के बिना मुआवजा भी नही दिया जाता । लेकिन किसान-मजदूर साव के साथ मुआवजा लेने आना नही चाहते । क्योंकि अगर साव साथ में होगा तो सूद के ब्याज का ब्याज चढ़ा कर सारे रुपए एँठ पर चला जाएगा । और वह बेचारे रह जाएँगे ठन-ठन गोपाल । लेखक ने अपने उपन्यासों में उच्च सामंती वर्ग तथा निम्न मध्यमवर्गीय कृषक समाज को चित्रित किया है । यह एक एसा क्षेत्र है जहाँ मजदूरों के लिए मजदूरी माँगना भी गुनाह है । ठाकुरों से तो इन्हें मजदूरी के नाम पर मिलता है कुड़ा-करकट। जब मजदूरों ने ठाकुर से अपनी मजदूरी नकद कलदार मे माँगी, तो उन मजदूरों के झोपड़े जला दिए जाते है । और सारे मजदूरों के उपर लाठी और तलवार से वार कर उन्हें मोत के घाट उतार दिया जाता है । इस अन्याय और अत्याचार का विरोध करने वाला कोई नही है । अत: लोगों का गरीबी और बेरोजगारी से नाता नही टूटता । एसे मासूम और निर्दोष लोगों का साथ देनेवाला कोई भी नही है । सरकार

भी साव के साथ मिलकर अन्याय करती है । तब माते अपना रोष व्यक्त करते हुए कहते है कि-

‘‘जब माता मारे बच्चे को,

तो वह किससे फरियाद करे,

जब राजा ही अन्याय करे,

तो प्रजा किसको याद करे...।’’

० उपसंहार

किसी भी युग में विरोध करके यथार्थ को सामने लाना अपने आप में बहुत बड़ी बात है । वीरेन्द्र जैन हंमेशा सच्चाई को महत्व देकर सामाजिक मूल्यों का हनन करनेवाली बातों को उखाड फेंकते है । उन्होने आधुनिकता के फलस्वरुप आए उत्तर आधुनिकता का जमकर विरोध किया है । एसी आधुनिकता किस काम की जिसकी वजह से व्यक्ति की आत्मा का हनन हो । जैनजी ने जो कुछ भी लिखा है, वह स्वानुभूतिगम्य है । उनका भोगा हुआ यथार्थ ही शब्द बनकर उनके साहित्य में प्रस्तुत हुआ है ।

बाँध-परियोजना के तहत जो गाँव पानी में डूब गए, उनमें वीरेन्द्र जैन का सिरसौद गाँव भी था । अपनी जमीन एवं गाँव से उखड़ने का दर्द तो जिसने भोगा है वह ही इतनी तीव्रता के साथ लिख पाता है । उनके लेखन में आया पैनापन एवं तीखापन वास्तविकता की धरातल का एहसास कराता है । क्योंकि सच हंमेशा कड़वा ही होता है । उनके उपन्यासों को पढ़कर अनैतिक आचरण करनेवालो के पैरो तले से जमीन खीसक जाती है । उन्होने बेखोफ होकर जो सच है, वह लिखकर कपटी राजनेताओं की पोल खोल दी है । तभी तो उनसे हुए पत्राचार में उन्होंने स्वयं कहा है कि- ''मुझे अपने बारे में जो कुछ भी कहना होता है, वह मैं अपनी रचनाओं में बराबर कहता हूँ ।''

स्वतंत्रता के बाद समाज अपनी पुरानी कैंचुली उतार रहा था । लोगों ने सोचा

कि- अब तो विकास के नये आयाम होंगे और हमारी स्थिति पहले से बहेतर होगी। हमारा शासन एवं हमारे विचार होंगे। लेकिन कुछ ही सालों में उनकी यह सोच मिट्टी में मिलकर रह गई। नई-नई परियोजनाओं के तहत देश में अगर कुछ आया तो वह था- गरीबी, बेकारी, भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, महामारी एवं अनैतिकता व पाशविकता। इन सारी बातों का आम जनता के उपर बहुत ही गहरा असर पड़ा। लेखक यही बताना चाहते है कि- आधुनिक युग में विकास आया तो आम जनता का दुश्मन बनकर। चारों और गरीबी और बेकारी कम होने के बजाय बढ़ती ही चली गई। ये सारी विकास योजनाएँ चली तो इतने लंबे समय तक चली की उसमें लोगों का सब कुछ लूट गया। अगर कोई भोग बना तो गाँव के गरीब लोग। गरीब और भी गरीब और बेरोजगार बनते चले गए। लोगों से उनके मकान, कुएँ, खेत, मदरसा सब कुछ छीन लिया जाता है। सरकार कभी एक परियोजना को बदलकर दूसरी परियोजना शुरु करती है। जिसमे दीन-हीन- नि:सहाय लोग बिना घर और जमीन के पशुवत जिंदगी जीने को मजबूर हो जाते है। कभी बाँध योजना को बदलकर अभ्यारण्य बनाने की घोषणा कर जंगलों की अवैध कटाई की जाती है। सरकार जो जंगल को बचाने के ढोल पिटती रही, वह स्वयं वृक्षो को काट रही है। पशुओं के लिए अभ्यारण्य की चिंता है, मगर लोगों की चिंता सरकार को नही है। यह कैसी अनैतिकता?

इतना ही नही इन लोगों को विस्थापित कर कहीं और बसाने का मुकम्मल इंतजाम भी नही किया जाता। जब भी बाँध की बाढ़ आती है, तो उसमें बहुत सारे

जानवर और मनुष्य डूबकर मर जाते है । तब भी सरकार के कान पर जूँ तक नही रेंगती । उपर से यह झूठी खबर देकर कि इन लोगों को बहुत पहले मुआवजा देकर विस्थापित किया गया है- कहकर अपना स्वबचाव करती है । अब माते जैसे व्यक्ति विरोध कर चिल्ला उठते है कि- '''लाबरी है जा सरकार, सरकार लाबरी, झूठी, महाझूठी, सरासर झूठी !''

वीरेन्द्रजी ने शोषण और अत्याचार की रोंगटे खडे कर देनेवाली गाथा अपने उपन्यासों में दर्ज कर समाज की आँखे खोलने का प्रयास किया है । हमारे देश में आज भी कुछ क्षेत्र व प्रदेश एसे है, जहाँ पर मजदूरों के लिए अपनी मजदूरी माँगना सबसे बड़ा गुनाह है । मजदूर दिन-रात हाड़-तोड़ महेनत करते है, और बदले में मिलता है मात्र कूडा और करकट । अगर मजदूर द्वारा मजदूरी नकद कलदार में माँगी जाए तो उन्हे मौत के घाट उतार दिया जाता है । उनके उपर तलवार और लाठियों के घाव कर झोंपड़ियों को भी जला दिया जाता है । ठाकुर की पाशविकता का विरोध करनेवाला कोई भी नही है । जो भी विरोध करता है, उन्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है । अब अपनी जान किसे प्यारी नही होगी ? 'बिल्ली के गले में घंटी बाँधे भी तो कौन ?' लेकिन कुछ एसे जागृत पात्र है, जो पूरे गाँव को इकठ्ठा कर- 'संधे शक्ति कलियुगे' को सही ठहराते हुए विरोध करते है । तब आततायी को दूम दबाकर भागना पड़ता है ।

स्त्री-उत्पीड़न, बलात्कार, यौनवृति और अतृप्त कामवासना समाज में कलंक

समान है । स्त्री के लिए हर युग समान है । उसके लिए कभी जमाना बदलता ही नही है । आज चाहे युग ने भले ही पलटी खाई हो, पर उसमें स्त्रियों की स्थिति तो बिलकुल वैसी की वैसी ही रही है । आज भी जब वह अपने घर से बाहर कदम रखती है, तो हजारों निगाहें उस पाँव से लेकर सर की चोटी तक नापने-तौलने लगती है । सुशिक्षित स्त्री को भी शारीरिक शोषण का भोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में बनाया जाता है । स्त्री को मान देने के बजाय उसका उपभोग करने की पाशविक वृत्ति ही पुरुष के मन में सदा रहती है । किसी भी स्थान पर स्त्री सुरक्षित नही है । न घर की चार दिवारी में, न घर से बाहर की दुनिया में । समाज में बलात्कार का भोग बनी स्त्री जब थाने में रपट दर्ज करवाने जाती है, तो उसकी रपट भी दर्ज नही की जाती ! उपर से उसके ही चरित्र पर लांछन लगाया जाता है । अगर स्त्री सुंदर है, तो पुलिस अधिकारी की कामुक द्रष्टि उसके गठीले देह पर गड जाती है । और तहकीकात के नाम पर शरीर-स्पर्श का सुख तब तक लेते रहते है, जब तक इच्छापूर्ति न हो । है न आश्चर्य की बात! समाज की सबसे सुरक्षित जगह भी स्त्री के लिए सुरक्षित नही, तो अब वह कहाँ जाकर अपनी सुरक्षा की माँग करे ? जिसे देखो वह स्त्री के शरीर को नौंचने पर तुला हुआ होता है । अनाथाश्रम में भी लड़कियों की कोई सुरक्षा नही है । अनाथाश्रम का अध्यक्ष भी सहानुभूति जताने के नाम पर लड़कियों के शरीर को सहलाता रहता है, जिससे उनके तन-बदन में आग लग जाती है । मगर वह संकोचवश कुछ बोल नही पाती । कई निर्दोष स्त्रियाँ शोषण व पाशविकता का भोग बनती है ।

जीवनभर सब-कुछ समर्पित करने पर भी उसे बदले में मिलती है मात्र पीडा, उपेक्षा और न खत्म होनेवाला दर्द...! स्त्री को चारों ओर से शोषण के सिकंजे कसने के लिए हमेशा तैयार ही रहते है। इस चक्रव्यूह से पूर्णत: निकल पाना उसके लिए कठिन है। इतना ही नही औरतों और बच्चियों को बेचना यहाँ एक प्रकार का धंधा बन गया है। यदि किसी अफसर को खुश करना है तो स्त्री को उपहार के रुप में पेश किया जाता है। स्त्री एक पुरुष से दूसरे पुरुष तक घूमती रहती है। स्त्री को मनुष्य नहीं, बल्कि एक खुश करनेवाली चीज माना जाता है। जिसमें स्त्री मजबूर होकर संकोचवश पुरुष की हैवानियत का शिकार बनती है...!

काम-वासना और यौनवृत्ति जिस मनुष्य में निहित है उसका पतन अवश्य होता है। जबकि वासना-रहित शुद्ध आत्मिय प्रेम मनुष्य को सफलता के शिखरों तक भी पहुँचा सकता है। लेखक ने अपने उपन्यासों में कुछ पात्र एसे चुने है जो वासना के प्रवाह में बहकर अपने परिवार का सर्वनाश करते है। स्वयं माँ अपने दामाद के साथ संभोग कर अपनी बेटी का घर उजाड़ने पर तुली हुई है। अगर अतृप्ति इतनी ही है, तो वह कोई और रास्ता भी तो अपना सकती थी। इच्छापूर्ति के लिए बेटी का घर बर्बाद करना कहाँ तक उचित है ? यह तो न खत्म होनेवाली शरीर की भूख है, जिसमें परिवार टूटकर बिखर जाते है। आज-कल प्रेम के नाम पर केवल ''टाईम पास'' और धोखा ही होता है। प्रेम की आड़ में कई निर्दोष स्त्रियाँ यौनवृति का शिकार बनती है। प्रेम-जाल में फाँसकर अपनी इच्छापूर्ति करना और स्त्रियों की

जिंदगी के साथ खेलकर उन्हें छोड़ देना जैसे कि पुरुषों का शौक हो गया हो एसा लगता है । लेखक के अनुसार एसी स्थिति में हर स्त्री मौन नही बैठी रहती, लेकिन कुछ सशक्त औरतें अवश्य आवाज उठाती है । और अपनी स्त्री-शक्ति का परिचय देते हुए पुरुष की पाशविकता का हनन करती है ।

शोषण, अन्याय, छलकपट, स्वार्थपूर्ति एवं भ्रष्टाचार रुपी राक्षस ने चारों ओर से अपना मुँह खोलकर रखा है । जिसमें आम जनता खुद को असुरक्षित महसूस करती है । देश व समाज की रक्षा का भार जिनके कंधो पर है, एसे पुलिस अफसर स्वयं डाकू-वेश में लोगों के घर में घुसकर उन्हें लूटने का काम करते है । और साल भर की उनकी महेनत की कमाई धाक-धमकी दिखाकर ले जाते है । बाद में जब लोग थाने में आकर रपट लिखवाते है, तो वहाँ पर वही लोग बैठे होते है जिन्होंने रात गए डाकू वेश में लूट मचाई थी । अत: न तो उन लोगों की रपट दर्ज की जाती है, न तो उन्हें सुरक्षा का वचन दिया जाता है । अब गाँव के भोले-भाले निरक्षर लोग सब कुछ जानते हुए भी विरोध नही कर पाते ।

समाज के साथ राजनीति एवं शासन व्यवस्था भी भ्रष्ट हो चुकी है । नेता चुनाव में खडे इसलिए रहते है ताकि चूने जाने पर बहुत भ्रष्टाचार कर चारों ओर से रुपए ऍंठ पाए । लोगों के कल्याण की बातें तो उनकी द्रष्टि में होती ही नही । जब वोट लेने का समय आता है, तब जनता से बड़े-बड़े वादे किए जाते है । लेकिन जैसे ही चुनाव खत्म, काम खत्म । फिर उनके दर्शन भी दुर्लभ हो जाते है । विकास के बड़े-बड़े वादे

करनेवाले नेता बाद में जनता को जवाब तक देना उचित नही समझते । सरकारी कर्मचारी को पद प्राप्त होते ही अपनी जिम्मेदारी और फर्ज भूलकर सत्ता के नशे में अंधे होकर गुंड़ागीरी पर उतर आते है । भ्रष्टाचार और अनैतिकता हर क्षेत्र व विभाग में फैल गए है । सरकार के उपरी अधिकारी से लेकर छोटे-से छोटा अधिकारी भ्रष्ट हो चूका है । अगर आप को अपना काम निबटाना है, तो पैसो का वजन उनके सामने रखना ही पड़ता है । और यदि देने के लिए पैसे नही तो फिर चलते बनो, आपका काम बरसों तक नहीं होता । उसमें भी सबसे अधिक भ्रष्ट पुलिस-तंत्र हो चूका है । थाने में जाकर रपट दर्ज करवानी है, तो सबसे पहले उनके चाय-पानी और सिगारेट का इंतजाम करना होगा । तब जाकर अगर थानेदार का मूड बना तो आपकी रपट दर्ज होती है । पुलिस के लिए रपट लिखना मतलब बहुत महेनत का काम है । थाने में आम जनता को तिरस्कार और धृणा की द्रष्टि से ही देखा जाता है । गालियाँ बोलकर लोगों को संबोधित करना जैसे कि उनका अधिकार हो एसा लगता है! डंडे की चोट पर बड़ी से बड़ी चीज लाकर अपने घर में बसा देते है । जो थानेदार का विरोध कर उन्हे कर्तव्यबोध कराते है, उनके खिलाफ षड़यंत्र रचकर झूठे सबूत पेश करके मार दिया जाता है या तो बरसो तक हवालात में कैद कर दिया जाता है । जिसमें मासूम लोग जो पुलिसिया दाव-पेंच से अवगत नही, वह पुलिस की तीसरी आँख से भस्म हो जाते है । तभी तो वीरेन्द्रजी ने बहुत सुंदर पंक्ति पुलिस के बारे में अंकित की है कि-

''लोग बड़ा न रुपय्या,

सबसे बड़ा सिपहिया ।''

वीरेन्द्रजी ने आजादी के बाद की भारतीय संस्कृति के दर्शन हमे करवाए है । प्रत्येक देश व राष्ट्र की अपनी अलग संस्कृति होती है । और संस्कृति ही किसी भी राष्ट्र की पहचान है । समग्र दुनिया में हमारे देश की संस्कृति ने अपनी अलग ही पहचान बनायी है । हमारी संस्कृति में बहुत सारी बातें अपनाने योग्य एवं सराहनीय है, तो साथ-साथ कुछ दोष भी है । आजादी के बाद हमारे देश में कुछ मुठ्ठीभर लोगों की स्वार्थ-सिद्धि की वजह से चारों और सांप्रदायिक हत्याकांड होने लगते है । हिन्दू और मुसलमान दोनों एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते है । जिसमें हाथ में आती है केवल मौत! धर्म के नाम पर लड़ाई-झगडे करना अनुचित है । कोई भी मजहब हिंसा करने की सीख नहीं देता । हर धर्म व संप्रदाय का समान महत्व है, अगर यह भावना हम अपने दिल मे रखेंगे तो कभी धर्म के लिए लड़ाई नही होंगी । इस देश में हर धर्म व जाति के लोग रहते है । यदि हम सांप्रदायिक भेदभाव में ही झगड़ते रहेंगे तो देश को विकास की दिशा में अग्रसर नहीं कर पाएँगे ।

छूत-अछूत के भेदभाव भी समाज को अंदर से खोखला बना देते है । उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों को तिरस्कार और अपमान की द्रष्टि से ही देखते है । क्या यह उचित है । आज स्थिति यह है कि उन्हें भी सारे हक और अधिकार दिए गए है । लेकिन वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत नही है । गाँवों में तो अछूत

का स्पर्श करना पाप माना जाता है। और उन्हें छूने के बाद स्नान करके ही घर में प्रवेश करते है। गाँव के चौराहे पर जब किसी समस्या पर लोग इकट्ठे होते है, तो अपनी-अपनी जाति को ध्यान में रखकर अपने स्थान पर ही बैठना पड़ता है। यहाँ अपनी जाति को याद न रखना सबसे बड़ा गुनाह है। जब प्रकृति और ईश्वर जाति भेद न रखकर समान द्रष्टि अपनाते है, तो हमें जाति-भेद रखने का क्या अधिकार है? कोई भी व्यक्ति जाति से बड़ा नही बनता, बल्कि कर्म से महान बनता है। उच्च जाति का व्यक्ति पाशविक कार्य करके कभी महान नही बन सकता। उसी तरह निम्न जाति का व्यक्ति सदगुणों के चलते महान बन सकता है। इस प्रकार व्यक्ति जाति से नही कर्म से महान बनता है। लेखक ने अपने उपन्यासों में वर्णव्यवस्था को बहुत ही सूक्ष्मतापूर्वक उभारा है। उन्होने वर्णव्यवस्था को उभारकर स्पष्ट किया है, कि सबसे बड़ा धर्म और जाति मानवधर्म है। कोई भी व्यक्ति जीवन और मृत्यु के बीच की घडियाँ गीन रहा हो, उस समय जाति-पाँति का विचार न करके उसे बचाना ही श्रेष्ठ मानवधर्म है। गाँव के ठाकुर और साहूकार निम्न जाति के लोगों को डराते-धमकाते है। और कभी-कभी तो उन्हे मौत के घाट भी उतार देते है। निम्न जाति के लोग ठाकुर के घर में प्रवेश भी नही कर सकते। अगर उन्हें अपनी मजदूरी लेनी है, तो घर के बाहर नीचे कपड़ा फैला दिया जाता है। फैंका हुआ अनाज ही इनकी मजदूरी बनता है। इन्हें नकद कलदार मजदूरों के रुप में नही दिए जाते, क्योंकि वह लोग अछूत है।

व्यक्ति परंपरा और रीति-रिवाज के बोझ तले इस कदर डूबा रहता है, कि कभी-कभी तो उसे इस परंपरा में घुटन-सी महसूस होने लगती है । समय और परिस्थिति के अनुसार मनुष्य के रीति-रिवाज भी बदलने चाहिए । स्त्री के लिए बरसों से एक ही पहनावा तय किया गया है- वह है साड़ी । और अगर वह अपनी सहूलियत के लिए अगर घूँघट नही करती और साड़ी नही पहनती तो उसे हेय की द्रष्टि से देखा जाता है । समाज की हर बेहतरी और परंपरा स्त्री को लेकर ही बनती है, पुरुष को लेकर क्यों नही ? क्या इसलिए कि परंपरा बनानेवाला शायद पुरुष था । और उसने इस परंपरा से स्वयं को तो मुक्त रखा और स्त्री को बाँध दिया । खोखली परंपरा के बंधनों को तोडने की आवश्यकता है । हम कब तक परंपरा के बंधनों में बंधकर अपने विकास को अवरुद्ध बनाते रहेंगे ?

हर क्षेत्र में अर्थ का महत्व इतना बढ़ गया है, कि आज उसके बगैर एक भी काम नही होता । लोग नौकरी-धंधा और महेनत-मजदूरी इसलिए करते है, ताकि रुपए प्राप्त करके अपनी जरुरतों को पूर्ण कर सके । लेकिन कुछ लोग ऐसे है जिन्हें दिन के चौबीस घंटें में से अठारह घंटे काम करने पर भी वेतन के रुप में बहुत कम पैसे मिलते है । अपमानजनक वेतन देकर कर्मचारियों का शोषण किया जाता है । और व्यक्ति अपनी गरीबी और बेरोजगारी को दूर करने के लिए जो भी वेतन मिले उसे स्विकार्य कर लेता है । क्योंकि कर्मचारी जहाँ भी जाता है, वहाँ उसका शोषण तो अवश्य होता ही है । चाहे प्रकाशन संस्थान का कर्मचारी हो, चाहे किसी कंपनी का

कर्मचारी । कुछ प्रकाशन संस्थान तो एसे है, जहाँ कर्मचारियों को वेतन कम और कुछ रुपए अलग से दिए जाते है क्योंकि कर्मचारी भविष्य में कभी भी उनका विरोध न कर सके । एसे प्रकाशन संस्थान में लेखक किस्म के लोगों को काम पर इसलिए रखा जाता है, क्योंकि वह बहुत ही भावनाशील होते है । और भावनाओं के प्रवाह में बहकर वह कभी भी शोषण का विरोध नही करते । उन्हें रोयल्टी देने में हंमेशा आनाकानी की जाती है । जिसकी वजह से लेखक दो वक्त की रोटी के लिए भी तरसता रहता है । और प्रकाशक बिना कुछ किए लाखों कमाते है । कुछ संस्थान एसे है, जहाँ वही कर्मचारी श्रेष्ठ माना जाता है, जो मजदूरों को देने के वेतन में अधिक से अधिक काट-छाँट करता है । प्रामाणिकतापूर्वक वेतन दे देनेवाला व्यक्ति वहाँ अयोग्य माना जाता है । लेखक ने प्रकाशन जगत की विद्रुपताओं को खोलकर रख दिया है । प्रकाशन जगत के भ्रष्टाचार और आर्थिक शोषण को उजागर किया है ।

निष्कर्षत: संक्षेप में कहे तो लेखक का उदेश्य हर उस पहलू को खोलना रहा है, जहाँ भ्रष्टाचार व अनैतिकता है । कृषकों और मजदूरों की दयनीय हालत, गरीबी व बेकारी से पाठकों को अवगत कर जागृत करना रहा है। स्त्री-उत्पीडन, बलात्कार, शोषण, अत्याचार, राजनैतिक छल-कपट, पुलिसतंत्र में षड्यंत्र, रीति-रिवाज, यौनवृति, आदिवासी संस्कृति, ग्रामीण संस्कृति, विविध विकास योजनाएँ, नसबंदी की क्रूरता, स्वार्थसिद्धि, सामाजिक असुरक्षा, छल-कपट, प्रकाशन संस्थानों की सचाई, कर्मचारियों कर्तव्यहीनता आदि का यथार्थ निरुपण कर सचाई को समाज के सामने रखकर जागृत व प्रेरित करना रहा है ।

परिशिष्ट

० ग्रंथानुक्रमणिका

१. आधार-ग्रंथ सूची

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशन	प्रकाशन एवं संस्करण वर्ष
१.	अनातीत	वीरेन्द जैन	प्रमोद प्रकाशन नई दिल्ली	१९८३
२.	उसके हिस्से का विश्वास	वीरेन्द जैन	प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ही	१९८८
३.	डूब	वीरेन्द जैन	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	१९९१
४.	तलाश	वीरेन्द जैन	आयाम प्रकाशन नई दिल्ली	१९९२
५.	पंचनामा	वीरेन्द्र जैन	भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली	१९९६
६.	प्रतीक: एक जीवनी	वीरेन्द्र जैन	तक्षशीला प्रकाशन नई दिल्ली	१९८३
७.	प्रतिदान	वीरेन्द्र जैन	जगतराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९९४
८.	पार	वीरेन्द्र जैन	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	१९९४
९.	रुका हुआ फैसला	वीरेन्द्र जैन	हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली	१९८९
१०.	सबसे बड़ा सिपहिया	वीरेन्द्र जैन	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	१९८८
११.	सुरेखा-पर्व	वीरेन्द्र जैन	ऋषभचरण जैन एवं संतती, नई दिल्ली	१९७८

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशन	प्रकाशन एवं संस्करण वर्ष
१२.	शब्द-बध	वीरेन्द्र जैन	सचिन प्रकाशन नई दिल्ली	१९८७
१३.	शुभस्य शीघ्रम	वीरेन्द्र जैन	दिनमात प्रकाशन दिल्ली	१९९२

२. सहायक ग्रंथ सूचि

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशन	प्रकाशन एवं संस्करण वर्ष
१.	उपन्यास का समाजशास्त्र	डॉ. बी.डी. गुप्ता	-	-
२.	चिन्तामणी-भाग-१	आ.रामचन्द्र शुकल	इंडियन प्रेस प्रा.लि. इलाहाबाद	१९८१
३.	दिनकर के काव्यों में युग-चेतना	डॉ. पुष्पा ठक्कर	अरविन्द प्रकाशन बम्बई	१९८६
४.	नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में युग-चेतना	डॉ. अजय पटेल	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर	२००७
५.	नागार्जुन का काव्य और युग : अंतः संबंधों का अनुशीलन	जगन्नाथ पंड़ित	रंगद्वार प्रकाशन, अहमदाबाद	१९९६
६.	निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना	जगदीशचन्द्र	अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली	१९७९
७.	प्रसाद-साहित्य में युग-चेतना	डॉ. लीलावंतीदेवी गुप्ता	चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर	१९९४
८.	प्रेमचन्द कुछ विचार	प्रेमचन्दजी	-	-
९.	भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास में युग-चेतना	डॉ.जवाहरलाल सिंह	कला प्रकाशन, वाराणसी	२०००
१०.	भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांत	डॉ. सुरेश अग्रवाल	अशोक प्रकाशन दिल्ली	१९८७
११.	भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र	ए.आर.देसाई	रावत ब्रदर्स- जयपुर	१९६४
१२.	भारतीय संस्कृति की रुपरेखा	डॉ. बाबू गुलाबराय	-	-

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशन	प्रकाशन एवं संस्करण वर्ष
१३.	मोहन राकेश का साहित्य: समग्र मूल्यांकन	डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ	आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली	१९८९
१४.	युग और साहित्य	शान्तिप्रिय द्विवेदी	-	-
१५.	विविध बोध नये हस्ताक्षर	हुकुमचन्द राजपाल	स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद	१९७६
१६.	वीरेन्द्र जैन का साहित्य	मनोहरलाल	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	१९९७
१७.	समकालीन साहित्य चिंतन	सं.डॉ. रामदरश मिश्र	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	१९८६
१८.	समकालीन भारतीय दलित समाज बदलता स्वरुप और संघर्ष अध्याय	डॉ. कृष्णकुमार रत्तू दिनकर	ब्रुफ एनक्लेब, जैन भवन, जयपुर इलाहाबाद	२००३
१९.	साहित्य का श्रेय और प्रेय	जैनेन्द्रकुमार	पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली	१९९१
२०.	साहित्य और समीक्षा	बाबू गुलाबराय	-	-
२१.	साहित्य सहचर	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९६
२२.	साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन	डॉ. राम-विलास शर्मा	अक्षर प्रकाशन प्रा.ली.	
२३.	साहित्यिक निबंध	राजनाथ शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	-

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशन	प्रकाशन एवं संस्करण वर्ष
२४.	साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति	आ. नरेन्द्र देव	-	-
२५.	संस्कृति के चार अध्याय	डॉ. रामधारीसिंह दिनकर	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९३
२६.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में कृष्ण-जीवन	डॉ. उत्तमभाई पटेल	शांति प्रकाशन, हरियाणा (रोहतक)	२०००
२७.	शास्त्री समीक्षा के सिद्धांत (प्रथम भाग)	डॉ. गोविन्द त्रिगुणायन	भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली	१९६२
२८.	हितोपदेश	-	-	१८६४
२९.	हिन्दी उपन्यास: सामाजिक चेतना	डॉ. रजनीकांत एस. शाह	संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद	१९९०
३०.	हिन्दी उपन्यास: युग चेतना और पाठकीय संवेदना	डॉ. मुकुन्द त्रिवेदी	-	-
३१.	हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ	डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय	-	-
३२.	हिन्दी उपन्यास का अध्ययन	डॉ. गणेशन	-	-

३. शब्दकोश

१. बृहद हिन्दी कोश- सं. कालीका प्रसाद

२. हिन्दी विश्वकोश- डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी

३. नन्हा कोश- सं. अम्बालाल पटेल

४. भाषा शब्द कोश - सं. डॉ. रमाशंकर शुक्ल ‘रसाल’